अग्निपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका
डॉ० मजुला जायसवाल
रीडर, सस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्री
श्रीमती सोनू श्रीवास्तव
एम० ए० (सस्कृत)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सस्कत विभाग

विषय–सूची

विषय–सूची

(8) सस्कार–सोलह सस्कार

(9) अग्निपुराणोक्त अडतालीस सस्कार

(10) विवाह

(क) विवाह का महत्व (ख) विवाह क प्रकार एव उनका विवरण (ग) स्वयवर प्रथा (घ) असगोत्र विवाह (ड) अनुलोम विवाह

(11) कुल कुटुम्ब परिवार

(12) आचार

(13) आहार एव पेय

(14) ग्राम्य अरण्य एव यज्ञिय औषधिया

(15) विहार (विनोद क्रीडा) (1) आमोद–प्रमोद (2) उत्सव (3) वश्याये एव नर्तकी स्त्रिया (4) द्युतकर्म

(16) वेशभूषा–(1) वस्त्र अलकरण एव आभूषण

(17) मडन–भूषण शिल्प

पचग अध्याय

150-210

अग्निपुराण मे वर्णित धर्म और दर्शन

(1) धर्म

(क) धर्म लक्षण

(2) अग्निपुराण मे वर्णित प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ

(क) रामायण (ख) हरिवश माहात्म्य (ग) महाभारत (घ) भगवद्गीता

(3) पञ्चधाधर्म

(क) वर्ण धम (ख) आश्रम धर्म ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म वानप्रस्थ धर्म सन्यास धर्म।

(4) प्रायश्चित

(5) व्रत–(1) तिथिव्रत (2) दिवसव्रत (3) नक्षत्रव्रत (4) मासव्रत (5) नानाव्रत

(6) दान धर्म

(7) श्राद्ध–कल्प निरूपण

(8) नरक निरूपण

सप्तम अध्याय

उपसहार

डॉ0 श्रीमती मजुला जायसवाल
रीडर सस्कृत विभाग
इ0वि0वि0 इलाहाबाद

5ए बहादुरगज इलाहाबाद

प्रमाण पत्र

मै प्रमाणित करती हू कि (श्रीमती) सोनू श्रीवास्तव ने डी0फिल उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध जिसका विषय अग्निपुराण का सास्कृतिक अध्ययन मेरे निर्देशो का निष्ठापूर्वक पालन किया है। इनकी उपस्थिति निर्धारित नियमो के अनुकूल है।

शोधकर्त्री का शोध मौलिक एव उपयोगी है। मुझे श्रीमती सोनू श्रीवास्तव के इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में कोई आपत्ति नहीं है।

12/01/04

प्राक्कथन

यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विज ।

न चेत्पुराण सविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षण ।।[1]

सस्कृत वाङमय मे पुराणो का स्थान विशिष्ट हे। भारतीय सस्कृति और परम्परा को रोचक सरल एव सरस भाषा मे जन साधारण तक पहुचाने का श्रेय पुराणसाहित्य को ही है। पुराण भारतीयसस्कृति के प्राण हिन्दू धर्म के मूलाधार तथा इतिहास का अमूल्य कोश है। भारतीय परम्परा मे पुराणो के प्रति श्रद्धा वेद–शास्त्रादि के समकक्ष ही है।

गगा यमुना और अन्त सलिला सरस्वती के पावन सगम तट पर अवस्थित प्रयाग भारतीय सस्कृति का केन्द्र बिन्दु है। यजुर्वेद मे भी कहा गया है–

सितासिते यत्र तरग चामरेऽनघे विभाते मुनिभानुकन्यके।

नीलातपत्र वटएव साक्षात स तीर्थराजो जयति प्रयाग ।।

ऐसे पवित्र स्थान पर जन्म लेना परम सौभाग्य का विषय होता है। यह सौभाग्य दैव कृपा से मुझे भी प्राप्त हुआ। प्रयाग के प्रत्येक सदन मे प्राय सरस्वती का वास रहता है। देश के मूर्धन्य विद्वान् यहा आकर सरस्वती की आराधना किया करते है। इसी पावन भूमि मे मेरा भी जन्म हुआ और सरस्वती की आराधना की ओर मेरा मन कालक्रम मे प्रवृत्त हुआ। भारतीय सस्कृति के मूलाधार वेद उपनिषद पुराण रामायण और महाभारत आदि है। ये उदात्त ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे उपलब्ध है। सास्कृतिक चेतना से प्रभावित मेरे अन्तस् मे भी सस्कृतभाषा एव साहित्य के अध्ययन की रूचि उत्पन्न हुई। फलत अपनी उच्च शिक्षा के लिए मैने सस्कृत विषय का ही चयन किया। एम ए की परीक्षा मैने इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से उत्तीर्ण की। अध्ययनकाल मे माननीय गुरूओ की प्रेरणाओ ने मुझे आगे भी अपना अध्ययन बनाये रखने के प्रेरित किया। गुरूओ के परम आशीर्वाद ओर उदात्त प्रेरणाओ को आधार बनाकर मैने डी० फिल उपाधि के लिए शोध–निरत रहने का निश्चय किया।

वेद और उपनिषद् के तत्वो का ज्ञान तथा भारतीयसस्कृति का अध्ययन पुराणो से सर्वोत्कृष्ट रूप मे प्राप्त हो सकता है। इसलिए मैने पुराणो पर ही दृष्टिपात किया। अठारह पुराणो मे अग्निपुराण ही वह महनीय ग्रन्थ है जिसे विद्यासार कहा गया है। इसमे एक ओर तो सर्ग प्रतिसर्ग, वश मन्वन्तर और

वशानुचरित–पुराण के इन पाच लक्षणो का प्रतिपादन किया गया है वही दूसरी ओर भारतीय सस्कृति और साहित्य से सम्बद्ध विषयो का भी प्रवर्तन हुआ हे। फलत मैने इसी पुराण को अपने शाध का विषय बनाने का निश्चय किया।

इस अध्ययन के लिए मुझ अपने विभाग के गुरूजनो का आशीर्वाद तो प्राप्त था ही इसके साथ ही डॉ० (श्रीमती) मजुला जायसवाल जी ने शोध का प्रवर्तन करने के लिए निर्देशक का उत्तरदायित्व वहन किया और समय–समय पर उचित निर्देश देकर मेरे शाध प्रबन्ध को सम्पन्न कराया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जिस रूप मे भी है वह उनकी पावन प्रेरणा का परिणाम है। अत मै उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ। श्रद्धेया विभागाध्यक्ष डॉ० (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी जी की मैं आभारी हूँ जिनकी कृपादृष्टि के फलस्वरूप मुझे शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ के सकलन मे पिता गुरू (श्वसुर) डॉ0 कृष्ण कुमार लाल का जो आदेशोपदेश और आशीर्वाद प्राप्त हुआ उसके प्रति मे हृदय से आभारी हू। उन्ही की सत्प्रेरणा एव सहयोग से मै इस दुरूह कार्य को प्रारम्भ करने मे समर्थ हुई।

पारिवारिक जनो मे मेरे परम पूज्य माता–पिता (श्रीमती सुषमा श्रीवास्तव–श्री कमला कान्त श्रीवास्तव)। एव प्रिय भाई–बहन (सुधाशु–मोनू–नीशू) का सहयोग प्राप्त हुआ। इसके साथ ही मेरे पति डॉ0 राजेन्द्र प्रकाश का सहयोग विशेष उल्लेखनीय है जिन्होने मुझे उत्साहपूर्ण वचनो एव शोधकार्य के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराकर मेरे शोध–ग्रन्थ को सम्पन्न कराया। अत मै इन सबके सहयोग एव सद्भावनाओ के समक्ष नतमस्तक हूँ।

इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने म मैने अनेक विद्वानो की कृतियो का उपयोग किया है अत उनके प्रति भी आभार प्रकट करती हू। अपने अध्ययन काल मे स्थानीय इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय भारती भवन पुस्तकालय गगानाथ झा शोध सस्थान पब्लिक लाइब्रेरी आदि मे पुस्तको के अध्ययन का अवसर मिला। मै वहा के अध्यापको एव कर्मचारियो के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के टकण कार्य मे मेरे प्रिय अनुज हिमाशु श्रीवास्तव ने परम सहयोग प्रदान किया है। इस सहयोग के अभाव मे यह शोध प्रबन्ध वर्तमान रूप मे उपस्थापित नही हो सकता था। अत मैं उनके सफल जीवन के लिए आशीर्वाद प्रदान करती हूँ।

प्रथम अध्याय

संस्कृत वाङ्मय में पुराण

सस्कृत वाड्मय मे पुराण

1—पुराण—

वेद भारतीय मनीषा की शिखर भूमि है। भारत की समस्त ज्ञानराशि का मूल जानने के लिए हमे यहा के वेदोकी उदात्त भूमि मे पहुचना आवश्यक है। भारतीय दृष्टि के अनुसार 'सर्वज्ञानमयो हि स [1] अर्थात् वेद समस्त ज्ञान से परिपूर्ण है।

वेद शब्द के शाब्दिक अर्थ की ओर यदि दृष्टि पात करे तो इसके प्रतिपाद्य विषय का सम्यक बोध हो सकता है। विद् धातु से धञ् प्रत्यय लगाने से वेद शब्द बनता है। इस विद् धातु के चार अर्थ है—विद् ज्ञाने विद् विचारणे विद् लृ लाभे विद् सत्तायाम्। प्रथम अर्थ मे वेद ज्ञान से युक्त है दूसरे अर्थ मे विचार से समन्वित है तीसरे अर्थ मे लाभदायक है और चौथे अर्थ मे इनकी सत्ता है। भारतीय दृष्टि इन चारो अर्थों को स्वीकार करते हुए वेद को महत्ता प्रदान करती है। वेद अनेक प्रकार के ज्ञान एव विचार से युक्त है। इनके विवेचन से ऐहिक तथा आमुष्मिक लाभ होता है। इनकी सत्ता शाश्वत है।

मूल रूप मे वेद एक ही था किन्तु व्यास जी ने इनको चार भागो मे विभक्त कर दिया। इस कारण वेदो की सख्या चार हो गयी। इस विभाजन मे मत्र भाग को ऋक गीतियो को साम यज्ञ एव पूजा को यजुष् कहते है इनको सहिता कहा गया है। इस प्रकार ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद कहलाये। अथर्वा ऋषि के द्वारा सकलित होने के कारण चतुर्थ अथर्ववेद भी कहा गया।

इन वेदो का अध्ययन तभी सम्भव है जब वेदागो का अध्ययन किया जा सके। शिक्षा का अध्ययन वेदो के ज्ञान के लिए परम आवश्यक है। इसके बिना वेदो का अर्थबोध सभव नही है। वेदो के सहिता भाग के पश्चात् ब्राह्मण आरण्यक एव उपनिषदो का क्रम आता है। इनमे वैदिक ज्ञान का विस्तार प्राप्त होता है।

वस्तुत वेदो के ज्ञान का पूरा विस्तार रामायण महाभारत तथा पुराणो मे होता है। रामायण राम के अयोध्या से लका तक जाने के भौतिक मार्ग का तथा उनके एव दशरथ आदि अनेक व्यक्तियो के द्वारा प्रतिपादित सस्कारिक मार्ग का प्रतिपादन होने के कारण महत्वपूर्ण है। महाभारत महत्वात् अर्थात महत्ता तथा भारवत्व अर्थात एक लाख श्लोको वाला होने के कारण महत्वपूर्ण है। रामायण के विषय मे कहा

गया है कि–

यावत् स्यास्यन्ति गिरय सरितश्च महीतले।

तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[1]

महाभारत के विषय मे भी सामान्य कथन है कि–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[2]

पुराण वाडमय (महापुराण उपपुराण तथा औपपुराण) विपुल साहित्य तथा सस्कृति के भण्डार है जिसमे हमे परा और अपरा विद्याओ का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पुराणो मे लोक सस्थान के (भुवनकोष) के अन्तर्गत पृथ्वी द्वीप (सप्त महाद्वीप) वर्ष उपद्वीप (अनुद्वीप) द्वीपान्तर (समुद्रद्वीप) देश जनपद नगर पत्तन पर्वत नदियो तथा तीर्थों आदि का भी उल्लेख किया गया है वर्ण वर्णधर्म आश्रम आश्रमधर्म सस्कार उपनयन (शिक्षा पद्धति) विवाह–भेद जीविकावृत्तियो सकर जातियो और आचार्य धर्म आदि के उल्लेख भी तत्कालीन समाज पर प्रकाश डालते हैं।

पुराणो मे मुनियो के आश्रमो मदिरो तथा तपोवनो के उल्लेख भी महत्वपूर्ण हैं। ये ही विद्या (शिक्षा) तथा धर्म साधना के केन्द्र थे। ये ही आध्यात्मिक सस्कृति और जीवन के केन्द्र थे। इनमे धर्म के महत्व एव विविध धार्मिक क्रियाओ (तीर्थयात्रा स्नान जप तप दान ध्यान) तथा उपासना पद्धतियो (कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग) का वर्णन मिलता है। वेद और वैदिक शाखाओ ऋषियो (शास्त्र प्रणेताओ) पुराणो तथा धर्मशास्त्रो एव साहित्य शास्त्र (काव्य छन्द अलकार व्याकरण अभिधान) आदि के भी वर्णन गरूण पुराण और अग्निपुराण मे प्राप्त होते हैं। राजधर्म (राजशास्त्र–राजनीति) का भी वर्णन मत्स्य विष्णु मार्कण्डेय गरूण तथा अग्निपुराण आदि मे प्राप्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुराण भारतीय सस्कृति के विशाल कोश हैं जिनमे अनुसधान करना अत्यावश्यक है ये पुराण ही भारतीय सस्कृति के मूल स्रोत है।

इतिहास पुराणाभ्याम् वेद समुपवृहयेत्[3]

अर्थात रामायण एव महाभारत इतिहास और पुराणो द्वारा वेदो का उपवृहण करना चाहियें।

---

1 रामायण बालकान्ड– 2 36 7

2 महाभारत आदि–62–53

3 महाभारत –आदिपर्व–1 / 267 268

पुराणो द्वारा ही वेद और वेदार्थ का ज्ञान हो सकता है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त को समझने के लिए पुराण पर्यालोचन आवश्यक है। इसी प्रकार पुराणो मे वर्णित ऋषि वशो तथा राजवशो के अध्ययन से ही वैदिक

पुराणो के सम्यक अध्ययन और अनुसधान के बिना मनुष्य समाज के मनुष्यता (आर्यता) का विकास नही हो सकता । इनमे मनुष्य के चरित्र मे विद्यमान पशुवृत्ति को दबाकर मानवता (मानुष्य) के विकास पर ही बल दिया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक आख्यानो मे भी यही शिक्षा दी गयी है–कहा गया है– भज वत्स।सता भार्गम् सज्जनो के मार्ग का का अनुगमन किया जाय। महाभारत मे भी कहा गया है–महाजनो येन गत स पन्था । यही तो रामायण का भी सार है–

रामादिवद्वर्तितव्य न रावणादिवत।

रावण ने ऋषिवष (पुलस्त्यवश) मे उत्पन्न होकर भी परकलत्रहरण किया था। यही राक्षसी पाशविक वृत्ति या आसुरी वृत्ति थी। इसके विपरीत नारी अपहरण को प्राणो की बलि देकर भी बचाना और शत्रु से युद्ध करना (क्षात्रधर्म) जटायु ही सिखाता है अत धन्यो जटायु । जटायु बडभागी है क्योकि उसने क्षात्रधर्म का पालन किया । इसके विपरीत वही सुग्रीव आदि सीता के विलाप को मूक–अन्ध–बधिर होकर सुनते रहे।

भारतीय समाज मे भी इस यातुधानी सस्कृति का प्रकोप सिन्ध विजय से शुरू हो गया था। अत म्लेच्छ दस्युओ से नारी रक्षा सस्कृति रक्षा तथा देष रक्षा करना ही प्रमुख राजधर्म था। भगवान वासुदेव भी इन दुष्टो का नाश तथा शिष्टो (सत्पुरूषो) की रक्षा के लिए ही अवतार धारण कर रहे थे–

अवतारक्रिया दुष्टनष्टयै सत्यालनाय हि।[1]

2–<u>पुराण शब्द का अर्थ</u>

वेदो का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतिहास ग्रन्थो के साथ पुराणो का भी महत्व है। वेदादि मे सूक्ष्म मे कही गयी बातो का यहा विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। पुराण का सामान्य अर्थ है पुराना। पुराण नाम से कहे गये ग्रन्थ भी पुराने है और उनमे कही गयी बाते भी पुरानी हैं–

यस्मात्पुरा हि अनति इति पुराणम्'[2]

यह नामकरण ही भारत के प्राचीनतम ग्रन्थो का वेदो से उनके सबध की ओर सकेत करता है–

1–अग्निपुराण 2/2 (2)

2–वायुपुराण 1–203

पुरा भव पुराणम्।

पुराण पुरातनमाख्यानम भी कहा गया है। इस नाम से अभिहित ग्रन्थ मे जो कुछ भी है वह नया नही पुराना है।

ऋच सामानि छन्दासि पुराण यजुषा सह।[1]

इस प्रतिपादन का आशय है कि पुराण की उत्पत्ति ऋक साम छन्द एव यजुष के साथ ही हुई है। शतपथ ब्राहमण मे तो पुराण वेद [2] कहकर उन्हे वेद के समान बताया गया है। यहा का एकवचन सभवत विषय विशेष की ओर सकेत करता है। पर कालान्तर मे इनकी सख्या मे वृद्धि हो गयी और वे 18 या उससे भी अधिक हो गये।

पुरा अपि नवम् [3] के अनुसार यह पुराना होकर भी नया है। छन्दोपनिषद मे पुराणो को पचम वेद कहा गया है।

3–<u>पुराणो का रचनाकाल</u> –

इन पुराणो की रचना के सबध मे कोई निश्चित स्थिति नही बन सकी है। अनेक विद्वानो ने इनके समय के सबध मे विचार करते हुए अपना मत प्रतिपादन किया है। एक बात पर प्राय सभी मे सहमति है कि ये पुराण एक काल की रचना नही है। और समय–समय पर इनमे परिवर्तन परिवर्धन होता रहा है और इनमे क्षेपक भी जोडे गये हैं।

सूत्र ग्रन्थो मे की रचना 1600 से 1800 ई०पू० मे हो चुकी थी। इनकी निचली सीमा 600 ई0पू0 स्वीकारी जाती है। गौतम धर्मसूत्र (11–18) तथा आपस्तम्ब सूत्र मे पुराणो का उल्लेख हुआ है। पुराणो का मूल रूप इसी समय मे रहा होगा और कालान्तर मे उनमे विस्तार होता गया। विष्णु पुराण मे राजवषो के वर्णन मे मौर्य साम्राज्य का वर्णन है। अत इस पुराण का वर्तमान रूप मौर्य वश के बाद ही आया । मत्स्य पुराण मे आन्ध्र राजाओ का तथा वायुपुराण मे गुप्त वशीय राजाओ का वर्णन हुआ है। मौर्य साम्राज्य ई0पू0 चौथी सदी आन्ध्र राजा ई0पू0 तीसरी सदी एव गुप्त राजा ईसा की तीसरी से छठी सदी के बीच रहे हैं।

1–अथर्ववेद सहिता–71/7/24

2–शतपथ ब्राहमण–13/4/3–13

3–सस्कृत लिटरेचर– वी० राघवन पी० 35

श्री राखालदास बनर्जी पुराणो का रचना काल ईसा की बारहवी शताब्दी तक मानते हैं।[1] पी0के0 आचार्य न केवल गुप्त काल तक ही पुराणो का रचना काल मानते है। अपितु स्कन्दपुराण का नाम वह स्कन्दगुप्त के नाम पर ही रखा गया बताते है।[2] डा0 के0पी0 जायसवाल 499 ही पुराणो की रचना का अतिम काल मानते है।[3] डा0 पार्जिटर के अनुसार पुराण मूल रूप मे ई0 सन् की प्रारम्भिक शताब्दियो के बाद के नहीं हो सकते।[4] उनके मत मे अग्निपुराण सबसे प्राचीन है। [5]

लोकमान्य बालगगाधर तिलक ने कहा है कि पुराण काल का आरम्भ समय सन् ईसवी के दूसरे शतक से अधिक अर्वाचीन नही माना जा सकता।[6] श्री सुशील कुमार डे पुराण का रचना काल ईसा की नवम शताब्दी मानते है।[7] डा0 आर सी हजारा विभिन्न पुराणो का समय अलग–अलग निर्धारित रहते हुए 600 ई0 से लेकर 16वी सदी तक पुराणो का काल बताया है।[8] श्री बलदेव उपाध्याय वैदिक काल मे पुराणो का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और उनकी चरम अवधि गुप्तकाल निर्धारित करते हैं।[9] श्री वाचस्पति गैरो का भी इनसे सहमत प्रतीत होते है।[10]

इस प्रकार हम देखते है कि पुराणो का समय अति प्राचीन काल से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक माना जाता है। परिवर्तन एव परिवर्धन एव क्षेपक के कारण किसी पुराण का समय 'इदमित्थ' रूप निर्धारित नही हो सकता। अत हमे सामान्य मान्यताओ से ही सतोष करना पडेगा।

4– पुराणो की सख्या– पुराणो की सख्या के सबध मे यह श्लोक प्राप्त होता है–

मद्वय भद्वय चै बत्रय वचतुष्टयम्।

अनापल्लिगकूष्कानि पुराणानि प्रचक्षते।।

इस श्लोक के अन्तर्गत मकार से से प्रारम्भ होने वाले दो पुराण–मत्स्य मार्कण्डेय भ से प्रारम्भ होने वाले दो–भागवत भविष्य ब से प्रारम्भ होने वाले तीन–ब्रह्माण्ड ब्रह्मवैवर्त एव ब्रहम तथा 'व'

1 Imperical Guptas p 112
2 Dictionary of hindu architecture p 310
3 Journal of the Bihar & orissa research society vol 111 p 247
4 Ancient Indian historical tradition
5 Journal of the Royal Asiatic society p 254 55
6– गीता रहस्य–पृ० 566
7–सस्कृत साहित्य का इतिहास भाग एक पृ० 74–98
8– पुराणिक रिकर्ड्स आन हिन्दू साइट्स एण्ड कस्टम्स्
9 सस्कत साहित्य का इतिहास पृ 55
10 सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ 283–316

से प्रारम्भ होने वाले चार–वायु वामन वराह एव विष्णु है। इनके साथ ही अग्नि नारद पदम लिग गरूण कूर्म तथा स्कन्द नाम से अन्य पुराण जाने जाते हैं। इन पुराणो की प्राचीनता एव श्लोक सख्या के विषय मे एक मत नही है जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है–

अठारह महापुराण और उनकी श्लोक सख्या

	पुराण का नाम	अग्निपुराण[1]	भागवत पुराण[2]	मत्स्यपुराण[3]	देवीभागवत[4]
1	ब्रहम	25 हजार	10 हजार	13 हजार	13 हजार
2	पद्म	12 हजार	55 हजार	55 हजार	55 हजार
3	विष्णु	23 हजार	23 हजार	23 हजार	23 हजार
4	वायु	14 हजार			
5	भागवत	18 हजार	18 हजार	18 हजार	18 हजार
6	नारदीय	25 हजार	25 हजार	24 हजार	24 हजार
7	मार्कण्डेय	9 हजार	9 हजार	9 हजार	9 हजार
8	अग्नि	12 हजार	15 हजार 4 सौ	16 हजार	16 हजार
9	भविष्य	14 हजार	14 हजार पाच सौ	14 हजार पाच सौ	14 हजार पाच सौ
10	ब्रहमवैवर्त	18 हजार	18 हजार	18 हजार	18 हजार
11	लिङ्ग	11 हजार	11 हजार	11 हजार	11 हजार
12	बाराह	24 हजार	24 हजार	24 हजार	24 हजार
13	स्कन्द	84 हजार	81 हजार	81 हजार	81 हजार
14	वामन	10 हजार	10 हजार	10 हजार	10 हजार
15	कूर्म	8 हजार	17 हजार	18 हजार	18 हजार
16	मत्स्य	13 हजार	14 हजार	14 हजार	14 हजार
17	गरूण	8 हजार	19 हजार	19 हजार	19 हजार
18	ब्रहमाण्ड	12 हजार	12 हजार	12 हजार दो सौ	12 हजार दो सौ

---

1 अग्नि पुराण–272/1–23 (1)

2 भागवत पुराण–12/13/4–9

3 मत्स्य पुराण–53/13–8

4 देवी भागवत पुराण–1/3–12

19 शिव[1] – – – 24 हजार – 24 हजार – 24 हजार

यद्यपि पुराणो की सख्या अठारह बतायी गयी है किन्तु ये सब पुराण पुराण पुरूषोत्तम के विग्रह के विभिन्न भाग के रूप मे ही प्रकट हुए हैं। पद्म पुराण मे भगवान विष्णु के इस विग्रह को निम्नलिखित रूप मे बताया गया है–

ब्राह्म मूर्धा हरेरेव हृदय पद्मसज्ञकम्।।
वैष्णव दक्षिणो बाहु शैव वामो महेशितु।
ऊरू भागवत प्रोक्त नाभि स्यान्नारदीयकम।।
मार्कण्डेय च दक्षाङ्घ्रिर्वामो हयाग्नेयमुच्यते।
भविष्य दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मन ।।
ब्रहमवैवर्त सज्ञ तु वामजानुरूदाहृत ।
लैङ्ग गुल्फक दक्ष वाराह वामगुल्फकम्।।[2]
स्कान्द पुराण लोमानि त्वगस्य वामन स्मृतम्।
कौर्म पृष्ठ समाख्यात मात्स्य भेद प्रकीर्त्यते।।
मज्जा तु गारूड प्रोक्त ब्रहमाण्डमस्थि गीयते।
एवमेवाभवद्विष्णु पुराणावयवो हरि ।।[3]

ब्रह्मपुराण भगवान विष्णु का सिर पद्म पुराण हृदय विष्णु पुराण दक्षिण बाहु शिवपुराण वामबाहु भागवत जङ्घायुगल नारद पुराण नाभि मार्कण्डेय पुराण दक्षिण चरण और अग्निपुराण वाम चरण है। भविष्य उनका दक्षिण जानु ब्रहमवैवर्त वाम जानु लिग पुराण दक्षिण गुल्फ (टखना) बराह पुराण वाम गुल्फ स्कन्द पुराण रोम वामन पुराण त्वचा कूर्म पुराण पीठ मत्स्य पुराण भेद गरूण मज्जा और ब्रहमाण्ड पुराण अस्थि हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु पुराणविग्रह के रूप मे प्रकट हुए हैं।

5–पुराण पञ्चलक्षणम्–

पुराणो के लक्षण के सबध मे निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च

1–अग्निपुराण मे शिव पुराण का उल्लेख नही प्राप्त होता उसके स्थान पर यहा वायु पुराण का उल्लेख है।
2–पदमपुराण– स्वर्ग खण्ड – 62/2–5
3–पदमपुराण स्व० खण्ड 62/6–7

सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वशानुचरित च यत्।।[1]

इसके अनुसार पुराणो मे सर्ग प्रतिसर्ग वश मन्वन्तर और वशानुचरित का प्रतिपादन होना चाहिये। इसका आशय निम्नलिखित है–

1 सर्ग–(सृष्टि) अर्थात ससार का निर्माण

2 प्रतिसर्ग– (प्रलय के बाद पुन सृष्टि)

3 मन्वन्तर– (मनु और उनका युग कल्प)

4 वश– (राजाओ के वश सोम वश और सूर्यवश आदि)

5 वशानुचरित– (कीर्तिमान राजाओ के चरित्र यथा रामचरित कृष्ण चरित ययाति चरित तथा ऋषिवशो का वर्णन)

1 सर्ग–

इसमे सृष्टि के अन्तर्गत दृश्य जगत और भिन्न–भिन्न जीव–जन्तु पशु पक्षी नर किन्नर यक्ष राक्षस गधर्व असुर आदि तथा ब्रह्मा से लेकर अन्य देवगणो और औषधियो आदि (चराचर) की उत्पत्ति का वर्णन है । इस सृष्टि को ही सर्ग कहते है। इसका परम कारण विष्णु ही हैं–

सारात्सारो हि भगवान विष्णु सर्गादिकृद्विभु ।[2]

अधिकाशत पुराणो मे साख्य सिद्धान्तानुसार ही सृष्टि का वर्णन किया गया है। यहा का पुरूष ही पुराणो का पुरूषोत्तम[3] परब्रह्म कहा गया है।

2 प्रतिसर्ग–कल्प के अन्त मे प्रलय होती है तथा प्रलय के बाद ही पुन होने वाली सृष्टि को प्रतिसर्ग कहते है।

3 मन्वन्तर–विभिन्न मनुष्वो का वर्णन मन्वन्तर कहलाता है । प्रत्येक कल्प मे एक मनु होता है। उन मनु

1–अग्निपुराण–1/4 (1) सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वश मन्वन्तरस्य च ।
वशनुचारिता देशश्च मत्स्यकूर्मादि रूप धृक।।

2–भागवत पुराण 10/1/20

3–ब्रह्मा तत्र गत्वा जगन्नाथ देव देव वृषाकपिम्–।
पुरूष पुरूषसूक्तेन उपतस्थे समाहित।।
वही–10/1/21 गा पौरूषी।
ब्रह्मपुराण तथा विष्णु पुराण मे उसी पुरूषोत्तम (वासुदेव) की महिमा का वर्णन किया गया है–
अग्निपुराण–1/1–
श्रिय सरस्वती गौरी गणेश स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रहमाण वहिन मिन्द्रादीन वासुदेव माम्यहम्।।

लोगो का शासनकाल ही मन्वन्तर कहलाता है। ब्रह्मा ही मनु को उत्पन्न करते है तथा मनु ही आदि राजा था। उन वैवस्वत मनु से ही राजवश परपरा भी चलती है। ये राजा क्षत्रियाही थे।

4 वश– वश के अन्तर्गत राजवशो (राज्ञावशानि–सूर्यवश एव सोमवश) तथा राजाओ का वर्णन किया जाता है। क्षत्रियेतर राजाओ का वर्णन नही किया गया है।

5 वशानुचरित–इसके अन्तर्गत यशस्वी सुचरित (प्रख्यात) आदर्श राजचरित्रो तथा ऋषिवशो का भी वर्णन होता है। भागवत पुराण के अनुसार वशो मे उत्पन्न वशधरो तथा मूल पुरूष एव राजाओ के विशेष विवरण को ही वशानुचरित कहते है।[1] वश तथा वशानुचरित का ही विशेष सबध भारत भूमि के प्राचीन इतिहास से है।

भारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर के पौत्र महाराज परीक्षित के राज्यकाल से ही कलियुग का प्रारम्भ होता है। कलि राजवशो का वर्णन ही भविष्य नृपवृत्तान्त कहा गया है जो केवल पाच पुराणो (विष्णु वायु ब्रहमाण्ड मत्स्य तथा भागवत) मे उपलब्ध होता है।

अग्नि पुराण के अन्तर्गत सर्ग प्रकरण अध्याय 17 20 मे प्रतिसर्ग वर्णन अ–368 मे वश विवरण अध्याय 273–276 मे वशानुचरित अ 277 मे एव मन्वन्तर विवरण अ 150 मे प्राप्त होता है।

6– पुराणो का प्रतिपाद्य विषय– पुराणो मे पुरावृत्त पुरातत्व आदि से सम्बद्ध सभी विषयो का समावेश किया गया है। इनमे जिस किसी भी देवी या देवता की उपासना का उल्लेख किया गया है उसी को सबसे बडी शक्ति कहा गया है उसे अन्य देवो से बडा बताया गया है। इनमे सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति एव प्रलय का वर्णन देवताओ एव ऋषियो की वश परम्परा तथा उनके जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। इनमे तत्कालीन नन्द मौर्य शुग आन्ध्र और गुप्त आदि सूर्यवशी एव चन्द्रवशी राजाओ के वर्णन सहित विभिन्न तीथो भौगोलिक स्थानो एव तीर्थ–यात्राओ आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। जप तप व्रत प्रार्थना उपासना तथा अनेक प्रकार के यज्ञो के अनुष्ठान के अतिरिक्त अवतारवाद मूर्तिपूजा एव देवी देवताओ मे अत्यन्त श्रद्धा सगुणोपासना एव भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया गया है। दार्शनिक धार्मिक राजनीतिक एव आचार–शास्त्रीय महत्वपूर्ण विषयो के विवेचन तथा व्याकरण काव्यशास्त्र ज्योतिष शरीर– विज्ञान आदि का शास्त्रीय एव वैज्ञानिक विषयो से सम्बद्ध तथ्यो का प्रतिपादन ही पुराणो का मुख्य विषय रहा है।

7–पुराणो का सक्षिप्त परिचय–

भारतीय साहित्य मे पुराणो का विशेष महत्व रहा है। इनमे अठारह महापुराण विशेष रूप से

1–भागवत पुराण 12/7/16 वशानुचरित तेषा वृत्त वशधराश्च ये

प्रसिद्ध हैं। उनमे चार लाख से अधिक ही श्लोक है। विलसन और उनका अनुकरण करने वाले विद्वान आज भी इन पुराणो के महत्त्व को नही समझ सके हैं। इसका कारण हमारी आधुनिक शिक्षा पद्धति है–चाहे वह सस्कृत से से से सम्बन्धित हो अथवा अन्य विषय से सर्वत्र इनकी उपेक्षा हुई है। ये अठारह महापुराण निम्नलिखित है।

भागवत पुराणोक्त[1]	विष्णु पुराण[2]	कूर्मपुराणोक्त[3]	अग्निपुराणोक्त[4]
तालिका (1)	तालिका (2)	तालिका (3)	तालिका (4)
1–ब्रह्म	ब्रह्म	ब्रह्म	ब्रह्म
2–पद्म	पद्म	पद्म	पद्म
3–विष्णु	विष्णु	विष्णु	विष्णु
4–शिव	शिव	शिव	(शिव) वायु
5–लिङ्ग	भागवत	भागवत	भागवत
6–गरूण	नारदीय	भविष्य	नारदीय
7–नारदीय	मार्कण्डेय	नारदीय	मार्कण्डेय
8–भागवत	अग्नि	मार्कण्डेय	अग्नि
9–अग्नि	भविष्य	अग्नि	भविष्य
10–स्कन्द	ब्रह्मवैवर्त	ब्रह्मवैवर्त	ब्रह्मवैवर्त
11–भविष्य	लिङ्ग	लिङ्ग	लिङ्ग
12–ब्रह्मवैवर्त	वराह	वराह	वराह
13–मार्कण्डेय	स्कन्द	स्कन्द	स्कन्द
14–वामन	वामन	वामन	वामन
15–वराह	कूर्म	कूर्म	कूर्म

1–भागवत पुराण–92/6/23–24– यहा पुराणो का क्रम कुछ बदला हुआ है। चौथे स्थान पर वायु पुराण के स्थान पर शिव पुराण का उल्लेख किया गया है।

2– विष्णु पुराण– 3/6/21–24

3– कूर्म पुराण–2/2/13–15 यहा अन्त मे ब्रह्माण्ड को वायवीय ब्रह्माण्ड कहा गया है।

4– अग्नि पुराण–262/9–23 – यहा चौथे स्थान पर वायु पुराण का उल्लेख है। सामान्य रूप से वायु पुराण को शिव पुराण माना जाता है।

16—मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य
17—कूर्म	गरूण	गरूण	गरूण
18—ब्रह्माण्ड	ब्रह्माण्ड	वायवीय ब्रह्माण्ड	ब्रह्माण्ड

अग्निपुराण मे उपपुराणो के नाम नही दिये गये हैं। प्राय महापुराणो मे प्रत्येक महापुराण का अपना विशेष महत्व है। आदि मे ब्रह्म पुराण मध्य मे ब्रह्मवैवर्त तथा अन्त मे ब्रह्माण्ड पुराण मे ब्रह्म का ही विविध रूपो मे निरूपण किया गया है। इसका तात्पर्य है— पुराणेषु पुराणात्मा अर्थात् पुराणो मे पुराण पुरूष आद्य पुरूष अर्थात् पुरूषोत्तम ब्रह्म परमात्मा अथवा भगवान की कीर्ति क्रीडा का वर्णन किया गया है। इस समय जो भी पुराण जिस रूप मे उपलब्ध है उनमे वेकटेश्वर प्रेस आनन्दाश्रम सस्करण और चौखम्बा द्वारा प्रकाशित पुराण ही मान्य हैं। इनमे जो भी विषय या तथ्य उपलब्ध है वे ही अध्ययन और विवेचन के विषय है।

वर्तमान पुराणो के नये सस्करण और सवर्धन सिन्ध मे मुस्लिम विजय 712 ई0 के बाद की परिस्थितियो के अनुसार ऋषियो द्वारा ढाले गये थे। सभी पौराणिको का मुख्य लक्ष्य था कि हम नष्ट हो जाये पर हमारा धर्म नष्ट न हो। ये पुराण इसी धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित हुये। सक्षेप मे पुराणो का परिचय प्रस्तुत है—

1—ब्रह्मपुराण

यस्मात् सर्वमिद प्रपञ्चरचित मायाजगज्जायते
यस्मिस्तिष्ठति याति चास्तसमये कल्पानुकल्पे पुन ।
य ध्यात्वामुनय प्रपन्चरहित विन्दन्ति मोक्ष ध्रुव
त वन्दे पुरूषोत्तमाख्यममल नित्य विभुनिश्चलम।।

ऊपर पुरूषोत्तम वन्दना से हमे शकर के वेदान्त और ध्यानयोग का आभास मिलता है। भगवद्गीता (अध्याय 15) मे भगवान पुरूषोत्तम को आद्य पुरूष कहा गया है। ब्रह्म पुराण आदि पुराण है जिसमे आदि क्षेत्र (पुरूषोत्तम क्षेत्र) के माहात्म्य का विशेष वर्णन है। यह पुरूषोत्तम क्षेत्र ही उडीसा मे पुरी (जगन्नाथपुरी) कहलाता है जहा का विश्वविख्यात पुरूषोत्तमायतम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

यहाँ एकाम्रवन (भुवनेश्वर) और कोणादित्य (कोणार्क) के विषय मे भी महत्वपूर्ण विवरण दिया गया है। इसका प्रारम्भ नैमिषारण्य क्षेत्र के वर्णन से होता है। यही पुराण विद्या का मुख्य अधिष्ठान रहा है। इसके अतिरिक्त इस पुराण मे सबसे लम्बी तीर्थ तालिका (लगभग 428) दी गयी है। व्यास आश्रम

बहुत ही प्रसिद्ध ऋषिक्षेत्र था। इसके साथ ही वर्णाश्रम धर्म भक्ति ज्ञान (दर्शन) और आर्थिक जीवन पर भी यहा महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते है। गौतमी (गोदावरी) माहात्म्य इस पुराण का एक महत्वपूर्ण अग है जिसमे तपोवनो आश्रमो और तीर्थों का विशेष वर्णन है। नासिक (महाराष्ट्र से लेकर गोदावरी समुद्र सगम तक घोर घने जगल ही भारतीय सस्कृति के रक्षारण्य थे।

2—पद्म पुराण

यह अठारह पुराणो मे द्वितीय पुराण है। इसमे 5 खण्ड हैं--सृष्टि भूमि स्वर्ग पाताल और उत्तराखण्ड। इसमे पुष्कर (पुष्करारण्य) पुराण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यह प्रमुख वैष्णव क्षेत्र था। इसमे 55 सहस्त्र श्लोक हैं जिसमे तीर्थों तथा शास्त्रो (भगवद्गीता) वर्णाश्रम धर्म राजधर्म सम्बन्धी उद्धरणो एव आश्रमो का विशेष रूप से माहात्म्य वर्णित है। यह पुराण भी तुरूष्को (तुर्कों) और उनके लक्षणो का वर्णन करते है। इस महापुराण ने महाकवि कालिदास को भी उनकी कलाकृतियो रघुवश और शाकुन्तल दोनो की रचना मे प्रेरणा दी थी। केवल इसी पुराण मे कृष्ण की पत्नी राधा का उल्लेख प्राप्त होता है।

3 विष्णु (वैष्णव) पुराण

प्राचीनता और प्रामाणिकता की दृष्टि से सबसे प्रमुख यह अति प्रसिद्ध पुराण है। जिसका अग्रेजी मे अनुवाद प्रो0 एच एच विल्सन ने किया था। कई विद्वानो ने इसका सास्कृतिक अध्ययन किया है इसमे मौर्य राजाओ की प्रामाणिक वशावली दी गयी है। यह वैष्णव क्रान्ति का मुक्तिघोष ही था। ब्रह्मपुराण के आधार पर ही इसमे कृष्ण चरित्र का वर्णन दिया गया है। ऋषि पाराशर इसके रचयिता हैं। यही एक पुराण है जिसमे पुराण के समस्त लक्षणो का समावेश है। शकराचार्य ने समस्त उद्धरण इसी से दिये हैं। इसका न केवल साहित्यिक अपितु दार्शनिक और ऐतिहासिक महत्व भी है।

ब्रह्म पुराण की भाति इसमे भी भारत की पश्चिमी सीमा पर यवनो के आधिपत्य का उल्लेख है जिसका समय 12 ई था। इसी समय अरब विजेताओ ने सिन्ध विजय की थी।

4 वायु महापुराण

इस प्रसिद्ध महापुराण को शिवपुराण भी कहते हैं। कुछ विद्वान इस मत से सहमत नही है वे दोनो को पृथक पुराण मानते है। इसका भी सास्कृतिक अध्ययन किया जा चुका है। इसमे 112 अध्याय और 10 हजार श्लोक है, 104वे अध्याय मे 18 पुराणो की श्लोक सख्या दी गयी है जिसके अनुसार इसमे 23 हजार श्लोक हैं। इसमे भूगोल (भुवनकोश) तथा वर्णाश्रम धर्म और शैव धर्म पर विशेष प्रकाश पडता है। वायु पुराण मे बिम्बिसार से लेकर गुप्त वशजो का ऐतिहासिक वर्णन भी महत्वपूर्ण है। इसके भुवनकोश मे

वर्णित जनपद तालिका भी महत्वपूर्ण है।

5 मत्स्य पुराण

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह पुराण भी महत्वपूर्ण है। इसमे विम्बिसार से लेकर आन्ध्र (सातवाहन) वश के इतिहास का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इसमे वर्णाश्रम धर्म एव कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग का तुलनात्मक महत्व तथा तीनो धार्मिक साधनाओ का समन्वय किया गया है। इसमे वास्तुशिल्प एव मूर्ति लक्षणो का भी वर्णन महत्वपूर्ण है।

6 ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण मे भी हमे विम्बिसार से लेकर गुप्त वशजो तक का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमे और वायु पुराण मे विशेष साम्य है। इसमे वर्णित तीर्थ माहात्म्य और ललितोपाख्यान तथा शक्ति एव शक्तिपीठो का उल्लेख महत्वपूर्ण है।

7 भागवत पुराण

भागवत पुराण मे भी 12 स्कन्धो मे 18 हजार श्लोक हैं। यह पुराण भक्ति (आश्रम) भक्त (मैत्रेय उद्धव आदि) के लिए विशेष रूप से समाज मे प्रसिद्ध रहा है। इसमे भी वर्णों की उत्पत्ति और उनके कर्मों का वर्णन किया गया है। बारहवे स्कन्ध के प्रारम्भ मे कलियुग के राजवशो का उल्लेख है। इसकी शैली प्रौढ और परिष्कृत है। जिसमे कही–कहीं गभीर दार्शनिक विवेचन है। अत यह विद्वानो की योग्यता की कसौटी माना गया है। विद्यावता भागवते परीक्षा।

8 मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय महापुराण अपने प्रबुद्ध दर्शन के लिए प्रसिद्ध है। इसमे वर्णन है कि चार ब्राह्मण पुत्र पिता के शापवश दूसरे जन्म मे पक्षी योनि मे उत्पन्न होकर अपने पूर्वजन्म के शास्त्र ज्ञान से वचित न रहे। सत्य ही कहा गया है–अद्यापि न जहाति सरस्वती। इस पुराण की एक अन्य विशिष्टता यह है कि इसमे ब्राह्मण पुत्र सुमति द्वारा ससार चक्र का वर्णन करते हुए त्रयी धर्म को महत्व न देकर निवृत्ति मार्ग द्वारा ब्रह्म ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति श्रेयष्कर बताया गया है।

9 कूर्म पुराण

कूर्म पुराण विचित्र पुराण है जिसमे विष्णु और शिव का अभेद तत्व विशेषोल्लेखनीय हैं। इसके उत्तरार्द्ध के प्रथम ग्यारह अध्यायो मे ईश्वर (शैव दर्शन) का वर्णन है। इसके अतिरिक्त वर्णाश्रमाचार और तीर्थों का भी वर्णन किया गया है।

10 <u>गरूण पुराण</u>

गरूण पुराण मे वासुदेव के अवतारो उनकी चौबीस मूर्तियो तथा वैष्णव धर्म तान्त्रिक क्रियाओ के अतिरिक्त मदिर निर्माण कला भारतीय वाडमय (हरिवश महाभारत) तथा आयुर्वेद और व्याकरण का भी वर्णन है। इसमे राजधर्म (बृहस्पति नीति) का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

11 <u>स्कन्द पुराण</u>

स्कन्द महापुराण मे इक्यासी हजार श्लोक है। इसीलिए यह पुराण केवल अपने कलेवर की विशालता के लिए प्रसिद्ध है। यह हिन्दू सस्कृति समाज कला और धर्म का वृहत कोश भी है।

12 <u>वराह पुराण</u>

यह वैष्णव पुराण है जिसमे वैष्णव धर्म के विविध पक्षो के अतिरिक्त मथुरा माहात्म्य तथा अन्य तीथो का वर्णन महत्वपूर्ण है। इसमे 218 अध्यायो मे 24 हजार श्लोक है।

13 <u>ब्रह्मवैवर्त पुराण</u>–

ब्रह्मवैवर्त पुराण मे राधाकृष्ण चरित्र के अतिरिक्त गणेश तथा स्कन्द और शक्तियो का भी महत्व प्राप्त होता है।

14 <u>भविष्य पुराण</u>–

भविष्य पुराण मे सूर्य भक्ति के अतिरिक्त नागदेव एव अग्नि की पूजा का वर्णन है तथा सूर्य मदिरो एव मध्यकालीन इतिहास का भी वर्णन मिलता है।

15 <u>नारद पुराण</u>–

यह पुराण प्रसिद्ध वैष्णव पुराणो मे से एक है। इसे ही वृहन्नारदीय पुराण भी कहते हैं। इसके प्रथम खण्ड मे 125 अध्याय तथा द्वितीय खण्ड मे 82 अध्याय है। इसके श्लोको की सख्या अठारह हजार से अधिक है। इसमे विभिन्न उत्सवो एव पर्वों का वर्णन प्राप्त होता है तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्ति एव समाधि का भी उल्लेख किया गया है।

16 <u>वामन पुराण</u>–

अठारह पुराणो मे वामन पुराण ही एक विशिष्ट पुराण है जिसका प्रारम्भ काव्य लालित्य से है। इसमे शिवा–शिव सम्वाद है। शिव को इसमे अनिकेत अकिंचन चित् एव अरण्यचर तथा जीमूत वाहन (बादलो के ऊपर रहने वाला) चित्रित किया गया है। इसमे विविध धर्मों एव तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है। यहा कुरूक्षेत्र और उसके तीर्थों का वर्णन विशेष है।

17 लिङ्ग पुराण–

लिङ्ग पुराण मे भी लिङ्ग क्षेत्रो विशेषकर दक्षिण भारत और विन्ध्यवन मे स्थित श्री शैल प्रमुख केन्द्र था। इसमे शिव के 28 अवतारो का वर्णन है। इसमे ग्यारह हजार श्लोक हैं। इसमे शिव लिङ्ग की पूजा का माहात्म्य वर्णित है इन शैव वैष्णवो से ही भारतीय सस्कृति की रचना हुई।

18 अग्निपुराण–

अठारह महापुराणो मे अग्नि पुराण उपयोगिता की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण पुराण है। पुराणो की जो सूचिया प्राप्त होती है उनमे अग्नि या आग्नेय नाम अवश्य मिलता है जिससे अग्निपुराण की प्राचीनता और प्रमाणिकता सिद्ध ही हो जाती है। अग्निपुराण मे तत्कालीन प्रचलित समस्त विद्याओ का सकलन है। अत इसे विश्व कोश भी कहा जाता है। अग्नि नामक देव इस पुराण के वक्ता हैं। इस पुराण को तामस पुराणो की श्रेणी मे स्थान प्राप्त है। अग्नि पुराण के 383 अध्याय के वृहत कलेवर मे कवि ने यह प्रयत्न किया है कि इसमे समस्त विषयो का समावेश किया जाय तथा उनका सक्षिप्त परिचय भी दिया जाय। अत इसमे काव्य– शास्त्र भूगोल व्याकरण आयुर्वेद ज्योतिष गधर्ववेद अर्थशास्त्र कोशग्रन्थ वाचस्पति– शास्त्र स्थापत्य कला मूर्तिकला नाटयशास्त्र वैदिक –कर्मकाण्ड आदि समस्त विषयो का समावेश किया गया है। इसी कारण इसे विद्यासार भी कहते हैं।

8–उपपुराणो की सख्या

इन अठारह महापुराणो के अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं। जो मुनियो द्वारा उपदिष्ट है–

उपपुराणानि मुनिभि कथितानि च।[1]

देवी भागवत[2] पुराण मे उपपुराणो के निम्नलिखित नाम मिलते हैं।

1 सनत्कुमार

2 नरसिह

3 नारदीय

4 शिव (कुछ पुराणो मे इसे महापुराण कहा गया है)

5 दौर्वासम (दुर्वासा)

---

1 विष्णुपुराण 3/6/25 (1)

2 देवी भागवत 1/2/13–16

कूर्मपुराण 1/1/17–20 मे इस तालिका के नामो मे अस्पष्टता है और पाठ भी अशुद्ध है।

6 कपिल

7 मानव

8 औशनस

9 वारूण

10 कालिका

11 साब

12 नन्दि

13 सौर

14 पाराशर (पाराशरोक्त)

15 आदित्य

16 माहेश्वर

17 भागवत (देवी)

18 वाशिष्ठ

देवी भागवत मे वायु पुराण को महापुराण तथा शिव पुराण को उपपुराण माना गया है।

9–<u>औपपुराणो की सख्या</u>[1]

पुराण तथा उपपुराण की तरह औप पुराण भी अठारह बताये गये हैं जो निम्नलिखित है–

1 सनत्कुमार

2 वृहन्नारदीय पुराण

3 आदित्य पुराण

4 सूर्य पुराण

5 नन्दिकेश्वर पुराण

6 कौर्म पुराण

7 भागवत पुराण

8 वशिष्ठ पुराण

9 भार्गव पुराण

---

1 ब्र० पु० भू० पृ० 8

10 मुद्गल पुराण

11 कल्कि पुराण

12 देवी पुराण

13 महाभागवत पुराण

14 वृहद्धर्म पुराण

15 परानन्द पुराण

16 वह्नि पुराण

17 पशुपति पुराण

18 हरिवश पुराण

इनकी रचना पुराणो के आधार पर ही हुई है। इन सब पुराणो को रचयिता कृष्णद्वीप मे उत्पन्न होने वाले कृष्ण द्वैपायन ऋषि पाराशर के पुत्र (पाराशर्य) व्यास को ही माना जाता है। व्यास ने इनका अध्याय अपने शिष्य लोम हर्षण को किया और उन्होने इसे उग्रश्रवा को पढाया। इस प्रकार यह परम्परा चलती रही। यह व्यास नाम इतना सब लोगो को स्वीकार्य हुआ कि इनका वाचन करने वाला हर व्यक्ति व्यास ही कहा गया। इसी परम्परा मे आज भी कथानायको को व्यास ही कहा जाता है।

10—भारतीय सस्कृति

उत्तर यत समुद्रस्य हिमादेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति ।।[1]

समुद्र के उत्तर मे तथा हिमालय के दक्षिण मे अर्थात हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक विस्तृत यह उपमहाद्वीप भारतवर्ष (भरत का देश) नाम से विख्यात है। पौराणिक गाथाओ के अनुसार इस देश पर भरत नाम का एक प्रतापी राजा राज्य करता था और इसीलिए इस देश का नाम भारतवर्ष पडा। भारतवर्ष एक विशाल भू–भाग जम्बू द्वीप का एक अग माना जाता है। हिन्दू विचारधारा के अनुसार समस्त पृथ्वी सात समकेन्द्रिक महाद्वीपो मे विभक्त मानी जाती है। इनमे बीच का महाद्वीप जम्बूद्वीप है और भारतवर्ष उसी का एक अग है। प्रारम्भिक बौद्ध प्रमाणो के अनुसार जम्बूद्वीप ई पू तृतीय शताब्दी से दैनिक प्रयोग मे आने वाला एक प्रादेशिक नाम था जिसका प्रयोग चीन को छोडकर एशिया के उस समस्त भू–भाग के लिए होता था जिसे महान् साम्राज्यवादी मौर्य राजवश ने अपनी शक्ति द्वारा प्रभावित किया था।

1 विष्णुपुराण 2/3/1

भारतवर्ष का एक दूसरा नाम हिन्दुस्तान या इण्डिया है जो कि इस देश के प्रारम्भिक आक्रमणकारियो फारस निवासियो और यूनानियो द्वारा रखा गया था। उन्होने इस देश का नाम सिन्धु या इण्डस नदी के नाम के आधार पर सिन्धु का प्रदेश रखा। फारस निवासी 'स अक्षर का उच्चारण ह' अक्षर की भाति करते है। अत उन्होने सिन्धु का उच्चारण हिन्दु किया और उसी से इस देश का नाम हिन्दुस्तान पडा। पाश्चात्यो ने सिन्धु नदी को इडस कहा और उसके आगे के प्रदेश को इण्डिया कहा गया।
अपनी विशिष्ट भौगोलिक दशाओ के फलस्वरूप भारतवर्ष इतिहास के आदिकाल से ही सास्कृतिक जीवन व प्रगति मे निरपेक्ष रहा है। इस गुण ने भारत को अपनी एक असाधारण सभ्यता की द्योतक विलक्षणताओ और विशिष्ट गुणो की वृद्धि और प्रगति करने मे समर्थ कर दिया है। भारत की सभ्यता विश्व के शेष भू–भागो की सभ्यता से अनेक महत्वपूर्ण बातो मे भिन्न है। अधिकाशत इस देश के निवासियो का स्वभाव आदते वेशभूषा धर्म विधान तथा ज्ञान वे ही हैं। जिनका उन्होने स्वय ही विकास किया है। और जिन्हे अपने लिये पूर्ण उपयोगी पाया है।

सस्कृति शब्द सस्कृत भाषा का यौगिक शब्द है। सम् उपसर्ग पूर्वक डुकृञ (करणार्थक) धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर धातु को सुट का आगम होकर सस्कृति शब्द बनता है। यहा पर 'सम्परिभ्या करोतौ भूषणे[1] सूत्र से धातु को सुट का आगम हुआ और टित् होने के कारण वह आद्यन्तौ टकितौ[2] सूत्र से धातु के पूर्व मे लगा। सम्+सुट+डुकृञ्+क्तिन् इस स्थिति मे आगम के स मे लगे उ भी उपदेशे अजनुनासिक से इत्[3] से इत् सज्ञा तथा तस्य लोप[4] सूत्र से लोप (अदर्शन लोप 116) हो गया। ट की हलन्त्यम[5] सूत्र मे इत् सज्ञा तथा पूर्व सूत्र से लोप हो गया। इस प्रकार के इत् सज्ञा और लोप को ही अनुबध लोप कहते है। इसी प्रकार धात्वादेरिटुडव[6] सूत्र से धातु के आदि मे आये डु का भी अनुबध लोप हो गया। धातु के अन्त मे आये ञ का भी अनुबध लोप हो गया। क्तिन् मे आये क की भी लशक्वतद्विते[7] सूत्र से इत् सज्ञा और पूर्व सूत्र से लोप हो गया। प्रत्यय मे लगे न् का भी अनुबध लोप हो गया सम्+स्+कृ+ति

1–अष्टाध्यायी 6/1/13
2–अष्टाध्यायी 1/1/46
3–अष्टाध्यायी 1/3/2
4–अष्टाध्यायी 1/3/9
5–अष्टाध्यायी 1/1/3
6–अष्टाध्यायी 1/3/5
7–अष्टाध्यायी 1/3/8

इस स्थिति मे सम सुटि [1] सूत्र से सम के स्थान पर रु होने को हुआ किन्तु अलोऽन्त्यस्य [2] सूत्र से अन्तिम अल म के स्थान पर रु हुआ। इसके उकार का अनुबध लोप होने पर सरु–स्–कृति इस स्थिति मे अत्रानुनासिक पूर्वस्य तु वा [3] सूत्र से र के पूर्व अ के अनुनासिक होने पर सस्कृति बना। अनुनासिक विकल्प से होता है। अत जब अनुनासिक न हुआ तब अनुनासिकात्परोऽनुस्वार [4] इस सूत्र से पूर्व को अनुस्वार होने पर सस्कृति बना। यहा खरवसानयोविसर्जनीय [5] इस सूत्र से र् का विसर्ग हुआ। इस विसर्ग का विसर्जनीयस्य स [6] सूत्र से विसर्ग का नित्य स् प्राप्त होने तथा 'वाशरि [7] इस सूत्र से विकल्प से विसर्ग ही प्राप्त होने पर 'सम्पुकाना सो वक्तव्य इस वार्तिक से विसर्ग के स्थान पर स् ही रहा। तब सॅस्कृति एव सॅस्स्कृति की स्थिति मे समो वा लोपमेके इस भाष्यकार के वचन के अनुसार सम् के म के स्थान पर आये स् का विकल्प से लोप होने पर सॅस्कृति तथा लोप न होने पर सॅस्स्कृति शब्द बना। पद बनाने के लिए एकत्व की विवक्षा मे चारो मे सु लगने पर विसर्गान्त पद बने। ऋजुमार्ग सबको प्रिय होता है। अन्य तीन पदो की तुलना मे सस्कृति इस पद का प्रयोग सरल है। अत सामान्यत इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी भाषा मे प्राय इसी शब्द का प्रयोग होता है। शोध प्रबध भी हिन्दी भाषा मे ही प्रस्तुत होना है। इसीलिए यहा भी सस्कृति शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

मूल शब्द मे सुट का आगम भूषण अर्थ मे ही हुआ है। इससे इस शब्द का अर्थ आभूषण सस्कार परिष्कार या सजावट है। यह शब्द ही इस बात का सकेत करता है कि सस्कृति के पूर्व कोई स्थिति थी जिसका सस्कार किया गया। ऐसा सोचना सही दिशा मे पादन्यास ही है। वस्तुत सस्कार के पूर्व एक स्थिति तो थी जिसका सस्कार किया जाना था।

यह माना जाता है कि आदिम अवस्था मे मानव पेडो पर निवास करता था। ऐसी दशा मे वह नग्न रहता था। उसमे धीरे–धीरे सुधार हुआ और वह पेडो के पत्तो और उसकी छालो का प्रयोग करने लगा। इसी क्रम मे उसने आग का प्रयोग भी सीखा। विकास के पथ पर चलते हुए उसने मिटटी और लकडी का प्रयोग कर मकान बनाना सीखा। मानव के इस विकास क्रम को ही सभ्यता का विकास कहा जाता है।

1–अष्टाध्यायी 8/3/5
2–अष्टाध्यायी 3/1/52
3–अष्टाध्यायी 8/3/2
4–अष्टाध्यायी 8/3/4
5–अष्टाध्यायी 8/3/15
6–अष्टाध्यायी 8/3/33
7–अष्टाध्यायी 8/3/36

सभ्यता के मूल मे सभा शब्द है। इसका आशय है जन समुदाय का एक स्थान पर एकत्र होना। जहा पर अनेक लोग किसी प्रयोजन से इकटठे होते है वही समुदाय सभा शब्द से अभिहित होता है। ऐसी सभा मे जो लोग प्रवेश करने योग्य है वे ही सभ्य हैं--सभाया साधु सभ्य । वह बात जो इनको इस योग्य बनाती है कि वे सभा मे सम्मिलित हो सके सभ्यता कहलाती है।

यदि सभा मे कोई समुचित परिधान आदि से युक्त हो तो लोग उसे सभ्य कहेगे किन्तु यदि ऐसा न हो तो उसे असभ्य कहेगे। यदि कोई व्यक्ति लोगो के बीच बैठकर जभाई लेता है या अगुलिया फोडता है या शरीर के अवयवो को तोड–मरोड कर आवाज करता है तो वह असभ्य ही कहा जायेगा। ऐसा व्यक्ति जन समुदाय मे प्रिय नही होगा। इसके विपरीत आचरण वाला व्यक्ति शिष्ट सभ्य कुशल आदि शब्दो से सबोधित होगा।

इस सभ्यता रूपी वाहन पर आरूढ होकर प्रकट हुआ भाव ही सस्कृति है। दर्जी ने कपडो को काट छाट कर पहनने योग्य बना दिया वह तो सभ्यता का प्रतीक है। इस कमीज कुर्ता आदि पर जो हृदय की अभिव्यक्ति है वे व्यक्ति की सस्कृति को अभिव्यक्त करते है। प्रकृति प्रेमी कोई भी व्यक्ति इन पर लताओ वृक्षो आदि के चित्र बनायेगा। विज्ञान–प्रिय व्यक्ति इन पर राकेट वायुयान आदि के चित्रो का निर्माण करायेगा पशु प्रेमी कोई व्यक्ति इन वस्त्रो पर पशुओ का चित्र पसन्द करेगा सभ्य बनाने वाले ये सभी परिधान अब विभिन्न व्यक्तियो की सस्कृति के प्रतिपादक होगे। जिसके हृदय का जैसा स्पन्दन होगा उसी की अभिव्यक्ति उन परिधानो पर होगी। मस्तिष्क ने वस्त्रो को काट छाट कर पहनने योग्य बनाया और हृदय ने उन पर विभिन्न प्रकार की आकृतिया दी। इसकी अभिव्यक्ति ही सस्कृति है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मस्तिष्क के माध्यम से हृदय के बोलने का नाम सस्कृति है। हृदय के इस स्पन्दन को ही सस्कृति कहते है।

प्राचीन भारत मे ऋषियो और मुनियो ने पर्वतो की अधित्यकाओ और उपत्यकाओ मे बैठकर जो चिन्तन किया और उनके हृदय की जो अनुभूति रही उसी को उन्होने प्रकट किया। उस अनुभूति का प्रकटन ही भारतीय सस्कृति की सर्वोत्कृष्ट धरोहर है। उसी का अनुपालन ही भारतीय मनीषा का उत्कृष्ट आधार बन गया। फलत वेद उपनिषद् आदि भारतीय सस्कृति के प्रतिमान बन गये। तप की अनुपम अवस्था मे ऋषियो ने वैदिक मत्रो का साक्षात्कार किया। इसी वैदिक परम्परा का अनुपालन करते हुए ब्राह्मण आरण्यक एव उपनिषद् आदि प्रस्तुत किये गये हैं। ऋषियो और मुनियो ने इन सबका हृदय मे अनुभव किया था। वे अनुभव शब्द रूप मे मानव समाज के सामने प्रस्तुत किये गये। ये सब भारतीय सस्कृति के अभिन्न

अग बन गये। मानव के हृदय मे स्पन्दन प्राय होता रहता है। उसमे परिवर्तन तो होता है अवश्य ही पर यह परिवर्तन परिलक्षित नही होता। इसी प्रकार सस्कृति मे भी परिवर्तन होता है किन्तु वह इतनी धीमी गति से होता है कि उसकी अनुभूति इसी प्रकार नही होती जैसे शैशव से कुमार कुमार से युवा युवा से प्रौढ और प्रौढ से वृद्ध होने की अनुभूति नही हो पाती। पर परिवर्तन तो होता ही रहता है। हृदय इस परिवर्तन को स्वीकार करता रहता है। यही उसका स्थायित्व है। सहज परिवर्तन को स्वीकार करने के कारण ही भारतीय सस्कृति स्थायी रह सकी। इसीलिए कहा गया है–

यूनान मिश्र रोमा सब मिट गये जहा से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी।।

ऋषियो और मुनियो ने तपोवनो और आश्रमो मे रहकर भारतीय सस्कृति के उपादानो का अनुभव किया था। फलत ये तपोवन और आश्रम भी अभिन्न रूप से भारतीय सस्कृति से जुडगये और उसके आवश्यक अग बन गये। इस आधार के बिना इस सस्कृति की कल्पना भी नही की जा सकती। भारत की धरती के विशाल क्षेत्र मे यही सस्कृति व्याप्त है। विष्णु पुराण के अनुसार हिन्द महासागर के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण के क्षेत्र का नाम भारत है और यहा स्थित सन्तति का नाम भारती है–

उत्तर यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति ।।[1]

इस भारतीय सन्तति की यही सस्कृति है। यह भारतीय सस्कृति अनेक विशेषताओ से युक्त रही है। भारत की यह सस्कृति परम प्राचीन है। विश्व के अनेक देश जब ज्ञान से शून्य थे तब यहा पर एक उत्कृष्ट सस्कृति वर्तमान थी। चीन के अतिरिक्त विश्व की सारी सस्कृतिया नयी हैं। भारतीय सस्कृति के मूलाधार वेदो का समय आज तक निर्धारित नही हो सका है। प्राचीनता के कारण ही सस्कृति महत्वपूर्ण है। विश्व आज इसकी ओर उन्मुख है।

यह सस्कृति विस्तृत क्षेत्र मे व्याप्त है जितना विस्तार पूरे यूरोप का है लगभग उतना इस भारतभूमि का है। जहा पर यह सस्कृति जन–जन को प्रभावित करती आ रही हैं। विश्व के विभिन्न जावा सुमात्रा बोर्नियो आदि द्वीपीय प्रदेशो मे यहा की सस्कृति व्याप्त है। पूरे इण्डोनेशिया की सस्कृति इससे प्रभावित है। आधुनिक समय मे विश्व के अनेक देशो मे जाने वाले भारतीयो ने वहा पर इस सस्कृति का प्रचार–प्रसार किया है।

---

1 विष्णु पुराण 2/3/1

विश्व मे प्रथम बार आत्मा के सबध मे चिन्तन भारत मे हुआ है। सारा विश्व जहा अपना उदर भरने की चिन्ता मे लगा हुआ था यहा की भूमि मे आत्मा के सबध मे चिन्तन हो रहा था। ऋषियो और मुनियो ने तपोवनो और आश्रमो मे रहते हुए निर्बाध चिन्तन कर आत्मा के सबध मे विचार प्रस्तुत किया। यह चिन्तन आज भी महत्वपूर्ण है और विश्व को प्रभावित कर रहा है। इसी सस्कृति की महत्ता के कारण भारत जगद्गुरू कहा जाता रहा है। स्वामी विवेकानद ने शिकागो के अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन मे इसी आत्मचिन्तन की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट करते हुए उसे प्रबल प्रेरणा दी थी।

भारतीय सस्कृति ने एक ओर तो आत्मा के चिन्तन की ओर ध्यान दिया है वहीं दूसरी ओर जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वो की भी उपेक्षा नही की। मानव जीवन को महत्ता देने वाले तत्वो पर भी यहा सम्यक विचार किया गया है। ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ एव सन्यास नाम से यहा जीवन का चार भागो मे बटवारा किया गया है। इसमे लौकिक जीवन को महत्ता प्रदान करते हुए पारलौकिक जीवन की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है।

भारतीय सस्कृति मे मनुष्य को कर्म करने की प्रबल प्रेरणा दी गयी है। बिना कर्म के कुछ भी सम्भव नही है। सारी की सारी उपलब्धि कर्म करने पर ही प्राप्त होती है। बिना कर्म के तो सामने रखा भोजन भी मुख मे प्रवेश नही करता उसे तो हाथ से उठाकर मुख मे रखना और चबाना ही पडेगा। बिना कार्य किये कोई क्षण भर रह भी तो नही सकता है। इसीलिए गीता मे कहा गया है--

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिण्ठत्यकर्मकृत्।[1]

कभी--कभी कर्म करने पर भी सफलता नही मिलती। यहा पर तो भाग्य की उपस्थिति को ही मान्यता दी गयी है। यदि भाग्य मे नहीं है तो भोजन की थाली भी सामने से हट जायेगी। इसी को भाग्य का नाम दिया गया है। यहा भी कर्म की ही महत्ता है। क्योकि पूर्वजन्म मे किया गया कर्म ही भाग्य बनकर प्रकट होता है--

पूर्वजन्मकृत कर्म दैवमित्यभिधीयते।

यदि कर्म की असफलता का भाग्य की खूटी पर टाग कर निश्चिन्त न हुआ जाय तो मनुष्य या तो पागल हो जायेगा या आत्महत्या कर लेगा। भाग्य की भावना ही उसको इन दोषो से बचाती है और सफलता के लिए पुन कर्म करने की प्रेरणा देती है।

भारतीय सस्कृति एक ओर जहा अपनी उदान्तता के कारण महत्वपूर्ण रही है वहीं उसने

अन्य सस्कृतियो से ग्रहण करने मे भी उदारता बरती है। हूण शक कुषाण आदि न जाने कितनी जातिया आयी किन्तु यहा की सस्कृति ने इस प्रकार उसको आत्मसात कर लिया कि उनका पृथक अस्तित्व ही समाप्त हो गया। सब दूध और पानी की भाति एक दूसरे से इस प्रकार घुलमिल गये कि उनको पृथक करना असभव हो गया। यदि यहा भी सस्कृति ने उनके गुणो को ग्रहण न किया होता तो उनका अस्तित्व अलग ही बना रहता किन्तु इस सस्कृति की पाचन शक्ति ने सबको अपने मे मिला लिया।

भारतीय सस्कृति का एक अतिविशिष्ट अथवा सर्वोत्कृष्ट गुण है उसकी सहनशीलता। विदेशी आक्रमणो के आघातो और प्रतिघातो को सहने मे यह सस्कृति समर्थ रही है। इसी कारण इसने अपने आपको अक्षुण्य बनाये रखा। यद्यपि यहा पर अनेक महापुरूषो को महत्ता देने वाले मत विद्यमान है परन्तु उनमे कही भी टकराहट नही रही। राम कृष्ण शिव दुर्गा हनुमान महावीर बुद्ध आदि का मानने वाले लोग एक साथ रह रहे है। उनमे सह अस्तित्व की भावना विद्यमान है। ईसा तथा मुहम्मद को भी यहा सम्मान जनक स्थान प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद का एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' वाक्य सारे भारतीय जीवन को प्रभावित करता आ रहा है और सबको एक सूत्र मे समेटे हुए है।

पूर्व विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत अनेकताओ का देश है। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम मे यहा पर विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा मिटटी प्राप्त होती है। कहीं पर शैत्य से हडिडयो को ठण्डी कर देने वाली वायु बहती है तो कही पर चमडी को झुलसा देने वाली गरम हवा चलती है। साथ ही कही पर सम शीतोष्ण है। कही पर अत्यधिक उपजाऊ भूमि है तो कहीं पर रेतीली अथवा पथरीली भूमि है जहा पर एक दाना भी उत्पन्न करना सभव नही है। कहीं पर गगा–यमुना का उपजाऊ कछार है तो कही पर थार का रेगिस्तान।

इसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदायो को मानने वाले भी यहा साथ ही रहते है। हिन्दू, मुसलमान ईसाई पारसी आदि सम्प्रदायो को मानते हुए लोग सह–अस्तित्व की भावना से एक साथ रहते हैं। हिन्दुओ मे भी सिख सनातनी वैष्णव शैव शाक्त जैन बौद्ध भी अपनी मान्यताओ के साथ यहा पर रहते हैं और आपस मे कोई टकराव नहीं होता है।

परिधानो मे भी यहा विविधताये हैं कोई पैन्ट बुशर्ट पहनता है तो कोई कुर्ता पायजामा या कुर्ता धोती सूट सदरी और शेरवानी भी लोगो की शान मे वृद्धि करते हैं। सबकी रूचिया भिन्न–भिन्न हैं–भिन्न रूचिर्हि लोक । फिर भी सब एक ही भारत माता के सपूत हैं। सभी समयानुसार भारत माता के लिए अपना योगदान करते रहते है। इस प्रकार यहा विविधता मे एकता सदा उल्लसित होती रहती है।

भारत की यही जीवनी शक्ति है जो अनेक झझावतो को झेलकर उसे इसी प्रकार स्थिर बनाये रखती है जैसे कोई पर्वत अनेक तूफानो को झेलकर भी स्थिर बना रहता है। जिस प्रकार अनेक प्रकार के फूलो को एक सूत्र अदृश्य रहकर सबको सजोये रहता है उसी प्रकार भारतीय सस्कृति भी विविधताओ को देशभक्ति की भावना से पिरोये हुए एक साथ बनाये रखती है।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय सस्कृति मनुष्य को इस लोक तथा परलोक दोनो की प्रेरणा देती है। इस लोक की सफलता के लिए जहा उसने भोगों का प्रतिपादन किया है वहीं इस जीवन के बाद के आमुष्मिक जीवन के लिए भी उसने पथ प्रशस्त किया है। मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्रगतिशील सामाजिक प्राणी है। वह अपने परिवार समाज जाति देश तथा विश्व की प्रगति के लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है। उसके मन के विचार अनुसधान और चेष्टाये एक विशिष्ट परम्परा का निर्माण करती हैं। सस्कृति ऐसे तत्वो की समष्टि है जिससे मानव जीवन नियत्रित एव व्यवस्थित होता रहता है। वह एक ऐसा मानसिक दृष्टिकोण है जो व्यक्ति जाति अथवा राष्ट्र को समुन्नत एव परिष्कृत करने का कार्य करता है। सस्कृति का अध्ययन किसी भी व्यक्ति मे अपने देश के प्रति स्वाभिमान एव गौरव की भावनाओ को उद्दीप्त करने मे समर्थ है। ये भावनाये राम और कृष्ण को अपने आदर्श महापुरूषो के रूप मे स्वीकार करती है। वेद उपनिषद् रामायण महाभारत गीता आदि आज भी भारतीय धार्मिक विचारो के आधार हैं। गीता मे भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो सब कही मुझे देखता है और सबको मुझमे देखता है मैं उससे कभी अलग नही होता और न ही वह मुझसे कभी अलग ही होता है [1]

एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

अर्थात् ईश्वर एक ही है जिसे अनेक नामो से जाना जाता है। जीव इसी ईश्वर का अश है—अशोनानाव्यवदेशात[2] गीता मे भी कहा गया है ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन ।[3] इस जीव को मृत्यु होने के बाद से पुन जन्म लेने तक बीच मे कर्म—पिपाक के लिए कुछ समय परलोक मे बिताना पडता है।[4] इसी सबध मे वेदो मे सभी प्राणियो को मित्रवत् मानने का आदेश दिया गया है। त्याग करके उपभोग– तेन व्यक्तेन भु०जीथा उपनिषदो का मूलमत्र है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि भारतवासी जानते हैं कि इस भौतिक सृष्टि के मूल मे वह सत्य और दिव्य आत्म तत्व निहित है जिसे पाप कलुषित

1—श्रीमद्भगवद्गीता 6/30 यो मा पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्चति।
तस्याह न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

2—वेदान्त सूत्र 2/3/42

3—वेदान्त सूत्र 15/7

4—बृहदारण्मकोपनिषद्—4/4—6/2

नही कर सकता। उनकी दृष्टि मे मनुष्य की परा–प्रकृति (आत्मा) उतनी ही सत्य है जितनी कि एक पाश्चात्य व्यक्ति के लिए कोई भौतिक पदार्थ। भारतीय राष्ट्र अमर है जब तक कि भारत के लोग आध्यात्मिकता मे अपनी आस्था बनाये रखेगे। यही कारण है कि भारत मे मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा अग हो जो धर्म से अनुप्राणित न हो। पुराणो मे व्यक्त–अव्यक्त निर्गुण एव सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। सोऽह चिल्लाना आसान है परन्तु समझना और जीवन मे धारण करना कठिन है। भागवत पुराण के बारहवे स्कन्ध अर्थात (भागवत की) परीक्षित कथा के अन्तिम चरण मे महाराज परीक्षित को हरिकथामृत पान करते हुए भूख–प्यास भी नहीं लगती थी अर्थात् देह की विस्मृति हो गयी थी। ऐसी स्थिति को ही (इन्द्रियो को विषयो से निकालकर पुरूषोत्तम प्रभु से जोडने की क्रिया को) योग (भक्तियोग) कहा गया है।[1] और उस समय ही ध्येय का ध्यान किया जाता है–

शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति।

अयमात्मा पर ब्रह्म अह ब्रहमास्मि विद्धि तम्।।

सिध्य सिध्यो समोयोगी।।[2]

यही भगवद्गीता का भी उपदेश है। भगवान् ने अर्जुन से कहा जो अशोच्य है उसकी चिन्ता क्यो करते हो? योगी की भाति समबुद्धि होकर स्वधर्म का पालन करो। अग्नि पुराण के युग मे क्षत्रिय युद्ध से भयभीत होकर पलायन कर रहे थे। अत उनको राजधर्म का पालन करने का आदेशोपदेश दिया गया था।[3]

राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापाल सुदण्डवान्

वास्तुलक्षण सयुक्ते वसन् दुर्गे सुरान्यजेत्।[4]

प्रजाश्चपालयेद् दुष्टान्जयेद्दानानिदापयेत्।।

इस प्रकार अग्निपुराण के युग मे समाज (प्रजावर्ग) की रक्षा करना और राष्ट्रसमृद्धि राजधर्म (क्षात्रधर्म) पालन पर ही आधारित था। साथ ही धर्मोपदेशक तथा धर्माधर्म का विवेक करने के बाद सत्पथ का प्रवर्तन तथा नास्तिक पाखण्ड मार्ग का दमन ब्राह्मणो के द्वारा सम्यक स्वधर्म पालन पर ही निर्भर करता था। राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि वैश्य (वणिक) वर्ग पर आधारित थी तथा विविध शिल्पो की उन्नति शूद्रो और सकर जातियो (शिल्पी व्यवसायी जातियो) के उद्योग पर आधारित थी। इस प्रकार समाज के सभी अगो की पुष्टि

1–भगवतपुराण–11–20/8

2–अग्निपुराण–14/2/21–3

3–अग्निपुराण–218/2/21

4–अग्निपुराण–222/10

कर्मशीलता एव अद्रोहभाव पर ही टिकी हुई थी।

चारो वर्णों और चारो आश्रमो की व्यवस्था को मर्यादा[1] (धर्म मर्यादा) माना गया था। वेद विहीन (वेद विरोधी) बौद्ध पाखण्डवादियो द्वारा समाज मे वेदविरोधी उपदेशो तथा प्रचार से सद्धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि हो रही थी।[2] इसी समय (लगभग 712 ई–750 ई) सिन्ध आदि प्रदेशो मे देवपराभव हुआ और दैत्य दस्यु शीलहीन म्लेच्छ राजा हो गये–

म्लेच्छा पार्थिवरूपिन।[3]

इनको कल्कि द्वारा नष्ट सद्धर्म और वर्णाश्रम धर्म मर्यादा को पुन स्थापित कर कृतयुग की स्थापना[4] करने वाला कहा गया है। लोग (प्रजागण) अपने–अपने धर्मों का पालन करने लगे। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था स्वधर्म पालन पर आधारित थी।

भारतीय साहित्य विशेषकर पुराणो मे चार युगो की व्यवस्था और उन चारो युगो के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन के उतार–चढाव का वर्णन किया गया है। सतयुग (कृतयुग) धर्म मे अपने पूर्व परिवेश मे विद्यमान था और सभी लोगो द्वारा मान्य था। धर्म ही पथ प्रदर्शक था। इस समय धर्म के चारो अग ¥/leZp r q1kn &/leZ/ F$% d le v)$ e)$k /leZd sp)g)e1n¥ 1 gf(kr F& s/le)$ सत्य तप ज्ञान और दान थे। त्रेता मे तीन द्वापर मे दो और कलियुग मे धर्म का एक ही पाद शेष रह गया। इस प्रकार धर्म मे धीरे–धीरे क्षीणता आ गयी। कलियुग को क्षीणयुग और युगान्त ही कहा गया है जिसमे अधर्म और अनीति तथा म्लेच्छो असुरो के प्राबल्य तथा देव पराभव के उल्लेख मिलते है।

यहा की सात पवित्र नदिया–गगा यमुना गोदावरी सरस्वती नर्मदा सिन्धु तथा कावेरी।[5] सात पर्वत–महेन्द्र मलय सहय शुक्तिमान ऋक्ष्य विन्ध्य तथा पारिपात्र तथा सात नगरिया– अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्ति पुरी तथा द्वारावती[6] देश के विभिन्न भागो मे बसी हुई होने पर भी देश के सभी निवासियो के लिए समान रूप से श्रद्धेय रही है।

1–अग्निपुराण–16/9–1
2–अग्निपुराण–16/2–(2)–5
3–अग्निपुराण–16/1(2) 6–7
4–अग्निपुराण–16/8–11
5–गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरू।।
6 अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका।। (सभ्यता एव सस्कृति–के० सी० श्रीवास्तव)

भारतवर्ष की गौरवपूर्ण सस्कृति ने भी एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई प्रदान की है। उत्तर से हिमालय पर्वत एक ऊची दीवार के समान इसकी रक्षा करता रहा है तथा हिन्द महासागर इस देश को पूर्व पश्चिम तथा दक्षिण से घेरे हुए है। इन प्राकृतिक सीमाओ द्वारा वाह्य आक्रमणो से अधिकाशत सुरक्षित रहने के कारण भारत देश अपनी एक सर्वथा स्वतत्र तथा पृथक सभ्यता का निर्माण कर सका है। यहा एक विभिन्नताओ के मध्य एकता दिखाई देती है जिसकी कोई उपेक्षा नही कर सकता। फलस्वरूप विभिन्नता मे एकता भारतीय सस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता बन गयी है। प्रोफेसर हुमायूँ कबीर (पूर्व केन्द्रीय मत्री) ने ठीक ही कहा कि भारतीय सस्कृति की कहानी एकता और सम्बन्धो का समन्वय है। तथा प्राचीन परम्पराओ और नवीन मानो के पूर्ण सयोग की कहानी है। यह प्राचीनकाल से रही है और जब तक यह विश्व रहेगा तब तक सदैव रहेगी। दूसरी सस्कृतियाँ नष्ट हो गईं परन्तु भारतीय सस्कृति इसकी एकता अमर है।[1]

भारत मे आध्यात्मिकता के अन्तर्गत जीव ईश्वर जगत और माया के स्वरूप का ज्ञान और परमात्मा की प्राप्ति को मानव जीवन का परम पुरूषार्थ स्वीकार किया गया है। पुरूषार्थचतुष्टय को ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है ये है धर्म अर्थ काम और मोक्ष। यहा अधिकार से अधिक कर्तव्य पर जोर दिया गया है। भारतीय सस्कृति प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण मे विकसित हुई है। इसको दिव्य स्वरूप गुरूकुलो के सचालक एव आश्रमो के प्रतिष्ठापको ऋषियो ने प्रदान किया है। अत इस सस्कृति मे ग्राम्य और अरण्य जीवन को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। भारतीय सस्कृति अपनी अनुपम विशेषताओ के कारण गतिमान रही। यहा वेद पुराण उपनिषद रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों का सर्वत्र सम्मान है तथा शिव और विष्णु आदि देवता सर्वत्र पूजे जाते हैं। यद्यपि यहा अनेक भाषाये हैं तथापि वे सस्कृति से ही उद्‌भूत अथवा प्रभावित हैं। धर्म शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था भी सर्वत्र एक समान ही है। वर्णाश्रम पुरूषार्थ आदि सभी समाजो के आदर्श रहे हैं। राजसूय अश्वमेघ आदि यज्ञो के अनुष्ठान द्वारा चक्रवर्ती सम्राटो ने सदैव इस भावना को व्यक्त किया है कि भारत का विशाल भूखण्ड एक है।

इस प्रकार विभिन्नता मे एकता भारतीय सस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता बनी हुई है। इसकी गुणवत्ता के कारण ही भारत पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक एक सूत्र मे बधा हुआ है। भारतीय सस्कृति एक जड विचार धारा नही अपितु एक जीवित प्रक्रिया है। यह परिवर्तन शील परिस्थितियो

---

3 भारतीय सभ्यता और सस्कृति का विकास– वी एन लूनिया पृ० 13

मे अपने मूल को सुरक्षित रखते हुए शनै शनै विकसित होती चली आ रही है। इसने विरोधो को सम किया और अपनी आत्मा अथवा मूल स्वरूप को बनाये रखा है। यह प्रभावित तो हुई किन्तु पराजित नही हुई।

द्वितीय अध्याय

अठारह पुराणों में अग्निपुराण

अठारह पुराणो मे अग्निपुराण

1—अग्नि पुराण का स्वरूप

भारतीय सस्कृति की अमूल्य निधि पुराणो से ही सम्पूर्ण विश्व का वाङमय उत्पन्न है इसमे कोई सशय नहीं है।[1] जो बाते वेदो और स्मृतियो से भी अविज्ञात है वे सब पुराणो मे वर्णित हैं। विद्वानो के श्रुति—स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय है इनमे से जिसे श्रुति—स्मृति मे से किसी एक का ज्ञान नही है वह काना दोनो के ज्ञान से हीन अन्धा है किन्तु जो पुराण रूपी विद्या से हीन है वह तो हृदय हीन या शून्य होने के कारण इन दोनो से भी निकृष्ट है। चौदह विद्याओ मे पुराण विद्या ही उत्तम दीपक है इसके आलोक मे स्थित अन्धा भी ससार सागर मे कभी नहीं गिरता।[2]

यद्यपि पुराणो उपपुराणो तथा औपपुराणो की सख्या अठारह है तथापि इसे अन्य दृष्टि से देखा जाय तो ये अठारह पुराण स्वतत्र नही अपितु एक ही पुराण के अठारह प्रकरण है। जैसे एक ग्रन्थ के कई अध्याय होते हैं वैसे ही एक पुराण के अठारह अध्याय है यही कारण है कि उनका क्रम नियत है। स्वतत्र ग्रन्थो का कोई नियत क्रम नही रहता। वह लेखक की इच्छानुसार आगे पीछे रखा जा सकता है किन्तु पुराणो मे ऐसा नही हो सकता उनका एक नियत क्रम है। सप्तम कहने पर मार्कण्डेय पुराण का ही बोध होगा त्रयोदश कहने पर स्कन्दपुराण ही समझा जायेगा। इसकी सख्या मे कभी फेरबदल नही हो सकता। एक ग्रन्थ के अध्यायो मे उलटफेर नही किया जा सकता ऐसा करने पर ग्रन्थ का स्वरूप ही बिगड जाता है। अत पुराण सर्वदा निम्न क्रम से ही समझे जाते हैं—(1) ब्रह्म (2) पद्म (3) वैष्णव (4) वायव्य (शैव) (5) भागवत (6) नारद (7) मार्कण्डेय (8) आग्नेय (9) भविष्य (10) ब्रह्मवैवर्त (11) लैङ्ग (12) वराह (13) स्कन्द (14) वामन (15) कौर्म (16) मत्स्य (17)गरूड (18) ब्रह्माण्ड।

अठारह महापुराणो मे अग्निपुराण का आठवा स्थान है—

ब्रह्मादीनि पुराणानि हरि विद्या दशाष्ट च।
महापुराणे हयाग्नेये विद्या रूपो हरि स्थित ।।[3]

अर्थात ब्रह्म आदि अठारहो पुराण भगवान विष्णु की ही विद्याये हैं। आग्नेय पुराण मे विद्यारूप

1—नारदीय पुराण उ0अ0 24

2—स्कन्द पुराण काशीखण्ड 2/97 100

3—अग्निपुराण 271/13

भगवान् विष्णु ही अवस्थित है। अग्निपुराण मे समस्त परा और अपरा विद्याओ का सार भर दिया गया है।

पुराणो मे एक ओर जहा सर्ग प्रतिसर्ग आदि पाच लक्षणो का प्रतिपादन किया गया है वही दूसरी ओर तीर्थों देवालयो व्याकरण ज्योतिष छन्दस आदि का भी निरूपण किया गया है। इन वर्णनों के अतिरिक्त इन पुराणो की एक विशेषता और भी हैं । समस्त भारतवर्ष मे तीन देवो की पूजा विशेष रूप से की जाती है ये देव है—शिव शक्ति और विष्णु। ये सभी पुराण इनमे से किसी न किसी देवता से मुख्य रूप से सम्बद्ध है इन पुराणो मे इन्हीं देवताओ को आधार बनाकर रचना की गयी है इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित तालिका ध्यातव्य है।

1—ब्रह्म — विष्णु

2—पद्म — विष्णु

3—विष्णु — विष्णु

4—वायु — शिव

5—भागवत— विष्णु

6—नारदीय— विष्णु

7—मार्कण्डेय— शक्ति

8—अग्नि — विष्णु

9—भविष्य — शिव

10—ब्रह्मवैवर्त— विष्णु

11—लिङ्ग — शिव

12—वाराह — विष्णु

13—स्कन्द — शिव

14—वामन — विष्णु

15—कूर्म — शिव

16—मत्स्य — विष्णु

17—गरूड — विष्णु

18—ब्रह्माण्ड — विष्णु

लोक मे सत्व रजस् और तमस् ये तीन गुण माने जाते हैं। समस्त सृष्टि इनसे ही व्याप्त है।

पुराणो मे भी इनकी महत्ता स्वीकार की गयी है कुछ पुराण सात्विक है तो कुछ राजस तथा कुछ तामस। इस विचार से निम्नलिखित तालिका दृष्टव्य है।

(क) सात्विक पुराण–

(1) विष्णु (2)नारद (3) भागवत (4) गरूड (5) पद्म (6) वराह।

(ख) राजस पुराण–

(1) ब्रह्माण्ड (2) ब्रह्मवैवर्त (3) मार्कण्डेय (4) भविष्य (5) वामन (6) ब्रह्म।

(ग) तामस पुराण–

(1) मत्स्य (2) कूर्म (3) लिङ्ग (4) शिव (5) स्कन्द (6) अग्नि।

पद्मपुराण मे अग्नि पुराण को तामस पुराण के रूप मे स्वीकार किया गया है।[1] पुराणो मे ही कहा गया है कि तामस वह पुराण होता है जिसमे अग्नि अथवा शिव की महिमा का प्रधानत प्रतिपादन किया गया है। मत्स्य पुराण मे भी इस मत का प्रमाण प्राप्त है।[2]

अग्नि पुराण मे पुराण पञ्चलक्षणम् का पूरी तरह से प्रतिपादन किया गया है। इसके साथ ही आश्रमो तीर्थों एव अनेक विद्याओ आदि का भी वर्णन करने के कारण इसे विद्यासार पुराण कहा गया है। अन्य पुराणो के आध्यात्मिक चिन्तन के साथ ही यहा लौकिक जीवन में व्यवहार में आने वाले ज्ञान का भी सम्यक विवेचन किया गया है। इस कारण पुराणो मे यह अतिविशिष्ट है। यद्यपि गरूड[3] पुराण मे भी कुछ व्यावहारिक विषयो का वर्णन है किन्तु अग्नि पुराण मे विषय एव विवेचन का विस्तार है इस कारण इसकी महत्ता मे वृद्धि हो गयी है।

अग्निपुराण के 271वे अध्याय मे कहा गया है कि व्यास रूपी भगवान विष्णु ने वेदो का विभाजन करने के बाद इतिहास (महाभारत) और पुराण की रचना की। इतिहास पुराण को विष्णु ही समझना चाहिये–

विष्णु रितिहास पुराणकम ।।[3]

व्यास मुनि से लोम हर्षक नामक पौराणिक सूत ने पुराणो को प्राप्त किया उनके छ शिष्य हुए–

(1) सुमति

(2) अग्निवर्चा

1–पद्मपुराण 6–263 – 81–82

2–मत्स्य पुराण 53–68–69

3–अग्निपुराण 271/10

(3) मित्रयु

(4) शाशपायन

(5) कृतव्रत

(6) सावर्णि

इन छ शिष्यो ने पुराण सहिताओ की रचना की। इस प्रकार ब्रह्म आदि अठारह पुराण सहिता बनी।[1]

अग्निपुराण

अग्निपुराण विषयगत विविधता तथा लोकोपयोगिता की दृष्टि से अठारहो महापुराणो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अनेकानेक विद्याओ का समावेश होने के कारण पुराकार का स्वय का कथन है—

आग्नेय हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्या प्रदर्शिता।[2]

अर्थात् इस आग्नेय (अग्नि) पुराण मे समस्त विद्याओ का वर्णन है। आग्नेय का अर्थ है— अग्नि से सबधित अथवा अग्नि द्वारा प्रोक्त। भगवान अग्नि देव ने महर्षि वशिष्ठ को यह पुराण सुनाया था। इसीलिए अग्नि देव के नाम से यह अग्नि या आग्नेय पुराण कहलाता है।[3] मत्स्य पुराण के अनुसार— जिसमे ईशान कल्प के वृतान्त का आश्रय लेकर अग्नि ने महर्षि वशिष्ठ के प्रति उपदेश किया उसे अग्नि पुराण कहते हैं।[4] स्कन्द पुराण के प्रभासखण्ड[5] तथा नारदीय पुराण[6] मे भी इसी मत का प्रतिपादन किया गया है।

अग्निपुराण वैष्णव पुराण है। पद्म पुराण मे पुराणो को भगवान विष्णु का ही विग्रह अथवा मूर्त रूप बतलाया गया है और उनके विभिन्न अग ही विभिन्न पुराण कहे गये है। इस दृष्टि से अग्नि पुराण को भगवान श्री हरि का बाया चरण कहा गया है—

अङ्घ्रिर्वामो हयाग्नेयमुच्यते।[7]

अग्निपुराण मे कहा गया है कि विद्यारूपी भगवान विष्णु सप्रपन्च—निष्प्रपन्च एव मूर्तामूर्त स्वरूप मे विद्यमान है।[8] ऐसा समझकर उनकी पूजा स्तुति करने से भुक्ति—मुक्ति की प्राप्ति होती है। आग्नेय पुराण तो

1—अग्निपुराण 271/11—14

2—अग्निपुराण 383/51

3—अग्निपुराण 272/10

4—मत्स्यपुराण 53/28

5—स्कन्दपुराण 2—47

6—नारदीय पुराण 53—28

7—पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 62—4

8—अग्निपुराण—303—64

विष्णु का महत्रूप है। इसका कर्ता और श्रोता भी विष्णु ही है। इसलिए अग्नि पुराण अत्यन्त महत्वपूर्ण वेदमय एव सर्व विद्यामय तथा सर्वज्ञानमय पुराण है। ऐसे विष्णु रूप (सर्वात्महरिरूप) पुराण का पठन पाठन और श्रवण सभी वर्गों ब्राह्मण (विद्यार्थिना) क्षत्रिय (राज्यार्थिना) वैश्य (घनार्थिना) एव धार्मिक लोगो को धर्म स्वर्ग पुत्रादि तथा मुक्ति और जय देने वाला है अत यह–

सवेप्सुना सर्वदतु मुक्तिद मुक्तिकामिनाम्।

पापघ्न पापकर्तृणामाग्नेय हि पुराणकम्।।[1]

पापो को नष्ट करने वाला आग्नेय शास्त्र है। यह पाप और पापकर्मियो (दस्युओ एव नास्तिको) का दमन कर धर्म विद्या तथा धार्मिको के हृदयो मे धर्म रति बढाता है। इस पुराण मे विष्णु रूपी अग्नि की पूजा और महिमा का विशेष वर्णन है–

कालाग्निरूपिण विष्णु ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम्।

मुनिभि पृष्टवान देव पूजित ज्ञानकर्मभि ।।[2]

विद्या तथा अग्नि रूप विष्णु (द्विविध विष्णुरूप) की महिमा सभी वेदो मे गायी गयी है। वही परमात्मा अग्निरूपी विष्णु देवताओ का मुख भी है। धर्म के भी दो रूप प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म के आधार ध्यान योग हैं। अग्नि पुराण के अनुसार जप स्तुति तथा प्रणाम से ही पाप नष्ट होते है।[3]

अग्निपुराण इस दारूण–घोर–कलियुग का महापुराण था जिसमे यवनो को पश्चिमी सीमा पर स्थित बताया गया है।[4] इन यवनो (म्लेच्छ) को म्लेच्छपार्थिवो[5] और दस्यु कहा गया।
अग्निपुराण के प्रारम्भ मे ही म्लेच्छपार्थिवा[6] (मुस्लिम राजाओ) का वर्णन है और इन्हे ही दस्यव[7] (दस्युगण) कहा गया है।

ऐसे सकट कालीन समाज को सगठित करना श्रेयस्कर था। ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व को निखारने के लिए अडतालीस सस्कारो का वर्णन किया गया है तथा उसके षटकर्मों के पालन पर भी बल दिया गया है। इसी प्रकार क्षत्रिय का क्षात्र धर्म वीर्य शौर्य वृत्ति तथा युद्ध से अपलायन का उपदेश दिया गया है। राजा

1–अग्निपुराण 271/22
2–अग्निपुराण–1/11
3–अग्निपुराण 174/13–15(1)
4–अग्निपुराण–118/6(1) 118/6
5–अग्निपुराण– 16/7
6–अग्निपुराण– 16/7(2)
7–अग्निपुराण– 16/6(1)

का प्रमुख धर्म था–

राजा मवेच्छत्रुहन्ता प्रजापाल सुदण्डवान्।[1]

राजा का प्रमुख कर्तव्य था कि वह अपनी सेना को सुनियोजित कर शत्रु पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दे परन्तु क्षत्रिय शत्रुओ को तो पराजित करते रहे पर देश से निकाल न सके। वे शत्रु ही राष्ट्र भग के कारण बने।

इस पुराण के मूल वक्ता अग्निदेव ने ही सर्वप्रथम मुनि समाज मे इस पुराण का वशिष्ठ मुनि से वर्णन किया था। यह वेद सम्मित पुराण है इसके पढने (स्वाध्याय) तथा वाचन करने से भुक्ति (लौकिक सुख और भोग) तथा मुक्ति प्राप्त होती है।[2] भारतीय परम्परा के अनुसार मुक्ति और मुक्ति को ही धर्म सिद्धि (अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि) कहते है। इस जीवन दर्शन को त्रिवर्ग सिद्धि (धर्म अर्थ और काम–भोग) तथा चतुर्वर्ग (मोक्ष) के रूप मे ग्रहण किया गया था। इसी आचार पर समाज को चार वर्णों (गुणो और गुणो के अनुरूप कर्मों) मे विभक्त किया गया था। चारो वर्णों का क्रम भी ब्रह्म प्राप्ति का सोपान ही था। जन्म से सभी शूद्र होते थे। किन्तु सस्कार उनमे परिवर्तन किया करते थे। ब्राह्मणजात (ब्राह्मण के घर मे ब्राह्मणी योनि से उत्पन्न) व्यक्ति उपनयन सस्कार से द्विजत्व (दूसरा जन्म) आध्यात्मिक देह और कर्म–ज्ञान–भक्ति द्वारा अन्य यज्ञादिक–ब्राह्मणीय सस्कारो[3] (अडतालीस) से द्विजत्व ब्राह्मणत्व) प्राप्त कर ब्रह्मभूत हो जाता था। उस समय उसका व्यक्तित्व आठ आत्मगुणो से सपन्न (स्पृहणीय) हो जाता था। ऐसे ही ब्राह्मण को समाज का गुरू कहा जाता था। परन्तु वह अपने धर्म तथा कर्मों से च्युत होकर पुन शूद्रत्व को प्राप्त करता था। यही वर्णों का उतार चढाव (अवरोह एव आरोह) था।

इसी प्रकार शूद्र वैश्य और क्षत्रिय भी अपने धर्मों और कर्मों के पालन से ऊपर चढते थे तथा धर्म कर्म त्याग से उनका भी अध पतन होता था।

आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत जीवन को चार भागो मे विभक्त कर ऋषि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अध्ययन (विद्या) गृहस्थ जीवन (भुक्ति) और फिर त्याग की ओर (वैराग्य) तथा ज्ञान से घर छोडकर (अनिकेत) परिव्राजक चर्या करते हुए सन्यास की ओर मोक्ष प्राप्ति के लिए ही प्रयत्नशील रहते थे। परन्तु राष्ट्र और समाज के सकट काल मे राष्ट्र और समाज की सेवा करना भी उनका परम धर्म हो जाता था। अग्निपुराण मे ऐसे ही ऋषियो ने भारतीय साहित्य (काव्यादि) व्याकरण तथा आयुर्वेद और धनुर्वेद का

1–अग्निपुराण–2/8(2)

2–अग्निपुराण– 1/8(2)–10

3–अग्निपुराण– अध्याय 32

सकलन कर उसे नया जीवन दिया।

अग्निपुराण कालीन समाज और राष्ट्र घोर सकट मे फसा था क्योकि राष्ट्र की पश्चिमी सीमा पर यवनो[1] (कालयवन–कृष्णयवन न कि श्वेतयवन) ने अधिकार कर लिया था। इस प्रकार सिन्ध के आसपास और सिन्ध प्रदेष का ही एक भाग यवन देश[2] (मुस्लिम प्रदेश–म्लेच्छखण्ड) बन गया था। यहा से वे मध्य देश और अब दक्षिणापथ की ओर भी अपनी सत्ता बढाने का प्रयत्न कर रहे थे।

ऐसे सकट के समय ताजिकानल अथवा कलिदावानल से नष्ट होने से बचाने के लिए भातरीय मनीषी ब्राह्मणो (ब्राह्मणा ये मनीषिण) तथा पौराणिको ने अग्निकोश (महाकोश) की पुराण सहिता रची इसे ब्रह्म रूप (आग्नेय ब्रह्मरूपपुराण)[3] ही कहा गया है। यह विद्यासार पुराण सम्पूर्ण विद्याओ (परा ब्रह्मविद्या ब्रह्मज्ञान वेदान्त) तथा अपरा विद्या (वेद वेदाग आयुर्वेद पुराण धनुर्वेद गन्धर्ववेद अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र

मीमासा और न्याय अर्थात् अठारह विद्याओ का सारभूत है।[4] जिसकी धारणावृत्ति विष्णुशक्ति पर आधारित है उसे कलि हानि नही पहुचा सकता। सभी कारणो का भी जो आदि कारण है उस विष्णु (महाविष्णु ब्रह्म) का ध्यान करने वाला पराभव नहीं पाता है।[5] इसमे वर्णित दो प्रकार के मार्ग है–

1– दैव या विष्णुभक्ति मार्ग

2– आसुरी मार्ग जो दैवमार्ग का विरोधी है। अर्थात् जो विष्णु वैष्णवो तथा वैष्णव धर्म का शत्रु है।[6] इससे स्पष्ट होता है कि इस युग की प्रमुख विशेषता देवासुर युद्ध था।[7]

धर्म सरक्षण अर्थात् देवमार्ग और दैवी शक्तियो की रक्षा के लिए ही तथा अधर्म नाश और दैत्यादिको

1–अग्निपुराण– 118/5 (2)–8(3) पाठ भ्रष्ट है।

2–अग्निपुराण– 118/5 (2) नवभेदा भारतस्य मध्य देशोऽथ पूर्वत।
118/6 (1) किरातायवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्चमध्यत
118/8 (3) पश्चिमेकुरूपाचाल मध्यदेशादय स्थिता।

शुद्ध पाठ होना चाहिये
पूर्वत किराताश्चयवनाश्चापि पश्चिमे।

अन्य पुराणो मे प्राप्त होता है–
पूर्वेकिरातायस्यान्ते पश्चिमेयवना स्थिता।

3–अग्निपुराण– 383/1

4–अग्निपुराण 383/2–5

5–अग्निपुराण 383/6

6–अग्निपुराण–383–/12 द्विविधो भूत सर्गोऽयदैव आसुर एव च।
विष्णुभक्ति परो दैवो विपरीतस्तथाऽसुर ।।

7–अग्निपुराण–276/10

के दमन के लिए ही देवकी तथा वासुदेव से तपस्वी वासुदेव कृष्ण का आविर्भाव हुआ।[1] इसी लक्ष्य के लिए उन्होने विविध (असख्य) अवतारो को धारण किया। कर्म व्यवस्था अर्थात् धर्म व्यवस्था को स्थापित करने के लिए ही भगवान विष्णु मनुष्य रूप मे अवतरित होते है यथा वामन परशुराम रामदाशरथि वासुदेव कृष्ण बुद्ध और कल्कि आदि।[2] इस प्रकार भगवान विष्णु ही विविध अवतारो द्वारा धर्मपालन और धर्मरक्षण करते हैं। प्रथम अध्याय की प्रस्तावना के बाद अध्याय 2 से अध्याय 16 तक विष्णु के दशावतारो का वर्णन किया गया है। यह इस महापुराण की प्रमुख विशेषता है। इसमे भी दाशरथी राम के वर्णन मे तो रामायण के सातो काण्डो तथा कृष्ण चरित के लिए महाभारत और हरिवश का वर्णन किया गया है। अग्निपुराण के युग की विपत्ति का आभास हमे अध्याय 2 मे प्राप्त हो जाता है।यह अध्याय मत्स्यावतार का वर्णन करता है–

मत्स्यावतार वक्ष्येऽह वशिष्ठ श्रृणु वै हरे।

अवतारक्रिया दुष्टनष्टयै सत्पालनाय हि।। [3]

इन्ही दुष्टो (दैत्यरूपी ग्राहो) से प्रजा को भय था।[4] मनु (राजा) का कर्तव्य प्रजा का पालन करना था– मनु वै पालने रतम्।

और मत्स्य भगवान का अवतार दुष्टो का सहार करने के लिए ही हुआ।[5]

हयग्रीव दैत्य का वधकर केशव ने वेदमत्रो की रक्षा की।[6] धर्म और देवताओ आदि (अर्थात् वेद विप्र और गौ) की रक्षाँ के लिए हरि ने वराह[7] और नरसिह[8] आदि के अवतार धारण किया।

यह आदि वाराह महाराज भोज प्रथम का ही युग था। वाराह पुराण मे भगवान कृष्ण– विष्णु से प्रार्थना की गयी है–

1–अग्निपुराण– 276/1–2 कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्वरा।
देवक्या वसुदेवात् तु कष्णोऽभूत् तपसान्वित।
धर्म सरक्षणार्थायह्यधर्महरणाय च।
सुरादे पालनार्थ च दैत्यादेर्मथनाय च।।

2–अग्निपुराण – 276/9–24

3–अग्निपुराण – 2/2

4–अग्निपुराण – 2/8 (1)

5–अग्निपुराण – 2/11

6–अग्निपुराण – 2/16–17

7–अग्निपुराण – 4/1–3

8–अग्निपुराण – 4/4

कृष्णो विष्णु नुदतु मम रिपून् आदिदेवो वराह । [1]

महाराज भोज के सिक्को पर आदि वराह का चित्रण है।

इस प्रकार विष्णु का अवतार दुष्टो को नष्ट करने के लिए ही हुआ था।[2] देवासुर युद्ध (क्षत्रिय–असुर सघर्ष) इस समय चल रहा था और देवता श्रीविहीन हो गये थे–निश्रीकाश्चाभवस्तदा सुरा । अत भगवान विष्णु को विविध अवतार रूप धारण करने पडे। अग्निपुराण मे रामावतार का वर्णन करते हुए सक्षिप्त रामायण ही (सातो काण्डो सहित) वर्णित है। राम धनुर्धर थे और इस युग के युद्धो मे धनुर्धरो विशेषकर अश्वारोही धनुर्धरो की आवश्यकता थी जो यवन–म्लेच्छो का सामना कर सकते थे। राक्षसो के वध के लिए ही अग्नि पुराण मे रामोक्त नीति (वह नीति जिससे लक्ष्मण ने मेघनाद का वध किया था) का विशेषत वर्णन है। इसी प्रकार हयायुर्वेद का वर्णन करते हुए अच्छे प्रकार के घोडो और उनकी देखरेख पर विशेष ध्यान दिया गया है।

2–अग्निपुराण की श्लोक सख्याएव सस्करण

अग्निपुराण के श्लोक परिमाण के विषय मे अग्निपुराण मे ही मतभेद है। इसके एक स्थल मे कहा गया है कि इस का श्लोक परिमाण 12000 है। द्वादशैव सहस्त्राणि सर्वविद्यावबोधनम्।।[3] अन्यत्र 15000 कहा गया है–इद पञ्चदशसाहस्त्र शतकोटिप्रविस्तर [4]

अग्निपुराण के आनन्दाश्रम सस्करण मे श्लोक सख्या 11457 कहा गया है। इस विषय पर अन्य पुराणो मे भी कुछ निर्देश मिलते है। मत्स्य[5] पुराण मे इसकी श्लोक सख्या सोलह हजार (16000) तथा नारद पुराण[6] मे पन्द्रह हजार (15000) और श्रीमद्भागवत[7] पुराण मे अग्नि इसका श्लोक परिमाण पन्द्रह हजार चार सौ (15400) बतलाया गया है। देवीभागवत के अनुसार सोलह हजार है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित अग्निपुराण की श्लोक सख्या 11457 है।[8]

एक निश्चित ग्रन्थ के श्लोक परिमाण के विषय मे ऐसे मतभेद नही हो सकते अत यह स्वीकार किया जाता है कि इन पुराणो के रचनाकारो ने अपने समय मे जिस अग्निपुराण को देखा था उसके ही

1–वराह पुराण – 1/1

2–अग्निपुराण – 2/11 मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनु वै पालने रतम्।
अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये।।

3–अग्निपुराण 272/11

4–अग्निपुराण 383/64

5–मत्स्यपुराण 53/28–29

6–नारदपुराण 1/4/25/

7–श्रीमद्भागवतपुराण 12/13/5

8–हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग–अग्निपुराण भूमि पृ स 3

परिमाण का उन्होने उल्लेख किया। यहा यह बात उल्लेखनीय है कि श्लोक परिमाण का तात्पर्य है–32 अक्षरो को एक श्लोक मानकर गणना करना। वर्तमान उपलब्ध अग्नि पुराण के प्रत्येक अध्याय मे जो श्लोक गणना मिलती है वह श्लोक परिमाण गणना नही है। अग्निपुराण मे कितने ही श्लोक है जिनमे 32 से अधिक अक्षर हैं। कितने ही बडे–बडे मत्र है जिनमे 50 से भी अधिक अक्षर हैं। ऐसे स्थलो मे 32 अक्षरो को एक श्लोक मानकर ही गणना की जाती है।

अग्निपुराण के नाम से आजकल जो प्रचलित पुराण है उसके तीन सस्करण प्राप्त होते है। प्रथम तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित है दूसरा सस्करण आनन्दाश्रम एव वेकटेश्वर प्रेस से देवनागरी लिपि मे तथा तीसरा कलकत्ता के बगवासी प्रेस से बगला लिपि मे प्रकाशित हुआ है।[1]

3–अग्निपुराण का युग

अग्निपुराण का वर्तमान स्वरूप गुर्जर प्रतिहार तथा कुलचुरि शासन काल का युग था। इस समय उपलब्ध प्राय समस्त पुराणो मे यह वर्णन है कि पश्चिमी सीमा पर बसे हुए यवनो (अरब के मुस्लिम विजेता) तथा पश्चिमोत्तर क्षेत्र मे तुरुष्को का आधिपत्य हो चुका था। वे सभी शक्तिया दक्षिणापथ और मरुभूमि तथा आर्यावर्त की ओर भी बढने का प्रयत्न कर रही थी। उनके आक्रमणो का लक्ष्य देव (देवालय) वेद (वेद शाखाये अरण्याश्रम) गौ विप्र और साधु थे। अत अग्नि पुराण कालीन समाज और राष्ट्र को मृत्युभय था।[2] शुद्ध क्षत्रिय (वीर–शूर) राष्ट्र समाज और सस्कृति की रक्षा करने मे तत्पर थे और म्लेच्छ मुसलमान यवन–तुरुष्क आदि बर्वर जातिया धन धान्य लूटने एव मदिरो आश्रमो और ब्राह्मणो को नष्ट करने मे लगी थी। साथ ही नारी अपहरण भी बहुत बडा सकट था। ऐसे कठिन समय पर धार्मिक कलह (बौद्ध पाखण्डी तथा नग्न जैन सम्प्रदायो तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बी लोगो के प्रति द्वेष तथा द्रोह) और क्षत्रिय राजाओ का परस्पर युद्ध राष्ट्र के विघटन मे सहायक तथा विदेशियो के लिए उत्साहवर्धक था।

ऐसे कठिन समय मे इस पावन पृथ्वी का आश्रय विष्णु तथा शुद्ध मानववशी (मनुवश का) क्षत्रिय राजा ही था। विष्णु वायु मत्स्य आदि पुराणो का विविध प्रकार से अध्ययन किया गया है। अग्निपुराण का शोध अध्ययन कई विद्वानो ने प्रयत्न लाघव से ही किया है। डॉ० ज्ञानी ने अग्निपुराण के इन्साइक्लोपीडिक (विश्वकोशी) स्वरूप को पुराण विकास की उच्चतम काल परिधि पर प्रतिष्ठित अवश्य देखा परन्तु वे यह नहीं आक सके कि अग्नि पुराण मे विषय समुच्चय किस परिस्थिति मे और किन कारणो से किया गया।

1–अग्निपुराण (हि सा स) भूमिका पृष्ठ 3
2–अ० पु० स्ट० पृ० 28

डॉ० बी बी मिश्र ने अग्नि पुराण की पालिटी नामक शोध ग्रन्थ मे अग्नि पुराण के उन अध्यायो पर यथोचित ध्यान नही दिया जिनमे राजधर्म का विवेचन किया गया है। डॉ० विल्सन हाजरा और भटटाचार्य आदि विद्वानो ने प्राचीन और प्रचलित अग्नि (वह्निन या आग्नेय) पुराण का विभेदन किया है। अग्निपुराण जिस अग्नि परीक्षा (कलिदावानल) से गुजर रहा था उस भयावह अग्नि के स्वरूप का परीक्षण आवश्यक था। इस स्वरूप को पौराणिक ऋषि ने प्रारम्भ मे ही स्पष्ट चित्रित किया है।

4—अग्निपुराण का रचनाकाल

डॉ० भटटाचार्य ने अग्निपुराण विषयानुक्रमणी तथा अग्निपुराण हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की भूमिका मे अग्निपुराण के रचनाकाल पर विचार किया है। इसका विवेचन करते हुए डॉ० भटटाचार्य कहते हैं कि प्रत्येक पुराण का रचना काल सामान्यत इतना विवादास्पद है कि भूमिका मे इसका विचार नही किया जा सकता। अग्निपुराण का रचनाकाल ईसवीय सप्तम शताब्दी के बाद का है। कुछ विद्वानो के अनुसार यह पुराण ईसवीय नवम शताब्दी मे या उससे कुछ बाद मे रचित हुआ था।[1]

एक अन्य दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट होता है कि यवनो (म्लेच्छो) की राज्य स्थिति से अग्निपुराण का वर्तमान स्वरूप 712 ई0 अर्थात अरब आक्रमणकारियो द्वारा सिन्ध विजय के बाद ही निश्चित होता है। इसके साथ ही उत्तर और पश्चिम मे भी तुरूष्क छा गये थे जिससे अग्निपुराण का युग आठवी नवी शताब्दी स्थिर होता है।[2] इन्ही यवनो को विष्णु पुराण मे पारसीका[3] (फारस के मुस्लिम विजेता) कहा गया है। कन्नौज सम्राट यशोवर्मन ने अपनी पश्चिमी दिग्विजय मे इन पारसी को (सिन्ध के यवनो) को पराजित किया।[4] इससे भी सिद्ध होता है कि अग्निपुराण का युग ईसा की आठवीं शताब्दी का मध्य था।

इन्ही सिन्ध के यवनो को बगाल और आर्यावर्त के पाल वशीय सम्राट धर्मपाल ने भी पराजित किया था तथा यवन सामन्तो ने कन्नौज के दरबार मे हाजिरी दी।

अग्निपुराण और उत्तरापथ

अग्निपुराण के युग मे उत्तरापथ (उत्तरपश्चिमी भारत) मे उत्पात हो रहे थे। ऐसे सात देशो का उल्लेख अग्निपुराणो मे किया गया है।

1—अग्निपुराण — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग — भूमिका पृष्ठ—5
2—वायुपुराण — 1/45 आन्ध्रा दक्षिणतोरूद्रतुरूष्कास्त्वपिचोत्तरे।।
3—डा0 श्याम मनोहर मित्र— यशोवर्मन— पृ—84
4—वाक्पति गौहवहो — 423 431 439

सैन्धवायामुनाश्चैवगुर्जरा भोज वाल्हिका ।

जालधर च काश्मीर सप्तम चोत्तरापथम्।।

देशाश्चैते विनश्यन्ति तस्मिन्नुत्पात दर्शने।[1]

ऊपर देशो का वर्णन है जो सख्या मे सात कहे गये हैं इससे हमे ईसा की नवी शताब्दी का ज्ञान होता है। जब उत्तरा पथ के तुरूष्क जालन्धर तथा काश्मीर देशो पर आक्रमण कर रहे थे।
यही गुर्जरो का उत्कर्ष युग नागभटट द्वितीय तथा मिहिर भोज प्रथम का युग था जब वे आर्यावर्त की रक्षा तथा इन आततायी म्लेच्छो का सामना भी कर रहे थे। इसी अध्याय मे अन्य देशो का भी उल्लेख मिलता है–

नष्टभूता प्रजा सर्वाहाहाभूता विचेतस ।

डाहल कामरूप च कलिङ्ग कोशलस्तथा।

अयोध्या च अवन्ती च नश्यन्ते कोकणान्ध्रका ।।[2]

इन देशो की स्थिति से भी हम उस युग मे पहुचते है जब प्रतिहार वश का पतन हो चुका था और आर्यावर्त के अयोध्या तथा काशी और कन्नौज पर मुस्लिम आक्रमण हो रहे थे।

डाहल (हैहय देश)

यहा कलचुरि राजवश का इस समय शासन था। लक्ष्मी कर्ण आदि ने काशी की रक्षा भी की थी।

कामरूप (आसाम)

सम्भवत यहा भी मुस्लिम आक्रमण हो रहे थे। इख्तियारूद्दीन बख्तियार खिल्जी ने नालन्दा विक्रमशिला ओदन्तपुरी आदि बौद्ध विश्वविद्यालयो को नष्ट–भ्रष्ट कर हिमालय की पहाडियो (पश्चिमी बगाल और आसाम की सीमा) पर स्थित पहाडपुर के विशाल शिव मदिर को भी नष्ट किया था।

अवन्ती (पश्चिमी मालवा)

यहा के परमार शाशक थे जिनमे मुन्ज और भोज महान शासक थे। परन्तु परमारो चन्देलो चाहमानो और कल्चुरियो (हैहयो) मे परस्पर सघर्ष भी चल रहे थे। अग्निपुराण स्पष्ट कहता है–

परस्पर नरेन्द्राणा सग्रामो दारूणो भवेत्।[3]

इस प्रकार हम ईसा की 10वीं और 11वी शताब्दी मे पहुचते हैं। इसी युग मे परमारो चन्देलो और

1–अग्निपुराण – 130/7–8 (1)
2–अग्निपुराण – 130/10–11 (1)
3–अग्निपुराण – 130/11

कल्चुरियो ने प्रासादो का भी खूब निर्माण कराया था जिसका विवरण हमे अग्निपुराण के प्रासाद लक्षणो के वर्णन से सबधित अध्यायो से प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर अग्निपुराण का युग आठवी शताब्दी से ग्यारहवी शताब्दी के मध्य निर्धारित किया जा सकता है।

5—अग्निपुराणोक्त विषय

अग्निपुराण मे विविध विद्याओ शास्त्रो तथा विषयो का सग्रह किया गया है। प्रारम्भ मे अठारह विद्याओ— चार वेद छ वेदाग मीमासा धर्मशास्त्र पुराण (पुराणविद्या) न्याय आयुर्वेद गधर्ववेद अर्थशास्त्र धनुर्वेद और ब्रह्म विद्या का वर्णन किया गया है।[1]

महत्वपूर्ण कथन है—

सारात्सारो हि भगवान विष्णु सर्गादिकृद्विभु ।[2]

वही विष्णु कालाग्नि रूप विष्णु है जो भुक्ति मुक्ति का आधार है।[3] वही परात्पर ब्रह्मज्ञान (योग) और कर्म (योग) द्वारा पूजित होकर कल्याण का एक मात्र आश्रय है वही कालाग्नि रूद्र भी है।[4] वही सर्ग प्रतिसर्ग वश मन्वन्तर और वशानुचरित (पञ्चलक्षणो) का परम कारण मत्स्य कूर्मादि विविध अवतारो का भी कारण है—

मत्स्यादिरूपिणम[5]

हेतु रूपिन वही वासुदेव है।

अध्याय 2 से अध्याय 16 तक दशावतारो (मत्स्य कूर्म वराह नृसिह वामन परशुराम दाशरथिराम कृष्ण बुद्ध और कल्कि) का वर्णन है। इन अध्यायो मे अवतार प्रयोजन और अवतार लीला मे ही पौराणिक ऋषि ने अपने युग का भेरी घोष और धर्म घोष किया है। अवतारो का उद्देश्य दुष्ट म्लेच्छो[6] दैत्यो और दानवो का अन्त तथा वेद और वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का रक्षण मात्र ही था।

अग्निपुराण अपने राजधर्म विवरण के लिए विशेष प्रसिद्ध है। इन्ही प्रारभिक अध्यायो मे अवतार वर्णन के प्रारभ के ही राजधर्म का वर्णन कुछ शब्दो मे किया गया है। यह है—मनु (रूप) राजा का पालन धर्म ही

1—अग्निपुराण 1/15—17
2—अग्निपुराण 1/4
3—अग्निपुराण 1/10—11
4—अग्निपुराण 1/13
5—अग्निपुराण 1/19
6—अग्निपुराण 2/2 11 4/2—4 5/4

राजधर्म है–

पालकोहिभवेत राजा मनु वैपालनेरतम ।[1]

वेदमन्त्रादि पालन[2] धर्मदेवादिरक्षा[3] देवविप्रादि पालन[4] और राज्यप्रपालन ही प्रमुख राजधर्म था। पालनकर्म के महत्व का प्रतिपादन पालवश (धर्मपाल–देवपाल आदि) एव रक्षण और दुष्टनाश कर्ता प्रतिहार वश का युग था जब म्लेच्छो को आर्यावर्त और दक्षिणापथ के द्वार से ही बाहर अस्त्र शस्त्रो से ढकेल दिया गया था। यह नागभटट द्वितीय से लेकर महाराज भोज प्रथम तथा उनके पुत्र महाराज महेन्द्र पाल का युग था। यही युग कान्यकुब्ज देश के शासक सम्राट मिहिर भोज (भोज प्रथम) द्वारा पुण्य युग बन गया था। धर्म साहित्य और सस्कृति के पुनरूद्धार का कार्य महोदय (कान्यकुब्ज) काशी प्रयाग और ब्रह्मावर्त (कुरूक्षेत्र) मे हो रहा था।

धर्मपाल और देवपाल द्वारा सास्कृतिक विकास पाटलीपुत्र नालन्दा विक्रमशिला तथा वराह क्षेत्र (कोकामुख वराह क्षेत्र) आदि मे हो रहा था। कलचुरि सम्राटो के सरक्षण मे डाहलमण्डल विन्ध्याटवी के तपोवनो मे भी यही कार्य हो रहा था। परन्तु काल विचित्र है। ऊपर उल्लिखित वशो के प्रतापी राजाओ के हटते ही उत्तरी भारत पर गाजनक महमूद सुल्तान ने मदिरो को लूटना और नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था।

अग्निपुराण मे मदिरो के आकार–प्रकार और प्रसाद लक्षणो तथा मूर्तियो के लक्षणो (विशेषत 24 विष्णु मूर्तियो) का वर्णन देकर उन्हे नवजीवन प्रदान किया और उनके स्वरूप को सुरक्षित रखा।

इसी प्रकार अध्याय 305 मे विष्णु क्षेत्रो का वर्णन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साहित्यसरक्षण की प्रक्रिया को हम उन अध्यायो मे देख सकते है जहा काव्य का स्वरूपलक्षण तथा भेदो एव छन्द अलकार व्याकरण और अभिधान आयुर्वेद और धनुर्वेद का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अग्निपुराण भारतीय सस्कृति का विश्वकोश ही है।

6–अग्निपुराण का कलेवर–

विभिन्न युगो मे विशेषकर सिन्ध मे मुस्लिम सत्ता स्थापित हो जाने के बाद (712 ई0 के बाद) अग्निपुराण मे नयी नयी सामग्री जोडी जाती रही विशेषकर अवतार वर्णन (अ0 2 से अ0 16 तक) (अर्थात

1–अग्निपुराण– 2/11
2–अग्निपुराण– 2/17
3–अग्निपुराण– 4/3
4–अग्निपुराण–4/13

15 अध्यायो मे) किसी भी अन्य महापुराण मे विष्णु के दशावतार का वर्णन नहीं प्राप्त होता। इनमे भी रामायण के सातो काण्डो का वर्णन (प्रत्येक काण्ड एक–एक अध्याय मे अ0 5 से 11 वर्णन) महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार राजनीति (दो रूपो मे पुष्करनीति तथा गोप्त नीति) को भी विस्तार से ई0 की आठवी नवी शताब्दी मे जोडा गया। काव्य–लक्षण अलकार छन्द व्याकरण अभिधान (कोश) तथा आयुर्वेदक वर्णन से भी कलेवर मे वृद्धि हुई है।

तान्त्रिक उपासना से सबधित विभिन्न देवी देवताओ और सिद्धियो की प्राप्ति के लिए मत्र मण्डल और मुद्राओ का भी वर्णन है। मदिरो के ध्वश होने पर उनकी शैलियो का विवरण दिया गया है। इसी प्रकार तीर्थों आश्रमो एव गुरूकुलो के नष्ट–भ्रष्ट होने से अग्निपुराण मे पचपन विष्णु क्षेत्रो का वर्णन है। जब समस्त विद्याओ और धर्मों पर आघात हो रहे थे तो उनका सक्षिप्त रूप ही (यथा हरिवश और महाभारत आदि का सक्षिप्त विवरण) हिन्दू सस्कृति का सरक्षण ही था। अत इसमे अनेक अश जुडते हैं। इसमे कुल 383 अध्याय है जिनमे कुल श्लोक की सख्या 11457 है।

<u>7–अग्निपुराण के अध्याय एव विषय सक्षेपिका</u>

अध्याय–1– इसके प्रथम श्लोक मे ही अनेक देवी देवताओ श्री सरस्वती गौरी गणेश स्कन्द ईश्वर (शिव) ब्रह्म (अग्निदेव) और इन्द्र आदि देवो की वदना के पश्चात कहा गया है–

वासुदेव नमाम्यहम अर्थात् वासुदेव को नमस्कार है विष्णु भगवान ही सार हैं। अत यह स्पष्ट है कि अग्निपुराण वैष्णव पुराण है।

अध्याय 2 से 16 – मे दशावतारो (मत्स्य कूर्म वराह नरसिह वामन परशुराम दाशरथिराम (रामायण का सात अध्यायो मे सातो काण्डो का वर्णन) हरिकृष्ण (हरिवश) बुद्ध और कल्कि) का वर्णन किया गया है। इसी सबध मे हरिवश और महाभारत का भी सक्षिप्त वर्णन किया गया है।

अध्याय 17 से 20 तक– सृष्टि का वर्णन है।

अध्याय 21 से 106 मे– विविध धर्मों धार्मिक क्रियाओ एव मत्रो आदि का वर्णन है। देवार्चन और प्रतिमाओ तथा शालिग्राम शिला आदि का वर्णन है। इस समय धार्मिक जीवन पर तात्रिक प्रभाव पड चुका था। यहाँ कुछ तत्र मत्रो का भी उल्लेख है।

अध्याय 107 मे भुवन कोश और फिर मनु (प्रियव्रत आदि) के बाद पृथ्वी के सप्तद्वीपो का वर्णन करते हुए शालग्राम तपोवन का माहात्म्य दिया गया है जहा वह प्रियव्रत आदि पुत्रो को राज्य सौंपकर तप करने गये थे।

अध्याय 108 मे– जम्बूद्वीप और इसके वर्षों (भू–विभागो) का वर्णन किया गया है।

अध्याय 109 मे तीर्थों का वर्णन है।

अध्याय 110 मे गगा माहात्म्य अ0 111 मे प्रयाग माहात्म्य

अध्याय 112 मे वाराणसी माहात्म्य अ0 113 मे नर्मदा माहात्म्य एव

अध्याय 114 से 116 तक गया माहात्म्य का वर्णन है।

अध्याय 117 मे श्राद्ध का वर्णन है।

अध्याय 118 मे ही भारतवर्ष इसकी स्थिति तथा इसके नौ भेद (द्वीपो) और नवे द्वीप (भारतवर्ष) के पूर्व मे किरात एव पश्चिम मे यवनो को स्थित बताया गया है–

पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवना स्थिता ।

पक्ति 1 मे भारत के नवभेदो का साकेतिक उल्लेख है अथवा नवद्वीपो (नौभेदो–इन्द्रद्वीप आदि) का उल्लेख है।[1]

पक्ति 2 मे भारत के मध्य भाग मे ब्राह्मणादि लोगो को तथा पूर्वी सीमा पर किरातो को[2] (पूर्वत किराता) और पक्ति 3 मे यवनो की[3] स्थिति पश्चिम मे स्थित बताया गया है।

अध्याय 119– भी भुवन कोश के अन्तर्गत द्वीपो (महाद्वीपो) का वर्णन है

अध्याय 120 मे पाताल लोक नक्षत्रो एव विभिन्न लोको तथा ब्रह्मलोक आदि का वर्णन किया गया है। इसका सबध ज्योति शास्त्र से भी है।

अध्याय 121 मे ज्योति शास्त्र का वर्णन है। सस्कारो का भी सबध ज्योतिष से है। यहा मारण मोहन और वशीकरण आदि के मत्रो का भी उल्लेख है। रत्नो को धारण करने के लिए लाभप्रद नक्षत्रो का भी यहाँ उल्लेख है।

अध्याय 122 मे भारतीय पद्धति पर आधारित काल गणना का वर्णन किया गया है।

अध्याय 123 से 145 तक– युद्ध जयार्णव–मत्रो आदि का वर्णन है। अध्याय 130 एतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमे उत्तरापथ के देशो मे उत्पातो का उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[4] इन अध्यायो मे युद्ध जयार्णव का वर्णन तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। आगे के अध्यायो मे त्रैलोक्यविजयविद्या

1– पक्ति 1– नवभेदा भारतस्य मध्य भेदेऽथ पूर्वत । 118/5 (2)

2– पक्ति 2– किराता यवनश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यत । 118/6 (1)

3– पक्ति 3– पश्चिमे कुरू पान्चाल मध्यदेशादय स्थिता । 118/8 (2)

4– अग्निपुराण130/7–8

(134) सग्रामविजयविद्या (135) नक्षत्र चक्र (136) महामारी विद्या शत्रु को नष्ट करने वाली विद्या (137) तथा ऐसे ही योग प्रयोगो और क्रियाओ का वर्णन (138) मे किया गया है। साठ सवत्सरो के फल का निरूपण (139) वश्यादियोग (140) छत्तीस पदो का ज्ञान (141) मत्रोषधि (142) और कृविजका पूजा (143–144) का वर्णन है। इसी प्रकार यहाँ नाना विषय मत्रो–तन्त्रमत्रो आदि का वर्णन (145) किया गया है।

अध्याय 146– मे अष्टाण्टक देवियो का वर्णन है

अध्याय 147 मे त्वरिता पूजा–समस्त उपद्रवो को नष्ट करने वाली है।

अध्याय 148 मे सग्राम विजय विद्या का वर्णन है।

अध्याय 149 मे लक्षकोटि होम के विधान का वर्णन है।

अध्याय 150 मे मन्वन्तर वर्णन–मानव वश वर्णन है।

अध्याय 151 से 154 तक मे वर्णाश्रम धर्म तथा सामान्य धर्माधर्म का वर्णन किया गया है। वर्णधर्मों तथा आश्रमधर्मों का भी वर्णन किया गया है।

अध्याय 155 मे विवाह तथा उसकी क्रियाओ का वर्णन है।

अध्याय 156 मे आचारधर्म का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत नित्य नैमित्तिक और काम्य क्रियाओ का वर्णन है। स्नान (तीर्थ) सध्या गायत्री तर्पण तथा पुरूष सूक्त मे स्तुति आदि कर्म योग–क्षेम के लिए ही आदिष्ट थे। इन क्रियाओ से अन्त करण (आत्म) की शुद्धि होती है।

अध्याय 157 से 159 मे द्रव्यशुद्धि एव शौचकर्म तथा प्रेतशुद्धि की क्रियाओ का वर्णन है।

अध्याय 160–161 मे वानप्रस्थाश्रम (160) यतिधर्म (161) सामान्य धर्म शरीर त्याग हेतु और ब्रहमध्यान का वर्णन है।

अध्याय 162 मे धर्मशास्त्र तथा धर्मशास्त्रीय धर्मो का वर्णन है।

अध्याय 163 मे श्राद्ध वर्णन है।

अध्याय 164 मे नवग्रह होम का वर्णन है।

अध्याय 165 मे विविध धर्मों का वर्णन है ध्यान योग ज्ञान

'स्वसवेद्य हि तद्ब्रह्म'–अयोगी ब्रहम नैव जानाति

अयोगी ब्रह्म को नही जान सकता। अयोगी नैव जानाति–[1] उपवास ब्रत स्नान तीर्थ, तपस्या तथा उपनयन सस्कार अपना प्रभाव डालते ही हैं। पाप वृत्ति का नाश होता है और मन को बुद्धि अपने साथ

1–अग्निपुराण 165/15

जोडकर आत्मानुचिन्तन को प्रेरित करती है। शनै शनै योगाभ्यास से अदृश्य भी दृश्य बन जाता है और हृदय की गुफा मे स्थित आनन्द की शरण मे चला जाता है। अत योगमेव निषेवेत।[1]

अध्याय 166 मे वर्णधर्म आश्रम धर्म नैमित्तिक धर्म (प्रायश्चित आदि) का वर्णन है।

अध्याय 167 मे होम प्रायश्चित शाति ग्रहयज्ञ दान आदि का वर्णन है।

अध्याय 168 मे जो प्रायश्चित न करे उसे राजा दण्ड दे (168/2) यही विभिन्न हीन जातियो शिल्पियो आदि का भी वर्णन है। यही खाद्यपेय (भक्ष्याभक्ष्य) पर भी विचार किया गया है। अध्याय 169–174 मे प्रायश्चित का ही वर्णन करते हुए व्रत होम यज्ञ आदि क्रियाओ का वर्णन है।

विष्णु के 108 नाम का जप करने का भी उल्लेख है– पूजालोपे चाष्टशत जपेत्–174/1 (2)

अध्याय 175–207– मे विविध व्रतो का वर्णन है।

अध्याय 208 मे (व्रतदानसमुच्चयम्) व्रत और दान का वर्णन है।

अध्याय 209–213 मे दानधर्म का वर्णन है।

अध्याय 214 मे नाडी चक्र वर्णन (विविध–दस वायु–प्राणायाम आदि)

अध्याय 216–217 मे सध्या के बाद गायत्रीजपमहत्व।

अध्याय 218–242 मे राज्याभिषेक राजधर्म (राजनीति वर्णन)

अध्याय243–245 मे स्त्री–पुरूष लक्षण (सामुद्रिक शास्त्र)

अध्याय 246–248 मे रत्न परीक्षा वास्तु विद्या (गृह निर्माण आदि)

अध्याय 248–252 मे धनुर्वेद वर्णन

अध्याय 253–258 मे धर्मशास्त्रीय व्यवहार प्रकरण यह स्मृतियो (विशेषकर याज्ञवल्क्य और नारद स्मृति) पर आधारित है। यहा वाक्यारूष्य मिथ्याभाषी को दण्ड का विधान किया गया है।

अध्याय 260–262 मे वेद विधान एव अनुष्ठान

अध्याय 263 मे उत्पातशान्ति

अध्याय 264–270 मे देवपूजाविधान

अध्याय 271 मे वेद तथा वेदशाखा वर्णन पुराण महिमा

272– मे पुराण नकल करना और उनका दान

अध्याय 273–278– मे राजवशो का वर्णन

1–अग्निपुराण 165/28(2)

अध्याय 279–286– मे औषधि एव रोग निदान मृत्युञ्जय जप

अध्याय 287– गजायुर्वेद

अध्याय 288–292– अश्व चिकित्सा

अध्याय 293–327– नानाविध मत्रो का प्रयोग तथा मत्रसिद्धियो का वर्णन। यहा भी हमे तान्त्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है। विष सबधी बाते तथा देवालय माहात्म्य

अध्याय 328–336– छन्दशास्त्र सबधी वर्णन

अध्याय 337–347– काव्य नाटकादि लक्षण रस नीति एव नृत्यादि अभिनय तथा अलकार वर्णन।

अध्याय 348– एकाक्षर कोश

अध्याय 349–359– व्याकरण

अध्याय 360–367– कोष अध्याय (स्वर्ग पातालादि वर्ग)

अध्याय 368–371– चार प्रकार के प्रलय का वर्णन

अध्याय 372–380– योग (यहा यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि) और ब्रह्मज्ञान का वर्णन है।

अध्याय 381– भगवद्गीता सार

अध्याय 382– यम गीता

अध्याय 383– अग्नि पुराण के पठन–पाठन एव श्रवण का माहात्म्य तथा इसमे वर्णित विषयो का भी उल्लेख।

ऊपर दिये हुए विषयविवरण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि अग्नि पुराण को विद्यासार का नाम देना पूर्णत समुचित है। यह भारतीय सस्कृति और राजनीति का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

यह वैष्णव पुराण है यहा विष्णु या वासुदेव मे विश्वास का ही वर्णन है। जो कुछ भी है सत्‌या असत्–वह सब विष्णुमय ही है। अध्याय 305 मे 55 वैष्णव क्षेत्रो का वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये विष्णु क्षेत्र तथा शिव क्षेत्र (लिङ्ग क्षेत्र) यथा श्रीपर्वत और महाकाल आदि वनो मे स्थित थे जहा हमारी सस्कृति दुष्टम्लेच्छपार्थिवो के विनाशकारी प्रयत्नो से सुरक्षित रह सकी। इसीलिए इन पुण्यारण्यो को रक्षारण्य कहा गया है।

भारतीय ऋषियो का आर्य (मानव) धर्म था–

सर्वदेहोपकारायकुरूते कर्म मानव।

भारत कर्म क्षेत्र था और आज भी है। जहा सुकर्म से स्वर्ग विकर्म से हीनयोनि और अकर्म–दुष्कर्म से नरक तथा नैष्कर्म्य से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

8–अग्निपुराण मे पुराण पञ्चलक्षण

पुराणो के प्रधान वर्ण्य विषय के सबध मे समस्त पुराणो मे प्राय स्वल्पशब्दान्तर से एक ही विचार प्राप्त होता है। सर्ग प्रतिसर्ग वश मन्वन्तर और वशानुचरित इन पाच विषयो का निरूपण ही प्रधान है[1] किन्तु विचार दृष्टि से प्रतीत होता है कि सृष्टिविद्या ही पुराण का मुख्य विषय है शेष चार उसके उपोद्घात है। सृष्टि का निरूपण उन चारो के बिना सागोपाग नही बनता। इसीलिए उन चारो को साथ लेना पडता है। इन पाचो विषयो के अन्तर्गत जगत तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति अथवा सृष्टि को सर्ग कहा जाता है। सृष्टि के विपरीत अर्थात प्रलय तथा पुन सृष्टि करण को प्रतिसर्ग कहा जाता है। देव ऋषि तथा मनुष्यो की सन्तान परम्परा का उल्लेख करना वश कहलाता है तथा सृष्टि क्रम की काल गणना मन्वन्तर मे मानी जाती है और महर्षियो तथा राजाओ के चरित्रो के वर्णन को वशानुचरित कहते हैं।[2] सभी पुराणो मे पाच विषयो का वर्णन प्राप्त होता है किन्तु श्रीमद्भागवत तथा ब्रहमवैवर्त पुराण मे दस विषयो का परिगणन करते हुए पाच लक्षणो से युक्त पुराणो को उपपुराण तथा दस लवणो वाले पुराणो को महापुराण कहा गया है।[3] ये दस विषय– सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा निरोध मुक्ति और आश्रय है। इनमे जो दसवा आश्रय तत्व है उसी का ठीक–ठीक निश्चय करने के लिए कही श्रुति् कहीं तात्पर्य और कहीं दोनो के अनुकूल अनुभव से महात्माओ ने अन्य नौ विषयो का वर्णन किया है। इन्ही दस लक्षणो को कुछ शब्दान्तर से श्रीमद्भागवत[4] मे एक अन्य स्थान पर इस प्रकार बताया है सर्ग विसर्ग वृत्ति रक्षा मन्वन्तर वश वशानुचरित सस्था हेतु तथा अपाश्रय ये दस पुराणो के लक्षण हैं।

अग्निपुराण मे पुराण पञ्चलक्षणो का ही प्रतिपादन किया गया है जिसमे कहा गया है–

इतिहास पुरावृत्त पुराणपञ्चलक्षणम[5]

अर्थात् प्राचीन वृतान्त को इतिहास तथा पाच लक्षणो से युक्त विवरण को पुराण कहते हैं। सर्ग का वर्णन अग्निपुराण के 170वे अध्याय मे प्रतिसर्ग वश 18 19 अध्यायो मे मन्वन्तर 150वे अध्याय मे तथा

1–अग्निपुराण 1/14
2–विष्णुपुराण 3/6/25
3–श्रीमद् भागवत–2/10/1–2
4–श्रीमद् भागवत–12/7/9
5–अग्निपुराण 360/58

वशानुचरित 273–278 अध्याय मे सकलित किया गया है।

क–सर्ग

अग्निपुराण के 16वे अध्याय मे जगतसर्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है–

जगत्सर्गादिका क्रीडा विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु।
स्वर्गादिकृत्स सर्गादि सृष्टयादि सगुणोऽगुण ।।

सर्वप्रथम सत्स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही थे। उस समय न आकाश था न रात्रि न दिन ही थे। तत्पश्चात् पुरूष विष्णु ने प्रकृति के अन्दर प्रवेश करके उसमे क्षोभ उत्पन्न किया। जिससे सर्वप्रथम महत्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व से अहकार हुआ अहकार के तीन भेद हैं। वैकारिक अर्थात सात्विक तैजस–राजस तथा भूतादि रूप तामस। इसी तामस अहकार से पचतमात्राओ की उत्पत्ति हुई जो इस प्रकार है शब्द स्पर्श रूप रस और गध जिनसे क्रमश आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी इन पच महाभूतो की उत्पत्ति हुई। राजस अहकार से इन्द्रिया उत्पन्न हुई। दस इन्द्रियो के अधिष्ठाता दस देवता तथा ग्यारहवा मन–ये वैकारिक अर्थात सात्विक अहकार से उत्पन्न हुए। भगवान स्वयभू ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की और उसमे अपने वीर्य को निहित कर दिया। उस जल से ही हिरण्यवर्ण (सुनहला) अण्डा उत्पन्न हुआ उससे साक्षात ब्रह्म की उत्पत्ति हुई जो स्वयभू के नाम से विख्यात है। भगवान हिरण्यगर्भ एक वर्ष तक उसी अण्डे मे उपस्थित रहे। तत्पश्चात् उसे दो भागो मे विभक्त कर स्वर्ग और भूलोग की सृष्टि की। फिर उन दोनो के मध्य मे आकाश की सृष्टि की। उन्होने जल मे तैरती हुई पृथ्वी को और दश दिशाओ को यथोचित स्थान पर रख दिया। तदनन्तर काल मन वाणी काम क्रोध रति आदि को भी उत्पन्न किया। तत्पश्चात् सृष्टि करने की इच्छा करने वाले प्रजापति ने सृष्टि रचना प्रारभ की। सबसे पहले विद्युत वज्र भेघ रोहित इन्द्रधनुष पक्षियो और पर्जन्य की सृष्टि की। तत्पश्चात् प्रजापति ने यज्ञानुष्ठान के लिए मुख से ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण किया। अपनी भुजा से ऊचे तथा नीचे अर्थात छोटे बडे भूतो को उत्पन्न किया। फिर सनत्कुमार को तथा क्रोध से पैदा होने वाले रूद्र को उत्पन्न किया। ब्रह्मा जी ने मन से मारीचि अत्रि अगिरा पुलत्स्य पुलह कतु और वशिष्ठ नामक सप्त ऋषियो को उत्पन्न किया। इन्हीं सप्तर्षियो तथा रूद्रो से ही प्रजाओ की सृष्टि होती है। सृष्टिवृद्धि की इच्छा से ब्रह्मा जी ने अपने शरीर के दो भाग किये। आधे भाग से पुरूष तथा आधे भाग से स्त्री बन गये। फिर उस नारी के गर्भ से ब्रह्मा ने प्रजाओ की सृष्टि की। ये स्वयभू मनु और शतरूपा मानवीय सृष्टि के आदि है।[1]

1– अग्निपुराण 17/1–17

अग्निपुराण के 20वे अध्याय मे जगत सर्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तया।

ब्रह्मतो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतव ।।

ससार के मूल कारण ब्रह्मा के द्वारा निर्मित सर्ग 9 प्रकार के कहे गये हैं जो इस प्रकार है–प्राकृत वैकृत तथा कौमार। इनमे से प्राकृत सर्ग तीन प्रकार के हैं। पहली प्रकृति से महत्तत्व की सृष्टि हुई जिसे ब्रह्मा की सृष्टि कही गयी है। दूसरी तन्मात्राओ की सृष्टि है जिसे भूत सर्ग कहा गया है। तीसरा वैकारिक (सात्विक) सर्ग है जिसे ऐन्द्रिक सर्ग कहते है। ये तीनो प्रकृति से होने वाली सृष्टि है जिसमे सर्वप्रथम बुद्धि की उत्पत्ति हुई। वैकृत सर्ग पाच कहे गये है जिसमे पहला मुख्य सर्ग है। स्थावर (वृक्ष पर्वत आदि) को मुख्य कहते हे। दूसरा तैर्यग्योन्य सर्ग है जिसमे तिर्यकस्त्रोत (पशु, पक्षी आदि) आते हैं। तीसरा ऊर्ध्वरेता प्राणियो का है जिसे देवसर्ग कहते है। चौथा अधोरेता प्राणियो का निर्माण है जिसे मानुषसर्ग कहते है। पाचवा वैकृतसर्ग (अनुग्रह सर्ग) है जो सात्विक और तामस के भेद से दो प्रकार का है। अत तीन प्राकृत और पाच वैकृत सर्ग है नवा कौमार सर्ग है। कुछ लोग सृष्टि तीन प्रकार की मानते है–नित्य नैमित्तिक और प्राकृत। इनमे से प्रतिदिन होने वाले अवान्तर प्रलय के बाद प्रतिदिन जन्म होते रहते हैं उसे नित्य सर्ग कहते हैं।[1]

जगत्सर्ग वर्णन के अन्त मे कहा गया है कि भृगु आदि ऋषियो ने ख्याति आदि दक्ष कन्याओ से विवाह किया। जिसमे भृगु से उनकी पत्नि ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओ तथा लक्ष्मी नाम की कन्या को उत्पन्न किया जो भगवान विष्णु की पत्नी हुई। धाता और विधाता के क्रमश प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय और मार्कण्डेय के पुत्र वेदशिरा हुए। मारीचि से सम्भूति ने पौर्णमास को जन्म दिया अगिरा ने स्मृति से अनेको पुत्र तथा सिनीवाली कुहू, राका और अनुमति नामक कन्याओ को जन्म दिया। अत्रि से अनुसूया ने सोम दुर्वासा और दत्तात्रेय को उत्पन्न किया। पुलस्य ने प्रीति से दत्तोलि नामक पुत्र को प्राप्त किया। पुलह ने क्षमा के गर्भ से सहिष्णु और सर्वपादिक को उत्पन्न किया। कतु ने सन्नति से महान ओजस्वी बालखिल्यो को उत्पन्न किया जिनकी सख्या साठ हजार थी। वशिष्ठ पत्नी ऊर्जा ने राजा गात्र उद्धर्वबाहुक सवन अनहा शुक्र और सुतपा इन सात ऋषियो को जन्म दिया। अग्नि ने स्वाहा से पावक पवमान और शुचि को उत्पन्न किया। अज से अग्निष्वाता बर्हिषद् अनग्नि

1– अग्निपुराण 20/1–7

और साग्नि उत्पन्न हुए। पितरो ने स्वधा से मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याओ को जन्म दिया। अधर्म और हिसा से अनृत तथा निष्कृति नाम की कन्या उत्पन्न हुई। भय और नरक भी इन्ही से उत्पन्न हुए और इनकी पत्निया क्रमश माया और वेदना थी। माया ने भय से मृत्यु तथा वेदना ने नरक से दु ख को उत्पन्न किया। मृत्यु से व्याधिजरा शोक तृष्णा और क्रोध का जन्म हुआ।[1]

ब्रह्मा से रूद्रो की उत्पत्ति हुई। रोते हुए उत्पन्न होने के कारण ये रूद्र कहलाये ब्रह्मा ने महादेव को भव शर्व ईशान भीम और उग्र आदि नामो से सबोधित किया। दक्ष के क्रोध से महादेव की पत्नी सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया और दूसरे जन्म मे हिमालय पुत्री पार्वती के रूप मे पुन शिव की पत्नी हुई।[2]

<u>ख–प्रतिसर्ग</u>

अग्निपुराण के 368वे अध्याय मे प्रतिसर्ग के अन्तर्गत प्रलय का वर्णन करते हुए कहा गया है–

चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो य प्राणिना लय

सदा विनाशो जाताना ब्राह्मो नैमित्तिकोलय ।।[3]

अर्थात प्रलय चार प्रकार के होते हैं। नित्य नैमित्तिक प्राकृत और आत्यन्तिक। जिसमे नित्यप्रलय के अन्तर्गत उत्पन्न वस्तुओ और प्राणियो का सदैव विनाश होता रहता है। ब्रह्ममय समस्त सृष्टि का नाश होना नैमित्तिक लय कहलाता है। चारो युगो के सहस्त्र बार बीत जाने पर प्रकृति से उत्पन्न समस्त वस्तुओ का प्रकृति मे ही लीन हो जाना प्राकृत लय कहा जाता है। तथा आत्यान्तिक लय ज्ञान द्वारा आत्मा का परमात्मा के लीन होना कहा जाता है।

कल्प के अन्त मे चारो युगो के सहस्त्रबार बीत जाने पर भूमण्ड के क्षीण हो जाने पर नैमित्तिक लय होता है जिसमे सौ वर्षों तक निरन्तर अत्यन्त भीषण अनावृष्टि होती है जिसमे समस्त प्राणियो का सर्वनाश हो जाता है। तब जगत् के स्वामी भगवान विष्णु सूर्य की सातो किरणो मे अवस्थित रहकर समस्त जल का पान करते है। अत पृथ्वी पाताल और समुद्र आदि के जल सूख जाने पर जल पीने से बढ़ी हुई रश्मिया (पृथक पृथक) सात सूर्य के रूप मे परिणत हो जाती हैं। इन सातो सूर्यो से भस्मसात् समस्त त्रैलोक्य मे पृथ्वी कछुवे की पीठ की भाति अत्यन्त कठोर हो जाती है। कालाग्नि रूपी रूद्रदेव नागराज शेष के श्वास से पाताल को भस्म करते है। तत्पश्चात पाताल से निकली हुई अग्नि क्रमश पृथ्वी स्वर्गादि लोको को भस्म

1–अग्निपुराण 20/9–21

2–अग्निपुराण 20/20–22

3–अग्निपुराण 368/1

करती है। रूद्ररूपी कालाग्नि द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य भस्म होने पर भगवान विष्णु नि श्वास द्वारा विद्युत समेत अनेक प्रकार के मेघ उत्पन्न करते हैं जो निरतर बरसते हुए इस प्रखण्ड अग्नि को शात करते हैं। तत्पश्चात् वायु द्वारा इन मेघो को नष्ट करके तथा उनका पान करते हुए ब्रह्मरूपधारी भगवान् नारायण एक कल्प तक शयन करते रहते हैं। जागने पर पुन सृष्टि का निर्माण करते हैं। अनावृष्टि और अग्निदाह द्वारा उत्पन्न प्राकृत लय मे प्रकृति से उत्पन्न हुई वस्तुये प्राणी प्रकृति मे लीन हो जाती है।[1]

इसमे पृथ्वी का जल मे लय हो जाता है तथा जल का तेज मे तेज का वायु मे वायु का आकाश मे और आकाश का अहकार मे लय हो जाता है। प्रकृति महान् को महत्वत्व मे विलीन करती है। अव्यक्त प्रकृति मे व्यक्त प्रकृति का लय होता है। एक क्षर तथा शुद्ध पुरूष जो ईश्वर का ही अश है प्रकृति के साथ उस परमात्मा मे विलीन हो जाता है जो केवल सत्तामात्र ज्ञानात्मा आत्मा से परे और ज्ञेय रूप है। ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने वाले आत्यान्तिक लय का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह ज्ञान अपने आध्यात्मिक आदि सताप के जान लेने पर ही विराट द्वारा उत्पन्न होता है। शारीरिक और मानसिक के भेद से वह आध्यात्मिक सताप दो प्रकार को होता है। जीव अपने भोग शरीर को त्यागकर कर्मानुसार गर्भ मे जाता है।[2]

जीव जिस गर्भ मे प्रविष्ट होता है उसमे पहले मास मे (स्त्री–पुरूष के रजवीर्य का) कलल होता है। दूसरे माह मे वह धनीभूत होता है तीसरे मास मे उसमे अवयव उत्पन्न होते हैं। चौथे मास मे हड्डियो चमडे और मास बन जाते हैं। पाचवे मास मे रोम उत्पन्न हो जाते हैं। छठे मास मे सर्वांग सपन्न होने पर उसमे जीव प्रविष्ट होता है। आठवे मास मे उसे मा के शारीरिक श्रम की पीडा का अनुभव होता है तथा वह अत्यन्त उद्विग्न होता है। नवे मास मे वह जन्म लेता है और एक मास तक कर स्पर्श से दु खी हो जाया करता है। उसके देह मे आकाश शब्द द्वारा दोनो कानो का निर्माण एव उसकी विविक्तता होती है और वायु द्वारा श्वास उच्छवास गति और स्पर्श अग्नि द्वारा सबके रूप को देखना तथा उष्मा, पडिक्त पित्त बुद्धि वर्ण बल छाया तेज और शौर्य उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार जल द्वारा स्वेद क्लेद जिह्वा वसा रस रक्त वीर्य मूत्र और कफ आदि उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी द्वारा नाक केश नाखून सिर के लोम तथा मातृन्जन्य कोमल त्वचा मास और हृदय का निर्माण होता है। नाभि मज्जा यकृत मेदा आमाशय नाडी स्नायु वीर्य काम क्रोध भय हर्ष धर्म अधर्म आकृति स्वर–वर्ण तथा लिङ्ग आदि की रचना पिता के अनुसार होती है।

1–अग्निपुराण 368/1–17
2–अग्निपुराण 169/1–2

ज्ञान प्रमाद आलस्य भूख प्यास मोह मात्सर्य गुणहीनता शोक आयास और भय तमोगुण द्वारा उत्पन्न होते है। काम क्रोध शौर्य यज्ञ की इच्छा बहुभाषिता अहकार दूसरे की अवहेलना करना रजोगुण द्वारा तथा धर्म की इच्छा मोक्षेच्छा भगवत्भक्ति दाक्षिण्य और व्यवसायी होना सत्वगुण द्वारा उत्पन्न होते है। वायु की अधिकता से मनुष्य चपल क्रोधी भीरू बहुभाषी कलह प्रिय और स्वप्न मे आकाश की यात्रा करने वाला होता है।[1]

3—वश

स्वायम्भुव वश [2]

स्वायम्भुव मनु ने धर्मचारिणी पत्नी शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया। उस कन्या का विवाह कर्दम ऋषि से हुआ जिससे कुक्षि नामक चक्रवर्ती सम्राट उत्पन्न हुए। उत्तानपाद के सुरूचि नामक पत्नी से उत्तम तथा सुनीति नामक पत्नी से ध्रुव पैदा हुए। ध्रुव ने तपस्या के बल पर सप्तर्षि मण्डल के आगे एक स्थिर स्थान प्राप्त किया। इनके तीन पुत्र वृद्धि भव्य और शम्भु हुए। वृद्धि ने सुच्छाया नामक पत्नी से पाच पुण्यात्मा पुत्रो को उत्पन्न किया। जिनके नाम रिपु रिपुन्जय पुण्य वृक वृकतेजस। रिपु और वृहती से अत्यन्त तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका विवाह वीरण पुत्री पुण्करिणी से हुआ और मनु की उत्पत्ति हुई। नड्वला से मनु से दस पुत्र— उरू पुरू शतघुम्न तपस्वी सत्यवाक कवि अग्निष्टत् अतिरात्रु सुघुम्न और अतिमन्यु को उत्पन्न किया तथा उरू—आग्नेयी से छ महातेजस्वी पुत्र— अग सुमनस स्वाति कृतु अगिरा और गय उत्पन्न हुए। अग ने सुनीधा से वेण नामक पुत्र उत्पन्न किया जो अत्यन्त पापाचारी था। ऋषियो ने प्रजा की रक्षा के लिए उसके दाहिने हाथ को मथ दिया जिससे पृथु की उत्पत्ति हुई जो अत्यन्त तेजस्वी तथा प्रथम राजसूय यज्ञ का अनुष्ठाता हुआ। पृथु के दो पुत्र अन्तर्धि और पालित हुए। अन्तर्धि ने शिखण्डिनी से हविर्धान को उत्पन्न किया। हविर्धान ने अग्निपुत्री धिषणा से छ पुत्र प्राचीनवहिर्ष शुक्र गय कृष्ण ब्रज और अजिन को उत्पन्न किया। यज्ञ करते समय पूरब की ओर नोक किये हुए कुशो को फैलाने के कारण प्राचीनबर्हि कहलाने वाले इस महान प्रजापति ने सामुद्री से दस प्रचेताओ को उत्पन्न किया जो धनुर्वेद मे पारगत थे। उन्होने मारिषा से दक्ष को जन्म दिया। दक्ष ने मन से चराचर द्विपद और चतुष्पदो की सृष्टि की। तत्पश्चात स्त्रियो को उत्पन्न किया। उन स्त्रियो मे दस स्त्रिया धर्म को तेरह कश्यप को, सत्ताइस स्त्रिया चन्द्रमा को चार

1—अग्निपुराण 369/19—37

2—अग्निपुराण —18 19

अरिष्टनेमि को दो बहुपुत्र को और दो अगिरा को दी गयी। जिनसे देवता नागादि उत्पन्न हुए। धर्म की दस पत्नियो से धर्म की सृष्टि हुई। विश्वा से विश्वेदेव साध्या से साध्यगण मरूत्वती से मरूत्वानगण तथा वसु से वसुगण उत्पन्न हुए। भानु से भानु पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए मुहूर्त से मूजूर्त लम्बा से घोष और नागवीथी से यामिज नामक पुत्र ने जन्म लिया। मरूत्वती के गर्भ से पृथ्वी और पृथ्वी से सम्बद्ध समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। सकल्पा से सकल्प ने जन्म लिया। चन्द्रमा ने अक्षत्र पत्नियो से आप ध्रुव सोम धर अनिल अनल प्रत्युष और प्रभास आठ वसुगण को उत्पन्न किया। आपके पुत्र वैतण्डय श्रम शान्त और मुनि हुए। ध्रुव ने काल को और लोकान्त तथा सोम ने वर्चा पुत्र को जन्म दिया। धर ने मनोहरा से द्रविण हुत हव्यवह शिशिर प्राण और रमण नामक पुत्रो को उत्पन्न किया।[1]

अनिल ने पुरोजव और अनल ने अविज्ञात नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अग्निपुत्र कुमार हुए। बाद मे अग्नि के शाख विशाख और नैगमेय नामक तीन पुत्र और हुए। कृतिका ने कार्तिकेय और यति ने सनत्कुमार को जन्म दिया। प्रत्यूष से देवल और प्रभास से विश्वकर्मा उत्पन्न हुए। कश्यप ने सुरभि से ग्यारह रूद्रो को प्राप्त किया। महादेव की कृपा से सती ने अजैकपाद, अहिर्बुधन्य त्वष्टा और रूद्र इन चार पुत्रो को प्राप्त किया। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप हुए जो महान यशस्वी और श्रीसम्पन्न थे। ग्यारह रूद्र के नाम इस प्रकार है– हर बहुरूप त्रयम्बक अपराजित वृषाकपि शम्भु कपर्दी रेवत भृगव्याध सर्प और कपाली।[2]

<u>कश्यपवश</u>

कश्यप वश का वर्णन करते हुए अग्निपुराण मे कहा गया है कि सर्वप्रथम चाक्षुष मन्वन्तर मे कश्यप को अदिति से तुषित नामक देवता रूप पुत्र की प्राप्ति हुई। ये ही इस वैवस्वत मन्वन्तर मे बारह आदित्य हुए–विष्णु शक्र (इन्द्र) त्वष्टा धाता आर्यमा पूषा विवस्वान् सविता मित्र वरूण भग और अशु। अरिष्टनेमि को अपनी पत्नियो से सोलह सन्ताने प्राप्त हुईं। विद्वान् बहुपुत्र की चारो बिजलिया रूप चार पुत्रिया थी। अगिरा मुनि से श्रेष्ठ ऋचायी तथा कृशाश्व ऋषि से दिव्य आयुष उत्पन्न हुए। कश्यप को दिति नामक पत्नी से दो पुत्र–हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष तथा एक पुत्री सिहिका की प्राप्ति हुई। सिहिका का विवाह विप्रचित्ति से हुआ। हिरण्यकशिपु को चार–अनुह्राद ह्राद, परमवैष्णव प्रहलाद तथा सहलाद नामक ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए जिसमे हलाद का पुत्र हलद सहलाद के तीन पुत्र– आयुष्मान शिवि और वाष्कल थे। प्रहलाद का पुत्र विरोचन और विरोचन का पुत्र बलि था। बलि के सौ पुत्र थे जिनमें बाण ज्येष्ठ पुत्र थे।

1–अग्निपुराण 18/1–37

2–अग्निपुराण 18/38–45

हिरण्याक्ष के पाच पुत्र– शम्बर शकुनि द्विमूर्धा शकु और आर्य। दनु के सौ पुत्र थे। सुप्रभा स्वर्भानु की तथा शची पुलोमा की कन्या थी। वृषपर्वा की तीन पुत्रिया–उपदानवी हयशिरा और शर्मिष्ठा। वैश्वानर की दो पुत्रिया पुलोमा और कालका हुईं जिनका विवाह कश्यप ऋषि से हुआ। जिससे इन दोनो के करोडो पुत्र हुए। प्रहलाद के कुल मे चार करोड असुर थे जो निवात कवच कहे जाते थे। ताम्रा की छ पुत्रिया काकी श्येनी भासी मृधिका शुचि और ग्रीवा। इन्ही से कौए आदि की उत्पत्ति हुई।[1] ऊट और घोड़े ताम्रा से उत्पन्न हुए। अरूण और गरूण नामक दो पुत्र विनता के हुए। सुरसा से सहस्त्रदन्ती तथा क्रोधी सापो की उत्पत्ति हुई। कद्रू से हजारो शेष वासुकि तथा तक्षक नाग की उत्पत्ति हुई। धरा के गर्भ से जल मे रहने वाले पक्षी पैदा हुए। सुरभि से गाय भैस आदि तथा इरा से तृण की उत्पत्ति हुई। खसा से यक्ष और राक्षस हुए। मुनि से अप्सराये हुईं। अरिष्टा से गन्धर्व की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार कश्यप मुनि से स्थावर और जगम जगत की सृष्टि हुई।[2]

कश्यप की इन सतानो से असख्य सततियो का आविर्भाव हुआ। ब्रहमा और विष्णु ने सम्पूर्ण जगत रूपी राज्य मे पृथु का राज्याभिषेक कर दिया तथा अन्य राजाओ को भी क्रमश राज्यो का बटवारा कर दिया। ब्राहमणो और औषधियो के स्वामी चन्द्रमा हुए। दक्ष प्रजापति के राजा हुए तथा प्रहलाद दानवो के स्वामी हुए। पितरो के अधिपति यम तथा भूताधिपति शकर हुए। शैलाधिराज हिमालय तथा सागर नदियो का स्वामी हुआ। चित्ररथ गन्धर्वाधिपति और वासुकि नागाधिपति हुए। सर्पों के राजा गरूण बने। ऐरावत हाथियो के स्वामी तथा गोवृष गौओ के अधिनायक हुए। वनस्पतियो का राजा पाकड हुआ। अश्वो का राजा उच्चैश्रवा हुआ। पूर्वाधिपति सुधन्वा तथा शखपद दक्षिणधिपति हुआ जलरक्षक केतुमान हुए। हिरण्यरोमक उत्तर दिशा के रक्षक हुए।[3]

<u>4–मन्वन्तर–</u>

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्य स्वायम्भुवो मनु।
आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुरा।।[4]

मन्वन्तरो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि स्वयभुव मनु आदि मनु थे। उनके पुत्र

1–अग्निपुराण 19/1–15
2–अग्निपुराण 19/15–18
3–अग्निपुराण 19/18–29
4–अग्निपुराण 150/1

आग्नीघ्र आदि थे तथा यम आदि तत्कालिक देवता थे। और्व इत्यादि सप्तर्षि तथा शतक्रतु इन्द्र थे। पारावर और सतुषित स्पारोचिष मन्वन्तर मे देवता थे तथा विनश्चित देवेन्द्र और ऊर्ज इत्यादि द्विज थे। चैत्र आदि किन्नर दूसरे मनु के वशज थे। उत्तम तीसरे मनु थे। उस समय सुशान्ति इन्द्र और सुधाम देवता थे। वशिष्ठ पुत्र सप्तर्षि तथा अज आदि मनु के पुत्र थे। तामस चौथे मनु थे। स्वरूप इत्यादि तत्कालीन देवता और शिखरीन्द्र देवेन्द्र थे। ज्योतिर्होम इत्यादि नौ विप्र और ख्यातिमुख इत्यादि उसके पुत्र थे। रेवत मनु के समय मे पितथ इन्द्र अमिताभ देवता हिरण्यरोम आदि मुनि तथा बलबध इत्यादि मनुपुत्र थे। चाक्षुष मनु के समय मनोजव इन्द्र स्वाति इत्यादि पुत्र सुमेध आदि महर्षि और पुरू इत्यादि पुत्र थे। वैवस्वत मनु ब्राहमण और श्राद्ध देवता थे। तत्कालीन देवता आदित्य वसु और रूद्र इत्यादि थे तथा पुरन्दर इन्द्र थे। वशिष्ठ कश्यप जमदग्नि गौतम विश्वामित्र और भारद्वाज इस समय के सप्तर्षि थे। इक्ष्वाकु इत्यादि उनके पुत्र थे जिनके अश से विष्णु इत्यादि उत्पन्न हुए। तत्पश्चात स्वयभुव मनु के समय मानसवश की उत्पत्ति हुई जिसके बाद अजित सत्य हरि देववर बैकुण्ठ और वामन देव उत्पन्न हुए। सूर्य और छाया से उत्पन्न होने वाले आठवे मनु थे। ये अपने पूर्वजो के सवर्ण थे इसलिए इन्हे सावर्णि भी कहा गया। इस समय सुतप इत्यादि देवता तेजस्वी द्रोणिक इत्यादि मुनि बलि इन्द्र तथा विरज इत्यादि पुत्र थे। नवे मनु दक्ष सावर्णि थे जिनके समय मे पार आदि देवता थे। अद्भुत इन्द्र सवनादि ब्राह्मण धृतकेतु इत्यादि पुत्र थे। तदन्तर ब्रह्मसावर्कि नामक मनु हुए जिनके सुख इत्यादि देवगण शान्ति इन्द्र हविष्य इत्यादि मुनि सुक्षेत्र इत्यादि पुत्र थे। उसके पश्चात् धर्मसावर्णिक नामक मनु हुए जिनके समय ऋतधामा इन्द्र हरित आदि देवता थे। तपस्या आदि सप्तर्षि देवव्रत इत्यादि पुत्र थे। तेरहवे मनु रौच्य थे। उनके समय मे सूत्रमाणादि देवता दिवस्पति इन्द्र निर्मोह आदि सप्तर्षि चित्रसेन इत्यादि पुत्र थे। तथा चाक्षुष इत्यादि देवता अग्निबाहवादि द्विज थे। चौदहवे मनु भौत्य पुत्र उरूमुख थे जो पृथ्वी पर वेद के प्रचारक कहे गये है। इन मनु पुत्रो द्वारा पृथ्वी की रक्षा की जाती थी। समस्त देवता यज्ञ भोगी थी। दिव इत्यादि सप्तर्षि थे। अत ब्रह्मा के दिन मे चौदह मनु हुए है। द्वापर के अन्त मे विष्णु ने मनु आदि और वेद का विभाजन किया था।[1]

<u>5—वशानुचरित</u>

<u>सूर्यवश—</u>

अग्निपुराण मे सूर्यवश का वर्णन करते हुए कहा गया है—

1— अग्निपुराण 150/1—23

सूर्यवश सोमवश राज्ञा वश वदामि ते।

हरेब्रर्ह्मा पद्मगोश्भून्मरीचिर्ब्रहमण सुत ।।[1]

सर्वप्रथम भगवान विष्णु ने पद्मासन ब्रह्मा को उत्पन्न किया। तत्पश्चात ब्रहमा से मरिचि से कश्यप और कश्यप से सूर्य की उत्पत्ति हुई। सूर्य की तीन पत्निया–सज्ञा राज्ञी और प्रभा थी। राज्ञी ने रेवत नामक पुत्र को जन्म दिया। प्रभा से प्रभात की उत्पत्ति हुई और सज्ञा ने मनु और यम नामक दो पुत्र तथा यमुना नामक पुत्री को जन्म दिया। छाया तथा सज्ञा ने सावर्णि वैवस्वत यम शनि तपती विष्टि तथा अश्वनी कुमारो को उत्पन्न किया। वैवस्वत मनु के आठ पुत्र इक्ष्वाकु नाभाग धृष्ट शर्याति नरिष्यन्त प्राशु करूष और पृषध्र हुए जो अयोध्या के राजा थे। मनु की पुत्री इला से बुध ने पुरूरवा को प्राप्त किया। इला ने सुद्युम्न से उत्कल मय तथा विनताश्व नामक तीन पुत्रो को जन्म दिया। नरिष्यन्त के पुत्र शक और नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए। धृष्ट कुल को धार्ष्टक कहा गया। शर्याति को सुकन्या तथा आनर्त की प्राप्ति हुई। आनर्त से वैरोहय की उत्पत्ति हुई। रेव को रैवत उत्पन्न हुआ। नाभाग के दो पुत्र तथा करूष के कारूष नामक पुत्र हुए। इक्ष्वाकु से देवराज विकुक्षि की उत्पत्ति हुई। विकुक्षि को ककुत्स्थ और ककुरस्थ से सुयोधन हुए। सुयोधन को पृथु तथा पृथु को विश्वगाश्व हुए जिसे आयु नामक पुत्र की प्राप्ति हुई आयु के युवनाश्व तथा युवनाश्व का पुत्र श्रावन्त हुआ। श्रावन्त ने वृहदाश्व तथा कुवलाश्व नामक पुत्रो को उत्पन्न किया। इनसे तीन पुत्र –दृढाश्व दण्ड तथा कपिल हुए। जिसमे दृढाश्व के हर्यश्व नामक पुत्र हुए। हर्यश्व के पुत्र निकुम्भ निकुम्भ के सहताश्व हुए। सहताश्व से अकृशाश्व तथा रणाश्व की उत्पत्ति हुई। रणाश्व का पुत्र युवनाश्व तथा उनके पुत्र मान्धाता हुए। मान्धाता के दो पुत्र पुरूकुत्स तथा मुचकुन्द हुए। पुरूकुत्स ने नर्मदा से त्रसदस्यु को उत्पन्न किया। सम्भूत से सुधन्वा तथा सुधन्वा से त्रिधन्वा की उत्पत्ति हुई। त्रिधन्वा से तरूण तरूण से सत्यव्रत सत्यव्रत से सत्यरथ तथा उनके हरिश्चन्द्र की उत्पत्ति हुई।[2]

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व तथा उनके पुत्र वृक हुए। वृक से बाहु तथा बाहु से सगर उत्पन्न हुए। सगर को प्रभा नामक पत्नी से साठ हजार पुत्रो की प्राप्ति हुई तथा भानुमति से असमजस नामक पुत्र हुआ। असमजस से अशुमान तथा अशुमान से दिलीप उत्पन्न हुए। दिलीप के पुत्र का नाम भगीरथ था। भगीरथ से नाभाग नाभाग से अम्बरीष उत्पन्न हुए। अम्बरीष के पुत्र सिन्धुदीप तथा उनके पुत्र श्रुतायु हुए। श्रुतायु ने ऋतुपर्ण और ऋतुपर्ण ने कल्माषपाद को उत्पन्न किया। कल्माषपाद का पुत्र सर्वकर्मा तथा उनके पुत्र

1–अग्निपुराण 273/1

2–अग्निपुराण 273/2–26

अनरण्य हुए। अनरण्य के पुत्र निहन तथा उनके पुत्र दिलीप हुए। दिलीप के पुत्र रघु और रघु के पुत्र अज हुए। अज के पुत्र दशरथ तथा दशरथ के राम हुए। राम से सीता को लव और कुश नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। कुश के पुत्र अतिथि तथा अतिथि के निषध तथा उनके नल की उत्पत्ति हुई। नल ने नभ को नभ ने पुण्डरीक को पुण्डरीक ने सुधन्वा को और सुधन्वा ने देवानीक तथा देवानीक ने अहीनाश्व को उत्पन्न किया। अहीनाश्व से सहस्त्राश्व सहस्त्राश्व से चन्द्रालोक चन्द्रालोक से तारापीड तथा तारापीड से चन्द्रपर्वत का जन्म हुआ। चन्द्रपर्वत से भानुरथ और भानुरथ से श्रुतायु का जन्म हुआ ये इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न होने वाले सूर्यवशी राजा कहलाये।[1]

सोम (चन्द्र) वश

सोमवश प्रवक्ष्यामि पठित पापनाशनम्।

विष्णुनाभ्यन्जऽब्ज जो ब्रह्मा ब्रहमपुत्रोऽत्रिरत्रित ।।[2]

चन्द्रवश का प्रारम्भ भगवान विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्मा तथा उनसे उत्पन्न महर्षि अत्रि के द्वारा हुआ। अत्रि के पुत्र सोम हुए सोम को तारा से बुध नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। बुध के पुत्र पुरूरवा हुए। पुरूरवा ने उर्वशी से आयु दृढायु अश्वायु घनायु धृतिमान वसु दिविजात और शतायु नामक पुत्रो को उत्पन्न किया। आयु के पुत्र नहुष वृद्धशर्मा रजि दम्भ तथा विपाप्मा हुए। रजि के सौ पुत्र राजेय कहलाये। रजि पुत्र नहुष तथा नहुष के सात पुत्र न्यति ययाति उत्तम उद्भव पञ्चक शर्याति तथा मेघपालक हुए। ययाति को देवयानी से यदु और तुर्वस तथा शर्मिष्ठा से द्रघ्य अनु और पुरू नामक पुत्रो की प्राप्ति हुई। यदु और पुरू ने चन्द्रवश को आगे बढाया।[3] बाद मे यदुवश पुरूवश तथा तुर्वस आदि की अनेको राजवश परम्पराये हुयी।

यदुवश–

अग्निपुराण मे यदुवश का वर्णन करते हुए कहा गया है कि

यदोरासन्पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्त्रजित्।

नीलान्जिको रघु क्रोष्टु शर्ताजच्च सहस्त्रजित्।।[4]

यदु को पाच पुत्र– सहस्त्रजित् नीलान्जिक रघु क्रोष्टु तथा शर्ताजत् हुए। शर्ताजत के तीन पुत्र

1–अग्निपुराण 273/27–39
2–अग्निपुराण 274/1
3–अग्निपुराण 274/11–23
4–अग्निपुराण 275/1

हैहय रेणुहय तथा हय हुए। हैहय के पुत्र का नाम धर्मनेत्र तथा धर्मनेत्र के पुत्र सहत थे। सहत के पुत्र महिता तथा महिमा से भद्रसेन हुए। भद्रसेन से दुर्गम तथा दुर्गम से कनक का जन्म हुआ कनक के चार पुत्र–कृतवीर्य कृताग्नि करवीरक तथा कृतौजा हुए। कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई। कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र हुए जिसमे ज्येष्ठ पाच पुत्र क्रमश शूरसेन शूर घन्टोक्त कृष्ण तथा जयहवज थे। जयहवज से तालजघ तालजघ से अन्य पुत्रो की उत्पत्ति हुई। हैहयो के भोज अवन्ति वीतिहोत्र स्वयजात तथा शौण्डिकेय नामक पाच कुल प्रसिद्ध हुए। वीतिहोत्र से अनत और अनत से दुर्जय नामक राजा की उत्पत्ति हुई।[1]

<u>क्रोष्टुवश–</u>

क्रोष्टोर्वश प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरि स्वयम।
क्रोष्टोस्तु वृजिनीवाश्च स्वहाश्भूदवृजिनीवत ।।[2]

क्रोष्टु वश के विषय मे कहा गया है कि इस वश मे साक्षात् भगवान विष्णु ने स्वय अवतार लिया था। सर्वप्रथम क्रोष्टु के पुत्र वृजिनीवान हुए। वृजिनीवान से स्वाहा स्वाहा से रूषद्गु और उससे चित्ररथ की उत्पत्ति हुए। चित्ररथ के पुत्र हरिभक्त राजा शशविन्दु हुए। शशविन्दु को बुद्धिमान सुन्दर और तेजस्वी सौ पुत्रो की प्राप्ति हुई जिसमे पृथुश्रवा को सुयज्ञक तथा सुयज्ञक को उशना और उशना को तितिक्षु हुए। तितिक्षु से मरूत मरूत से कवलवर्हिष कवलर्हिष से रूक्मकवच उनसे रूक्मेषु पृथुरूक्मक हविर्ज्यामघ पापहन ज्यामघ तथा स्त्रीजित आदि पचास पुत्र उत्पन्न हुए। ज्यामघ को शैव्या से विदर्भ की प्राप्ति हुई। विदर्भ से कौशिक लोभपाद तथा कथ का जन्म हुआ।[3]

लोभपाद से कृति कौशिक से चिदि तथा चिदि के चैद्य कहे गये अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। कथ से कुन्ति कुन्ति से धृष्टक धृष्टक से घृति धृति से उदर्क विदूरथ हुए। विदूरथ के पुत्र व्योम व्योम से जीमूत जीमूत से विकल और उनके पुत्र भीमरथ हुए। भीमरथ से नवरथ नवरथ से दृढरथ दृढरथ से शकुन्ति और शकुन्ति से करम्भक की उत्पत्ति हुई। करम्भक के पुत्र देवरात तथा देवरात के पुत्र देवक्षेत्र हुए। देवक्षेत्र के मधु मधु के द्रवरस द्रवरस के पुरूहूत पुरूहूत के जन्तु नामक पुत्र हुए। जन्तु के पुत्र सात्वत थे। सात्वत के भजमान वृष्णि अन्धक तथा देवावृध नामक चार पुत्र हुए। भजमान के चार पुत्र वाहय वृष्टि कृमि तथा निमि

1–अग्निपुराण 275/2–11
2–अग्निपुराण 275/12
3–अग्निपुराण 275/13–18

हुए। देवावृध के पुत्र वभ्रु हुए। वभ्रु के चार पुत्र– कुकुर भजमान शिनि तथा कम्बलवर्हिष थे। कुकुर पुत्र घृष्णु धृष्णु पुत्र धृति तथा धृति पुत्र कपोतरोमा तथा कपोतरोमा के पुत्र तितिर हुए। तितिर ने नर नर ने आनकदुन्दुभि आनकदुन्दुभि ने पुनर्वसु पुर्नवसु ने आहुक आहुक ने देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्रो को जन्म दिया। इनमे से देवक के देववान और उपदेव नामक पुत्र तथा देवकी श्रुतदेवी मित्रदेवी यशोधरा श्रीदेवी सत्यदेवी तथा सुरापी नामक सात कन्या उत्पन्न हुई। उग्रसेन के नौ पुत्र कस न्यग्रोध सुनामा कडक शकु राजा सुतनु राष्टपाल युद्धभुष्टि तथा सुमुण्टिक हुए। भजमान के विदूरथ विदूरथ के शूर तथा शूर के दो पुत्र शोणाश्च और श्वेतवाहन हुए। शमी शत्रुजित आदि शोणाश्व के पाच पुत्र थे जिसमे शमी पुत्र प्रतिक्षेत्र प्रतिक्षेत्रपुत्र भोजक भोजकपुत्र हृदिक हृदिकपुत्र कृतवर्मा शतधन्वा देवार्ह भीषण आदि दस पुत्र थे। देवार्ह के कम्बलबर्हि कम्बलबर्हि के असमौजा नामक पुत्र उत्पन्न हुए। असमौजा के तीन पुत्र सुदष्ट्र सुवास तथा धृष्ट हुए। धृष्ट की गाधारी से सुमित्र माद्री से युधजित नामक पुत्र तथा तीन पुत्र अनमित्र शिनि तथा देवमीदुष उत्पन्न हुए। अनमित्र ने निहन निहन ने प्रसेनक तथा शत्राजित को उत्पन्न किया। शत्राजित का पुत्र भगकर तथा अनिमित्र का पुत्र शिनि शिनि का पुत्र सत्यक और सत्यक का पुत्र सात्यकि हुए। सात्यकि ने युयुधान तथा युयुधान ने धुनि को जन्म दिया। धुनि को युगन्धर युगन्धर को युधाजित युधाजित को ऋषभ तथा क्षेतक नामक सन्ताने उत्पन्न हुईं। ऋषभ से शवफल्कक शवफल्कक से अक्कर अक्कर से सुधन्वा नामक पुत्र उत्पन्न हुए।[1]

शूर के वासुदेव नामक पुत्र हुए। पाण्डु भार्या कुन्ती ने धर्मराज से युधिष्ठिर वायु ने भीम और इन्द्र से अर्जुन को प्राप्त किया भाद्री ने अश्वनी कुमारो से नकुल तथा सहदेव को प्राप्त किया। रोहिणी ने वासुदेव से बलराम सारण तथा दुर्गम को प्राप्त किया। वासुदेव तथा देवकी के नौ पुत्र हुए जिसमे बलराम कृष्ण तथा एक कन्या सुभद्रा रही। कृष्ण से जाम्बती ने चरूदेष्ण तथा साम्ब नामक पुत्रो को प्राप्त किया।[2]

अग्निपुराण के 276वे अध्याय मे यदुवश का वर्णन करते हुए द्वादश देवासुर सग्राम का उल्लेख हुआ है जो इस प्रकार है–

देवासुराणा सङग्रामा दायार्थ द्वादशाभवन्।
प्रथमो नारसिहस्तू द्वितीयो वामनो रण ।।

1–अग्निपुराण 275/18–47
2–अग्निपुराण 275/47–51

सड ग्रामस्वथ वराहश्चतुर्थोश्मृतमन्थन ।

तारकामयसङग्रामा षण्ठो हयजीवको रण ।।

त्रैपुरश्चान्धकबधो नवमो वृत्रोधातक ।

जितो हलाहलश्चाथ घोर कोलाहलो रण ।।[1]

पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए बारह देवासुर सग्राम हुए जिसमे प्रथम है नरसिह सग्राम इसमे प्राचीनकाल मे देवरक्षक भगवान नरसिह ने हिरण्यकशिपु का वक्षस्थ विदीर्ण कर प्रहलाद की रक्षा की थी। दूसरे वामन सग्राम मे अदिति तथा कश्यप पुत्र भगवान वामन ने बलि से छल करके उससे प्राप्त राज्य इन्द्र को प्रदान किया। तीसरे वराह युद्ध मे भगवान वराह ने जलमग्न पृथ्वी का उद्धार करने के लिए हिरण्याक्ष नामक असुर का वध किया। चौथा अमृत मथन मे भगवान कच्छप का रूप धारण करके मथानी का आधार बने तथा मन्थन से प्राप्त अमृत को मोहिनी रूप धारण करके बडी चतुराई से देवताओ मे वितरित किया। पाचवे तारकामय सग्राम मे भगवान हरि ने दानवो को हराकर देवताओ की रक्षा की। विश्वामित्र वशिष्ठ अति तथा शुक्र आदि ऋषियो ने राग द्वेषादि दानवो को परास्त कर देवताओ को बचाया। देवपालक ब्रहमा तथा दैत्यनाशक भगवान शकर को भी त्रस्त करने वाले त्रिपुरासुर को भगवान विष्णु ने भस्म किया। गौरी हरण इच्छुक अन्धकासुर का भगवान विष्णु ने रेवती नक्षत्र मे वध किया। देवासुर सग्राम मे जल का फेन बनकर भगवान विष्णु ने वृत्रासुर का वध किया और देवधर्म की रक्षा की। परशुराम रूप मे भगवान ने शाल्व आदि दानवो को परास्त कर क्षत्रियो का वध करके देवरक्षा की। भगवान विष्णु ने भगवान शकर से हलाहल लेकर दैत्यो के ऊपर प्रयोग किया तथा देवताओ को अभय दिया। कोलाहल नामक दैत्य का वध करके भगवान विष्णु ने धर्म की रक्षा की।[2]

अङ्ग राजवश—

अग्निपुराण मे सूर्य चन्द्र पुरू आदि वशो के अतिरिक्त अग राजवश का उल्लेख किया गया है। जिसमे सर्वप्रथम तुर्वज के पुत्र वर्ग तथा वर्म के पुत्र गोभानु हुए। गोभानु से त्रैशानि त्रेशानि से करधम करधम से मरूत तथा मरूत से दुष्यन्त उत्पन्न हुए। दुष्यन्त ने बरूथ और बरूथ ने गाण्डीर को जन्म दिया। गाण्डीर से गान्धार का जन्म हुआ द्रुह्य से वभ्रुसेतु और वभ्रुसेतु से पुरोवसु उत्पन्न हुए। धर्म से धृत धृत से विदुष विदुष से प्रचेता और प्रचेता से अनड्डु सुभानु चाक्षुष परमेषुक आदि सौ पुत्रो की उत्पत्ति हुई। सुभानु

1—अग्निपुराण 275/47—51

2—अग्निपुराण 276/13—24

ने कालानल कालानल ने सृन्जय सृन्जय ने पुरून्जय और पुरून्जय ने जन्मेजय को उत्पन्न किया। जन्मेजय ने महाशाल और और महाशाल ने महामना को जन्म दिया। महामना का पुत्र उशीना कहलाया। नृगा से नृग नरासेनर कृमि से कृकि दशा से सुव्रत और दृषवती से शिवि उत्पन्न हुए। शिवि को चार पुत्र–प्रथुदर्भ वीरक कैकेय और भद्रह हुए। उशीनर के तितिक्षु तितिक्षु के रूषद्रथ रूषद्रथ के पैल पैल के सुतपा नामक पुत्रो की प्राप्ति हुई। सुतपा ने महायोगी बलि बलि ने अङ्ग अङ्ग ने पुण्ड कलिङ्ग तथा बालेय नामक पुत्रो को उत्पन्न किया। अङ्ग ने दधिवाहन दधिवाहन ने दिविरथ दिविरथ ने सत्परथ और सत्परथ ने लोमपाद को जन्म दिया। लोमपाद को चतुरङ्ग चतुरङ्ग को प्रथुलाक्ष प्रथुलाक्ष को चमा चमा को हर्यंग हर्यंग को भद्ररथ भद्ररथ को वृहत्ववर्मा वृहत्मवर्मा का वृहद्‌भानु वृहद्‌भानु को वृहात्मान वृहात्मान को जयद्रथ जयद्रथ को कर्ण कर्ण को विषसेन और विषसेन को प्रथुसेन नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। इन समस्त राजाओ ने अग वश मे जन्म लिया। 1

पुरूवश

पुरोर्जनमे जयोऽभूत्प्राचीवान्नाम तत्सुत ।
प्राचीवतो मनस्युस्तु तस्माद्वी तमयो नृप ।।2

महाराजपुरू के पुत्र जनमेजय हुए तथा जनमेजय के पुत्र प्राचीनवान था। प्राचीवान के पुत्र मनस्यु तथा मनस्यु के पुत्र वीतचय नामक राजा हुए। वीतचय को शुन्धु शुन्धु को बहुविध बहुविध को सपाती सपाती को रहोवादी और रहोवादी को भद्राश्व नामक सन्तान की प्राप्ति हुई। भद्राश्व के दस पुत्र ऋचेयु कृषेयु सततेयु धृतेयु चितेयु स्थण्डिलेषु धर्मेयु, सनतेषु कृतेयु तथा मतिनारक उत्पन्न हुए। मतिनारक से तसुरोध प्रतिरक्ष तथा पुरस्त नामक पुत्रो की उत्पत्ति हुई। प्रतिरथ से कण्व कण्व से मेधातिथि उत्पन्न हुए। तसुरोध से दुष्यन्त प्रवीरक सुमन्त तथा वीरनय नामक चार पुत्रो का जन्म हुआ। दुष्यन्त से शकुन्तला ने भरत नामक पुत्र को जन्म दिया जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ। माता के क्रोध से भरत के पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर मरूतो ने भरत को वृहस्पति का पुत्र लाकर दे दिया। इसका नाम भारद्वाज था। भारद्वाज ने यज्ञ द्वारा वितथ को जन्म दिया। वितथ के पाच पुत्र सुहोत्र सुहोता, गय गर्भ तथा महात्मा कपिल उत्पन्न हुए। सुहोत्र के कौशिक तथा ग्रत्सपति नामक दो पुत्र हुए। गृत्सपति के दीर्धतमा–ब्राहमक क्षतिय तथा वैश्य पुत्र हुए। दीर्घतमा से धन्वन्तरि उत्पन्न हुए। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान हुए। केतुमान से हेमत्य हेमत्य से दिवोदास दिवोदास से प्रतदर्न और प्रतदर्न से भर्ग तथा वत्स का जन्म हुआ। वत्स से

1–अग्निपुराण 277/1–17
2–अग्निपुराण 278/1

अनर्क अनर्क से क्षेमक क्षेमक से वर्षकेतु वर्षकेतु से विभु विभु से आनर्त आनर्त से सुकुमारक और सुकुमार से सत्यकेतु की उत्पत्ति हुई। वत्सक से वत्सभूमि उत्पन्न हुआ। सुहोत्र पुत्र वृहत के तीन पुत्र– अजमीढ द्विमीढ और पराक्रमी पुरूमीड हुए। अजमीढ से केशिनी ने प्रतापी जुहनु को जन्म दिया। जुहनु से अजकाश्व अजकाश्व से बलकाश्व बलकाश्व से कुशिक कुशिक से अधि नामक पुत्र उत्पन्न हुये। अधि की पुत्री सत्यवती और पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के तीन पुत्र देवरात कतिमुख तथा शुनशेप हुए। अजमीढ के अन्य आठ पुत्र थे और उनको नलिनी नामक पत्नी से शान्ति को उत्पन्न किया। शान्ति से पुरूजाति पुरूजाति से वाह्याश्व वाहयाश्व के पाच पुत्र मुकुल सृञ्जय वृहदिषु यवीनर और कृमिल हुए ये पाचो पान्चाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुकुल के पुत्र मौकुल्य हुए जो क्षात्र धर्म से युक्त द्विजाति थे। मुकुल से चञ्चाश्व की उत्पत्ति हुई। 1

चञ्चाश्व से दिवोदास तथा अहल्या हुई। अहल्या ने शदद्वान से शतानन्द को प्राप्त किया।शतानन्द ने सत्यधृक और सत्यधृक ने कृपा और कृपी नामक दो सन्तानो को जन्म दिया। दिवोदास से मैत्रेय मैत्रेय से सोमप हुये। सृञ्जय से पञ्चधनुष और पञ्चधनुष से सोमदत्त उत्पन्न हुए। सोमदत्त के सहदेव सहदेव के सोमक सोमक के जन्तु जन्तु के पृषत् प्रषत् के द्रुपद द्रुपद के धृष्टद्युम्न नामक पुत्र हुए। धुमिनी से धृष्टकेतु हुए। अजमीढ के ऋक्ष नामक पुत्र स सवरण सवरण से कुरू उत्पन्न हुए उन्होने प्रयाग से आकर कुरूक्षेत्र का निर्माण किया। कुरू से सुधन्वा सुधन्वा से परीक्षित तथा रिपुञ्जय हुए। सुधन्वा से सुहोत्र और सुहोत्र चावन की उत्पत्ति हुई। निरिका के सात पुत्र–वृहद्रथ कुश वीर यदु प्रत्यग्रह बल तथा मत्स्यकाली उत्पन्न हुए। राजावृहद्रथ से कुशाग्र कुशाग्र से वृषम वृषभ से सत्यहित का जन्म हुआ। सत्यहित से सुधन्वा सुधन्वा से ऊर्ज ऊर्ज से सभव सभव से जरासध जरासध से सहदेव सहदेव से उदपि और उदपि से श्रुतकर्मक की उत्पत्ति हुई। परीक्षत के पुत्र जन्मेजय हुए। जनमेजय से सद्धस्यु का जन्म हुआ जुहनु के चार पुत्र–सुरथ श्रुतसेन अग्रसेन और भीमसेन उत्पन्न हुए। जनमेजय के दो पुत्र सुरथ तथा महिमान हुए। सुरथ से विदूरथ विदूरथ से ऋक्ष, ऋक्ष से भीमसेन, भीमसेन से प्रतीप, प्रतीप से शतनु, शतनु से देवापि वाहिलक तथा सोमदत्त नामक पुत्रो की उत्पत्ति हुई। वहिलक के सोमदत्त भूरि भूरिश्रवा तथा शल नामक चार पुत्र हुए। शतनु ने गगा से भीष्म तथा काल्या से चित्रवीर्य नामक पुत्रो को उत्पन्न किया। चित्रवीर्य की पत्नियो से कृष्णद्वैपायन व्यास ने धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर को जन्म दिया। पाण्डुपत्नी कुन्ती से युधिष्ठिर

1–अग्निपुराण 278/2–21

भीम और अर्जुन हुए तथा माद्री से नकुल और सहदेव हुए। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु तथा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित हुए। पाचो पाण्डवो की पत्नी द्रौपदी ने युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य भीमसेन से सुतसोम अर्जुन से क्षुतकीर्ति सहदेव से क्षुतसोम नकुल से शतानीक को जन्म दिया। भीमसेन से हिडिम्बा को घटोत्कच नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।[1] इस प्रकार पुरूवश मे इन प्रतापी राजाओ की विशाल परम्परा रही।

1—अग्निपुराण 278/28—40

अग्निपुराण मे वर्णित भारत का भूगोल

1 भूगोल–

पुराणो मे सृष्टि का वर्णन करते हुए इस जगत का वर्णन किया गया है। साख्य सिद्धान्त के आधार पर प्रकृति और पुरूष के योग से इस प्रपञ्च रचित माया जगत् की उत्पत्ति हुई। जगत ही नहीं सम्पूर्ण समाज ही प्रकृति और पुरूष का क्रीडा क्षेत्र है। यह जगत स्वय भगवान का स्थूल रूप है।[1] इसी प्रकार पृथ्वी सम्पूर्ण जीवो का आधार ही है–

अह हि सर्वभूताना धात्री विश्वधराम्यहम।[2]

यह विश्व धात्री–विश्वम्भरा धरा विश्वपालक की शक्ति–भू वैष्णवी है।

यह पृथ्वी कही चतुर्दीपा और अधिकाशत सप्तद्वीपा तथा सप्त–सागर–मेरवला (सात द्वीपो वाली पृथ्वी सात समुद्रो से घिरी हुई) कही गयी है। पृथ्वी के सात द्वीपो मे से एक द्वीप जम्बू द्वीप भी था और हमारा भारत भी जम्बूद्वीप का वर्ष था। कहा गया है कि भारत मे ही धर्म काम और मोक्ष का अर्जन सभव है–

अन्यत्र भोगभूमिश्च ।

अग्निपुराण मे भारत के बाहर समुद्र मे स्थित द्वीपो को पाताल लोक या दीपान्तर कहते थे। यही भारत का तथा भारत के बाहर का विस्तार था।[3]

2– वसुन्धरा धात्री माता (पोषिका शक्ति) तथा (पोष्य) समाज

भागवत पुराण मे भूगोल का उल्लेख किया गया है–भूगोल सगिरि सरित्समुद्रसत्वम्[4] जिसका तात्पर्य पर्वत नदी समुद्र और प्राणी से युक्त पृथ्वी ही है। इसे ही भूगोलक–भूमण्डल भी कहा गया है। भारतीय भूमण्डल का विशेष महत्व रहा है। इसे ही धात्री वसुन्धरा और माता माना गया था–

माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या ।[5]

यही पोषण करने वाली पोषिका शक्ति है। सूर्य देव और इसके सयोग से यही उर्वी उर्वरा बन जाती है और विविध शस्य सपदा से राष्ट्र और समाज को समृद्ध बनाती रही है। सरिताओ से अभिसिचित होकर

1–भगवत पुराण 5/26/40

भू द्वीप वर्ष सरिद दिनत्य समुद्र पाताल दिङ नरक भागण लोक सस्था।

गीतामया तवनृपादभूतमीश्वरस्य स्थूलवपु सकल जीव निकाय धाम।।

2–स्कन्दपुराण 1/1/16/23(1)

3–अग्निपुराण 107/18

4–भागवत पुराण 5/25/12

5–अथर्ववेद 12/1/12

पुरूषोत्तम की कृपा से भूमि से अन्न उत्पन्न होता है।[1]

जन समाज और पृथ्वी के परस्पर स्नेह से ही यह पृथ्वी वसुन्धरा (सम्पत्तियो का भण्डार) है। यहा मानव जीवन और पशु जीवन को प्रकृति से इतनी सामग्री प्राप्त हो जाती रही जिससे यहा के निवासियो को पेट के लिए भटकना नही पडा। विविध ऋतु और विविध फल मूल और कन्द आदि ने मुनिवृत्ति का आधार उन चिन्तक महर्षियो को दिया जिन्होने विश्व को आर्य–पथ (सत्पथ) सुझाया। ईशावास्य उपनिषद मे यही तो कहा गया है कि सौ वर्षों तक कर्म करते हुए जियो और न्यायपूर्वक धन कमाकर भोग और त्यागमय जीवन बिताओ। क्योकि कस्य स्विद्धम्? धन किसका हुआ है अर्थात् धन किसी का गुलाम नही है।[2] इसी से यहा के लोग धन को त्यागकर धर्म कमाने अरण्यो मे चले जाते थे।

3–सप्तद्वीपा वसुन्धरा

वक्ष्ये भुवनकोश च पृथ्वी द्वीपादिलक्षणाम।[3]

अन्य पुराणो की भाति विद्यासार अग्निपुराण मे भी भूगोल विद्या का सार दिया गया है। जिसमे अध्याय 107 से अध्याय 120 तक भुवन कोश का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर मनु और उसके वशज प्रियव्रत आदि का राज्य था। प्रियव्रत के सात पुत्र इन्ही सात द्वीपो के स्वामी थे।[4] ये सात द्वीप[5] निम्नलिखित है–

1–जम्बूद्वीप

2–प्लक्षद्वीप

3–शाल्मलिद्वीप

4–कुशद्वीप

5–क्रौञ्चद्वीप

6–शाकद्वीप

7–पुष्करद्वीम

इन महाद्वीपो की ठीक–ठीक पहचान करना अति कठिन ही नही असम्भव है। कुछ लोगो ने

1–श्री मद भगवद्गीता 15/13
2–ईशावास्योपनिषद 1(2)
3–अग्निपुराण 107/1
4–अग्निपुराण –107/1–3(1)
5–(क) अग्निपुराण –107/3(2) 5(2)
(ख) अग्निपुराण 108/1 जम्बूप्लाक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापपरो महान्।
कुश कौञ्चस्तथा शाक पुश्करश्चेति सप्तम ।।

अटकले लगाई है परन्तु वे अनिश्चित ही है।

सात द्वीप सात समुद्रो से घिरे हुए थे।[1] जो एक दूसरे से दुगुने होते गये हैं इन समुद्रो के नाम निम्नलिखित हैं–

1–लवण सागर

2–इक्षु साँगर

3–सुरा सागर

4–सर्पिष् सागर

5–दधि सागर

6–दुग्ध सागर

7–जल सागर (स्वादु जल सागर)[2]

सातो द्वीप को घेरे हुए इन सातो समुद्रो के जल के लक्षण के अनुसार यथा इक्षुसार स्वरूप इक्षुसागर खारे जल वाले समुद्र को लवण सागर इत्यादि नाम हजारो वर्ष पूर्व दिये गये थे। आज इसकी सत्यता का परीक्षण करने की आवष्यकता है।

विभिन्न पुराणो मे इन सात द्वीपो के क्रम तथा नामो मे भी कुछ भेद पाया जाता है। पुराणो के अनुसार पृथ्वी के सातो द्वीपो के मध्य मे लवण सागर से घिरा हुआ जम्बू द्वीप है उसके बाद प्लक्ष द्वीप शाल्मलद्वीप कुशद्वीप क्रौञ्चद्वीप और पुष्कर द्वीप है जो क्रमश इक्षुसागर सुरोदक सागर धृतोदक सागर दधिसागर क्षीर सागर और स्वादूदक सागर से घिरे हुए हैं।[3]

स्कन्द वराह और मत्स्य पुराणो मे प्लक्ष द्वीप के स्थान पर गोमेद द्वीप का नाम मिलता है।[4] ब्रह्मवैवर्त पुराण मे शाल्मल द्वीप के स्थन पर न्यग्रोध द्वीप का नाम प्राप्त होता है।[5]

<u>जम्बूद्वीप</u>

इन सभी सातो द्वीपो मे जम्बू द्वीप का भारत के लोगो के साथ घनिष्ठ सबध रहा है। अत जम्बूद्वीप के विषय मे विशेष विवरण भी प्राप्त है। शत सहस्त्र योजन विस्तार वाले वर्तुलाकार तथा लवण सागर से

1–अग्निपुराण – 108/2

2–अग्निपुराण – 108/1–2

3–गरूड़ पुराण– 1/54/4–5

4–स्कन्द पुराण– 1/2/37/19

वराह पुराण अ0 82–(गद्य)

मत्स्य पुराण 122/38

5–ब्रह्मवैवर्त पुराण 4/1/7/7

घिरा हुआ सभी द्वीपो के मध्य मे स्थित जम्बूद्वीप विशेष महत्वपूर्ण रहा है। जम्बू वृक्ष के नाम पर ही इस महाद्वीप का नाम जम्बूद्वीप पडा। सभवत यहा पर जामुन के पेडो की प्रचुरता थी। महाभारत के भीष्मपर्व मे इसे सुदर्शन द्वीप कहा गया है। जम्बूद्वीप उत्तर तथा दक्षिण मे नीचा और मध्य मे ऊचा है। यह सभी द्वीपो के मध्य मे है और इसके मध्य मे मेरू पर्वत स्थित है।

<u>जम्बूद्वीप के वर्ष–(विभाग)</u>

जम्बूद्वीप के भू–विभाग (वर्ष) निम्नलिखित कहे गये हैं–

1–इलावृत्त वर्ष– मेरू के आसपास स्थित था।

2–रम्यक वर्ष–यह इलावृत्त के उत्तर मे स्थित था।

3–हिरण्यमयया

श्वेत वर्ष–सभवत ईरान था।

4–उत्तर कुरू–सभवत यह कोरिया देश था।

5–किम्पुरूष वर्ष–अज्ञात

6–हरिवर्ष–अज्ञात

7–भारत वर्ष–इसके पूर्व मे भद्राश्व वर्ष (सभवत चीन) तथा पश्चिम मे केतुमाल वर्ष स्थित था।

8–भद्राश्व वर्ष–सभवत चीन था

9–केतुमाल वर्ष–यह पश्चिम मे स्थित अरब सीरिया आदि था।[1]

ये ही जम्बूद्वीप के 9 वर्ष विभाग हैं।[2] इनकी पहचान भी निश्चित नहीं है। भारत वर्ष के अतिरिक्त अन्य वर्ष विभागो के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। भारत सबके दक्षिण मे स्थित है। इसे हेमवत वर्ष [3] हिमाह्वय[4] हिमाक[5] (वर्ष) और नाभिखण्ड [6] भी कहा गया है।

<u>4–भारत का नामकरण</u>

पुराणो के आधार पर मानव वशीय महाराज ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर ही इस पवित्र देश का नाम भारत पडा।

1–अग्निपुराण–107/3–7
2–अग्निपुराण 108/7–8
3–(क) मत्स्य पुराण 113/28
(ख) लिङ्ग पुराण 1/49/7
4–मार्कण्डेय पुराण 53/40
5–लिङ पुराण 1/47/19
6–स्कन्द पुराण 1/2/37/56

भरताद् भारतवर्षम ।[1]

जम्बूद्वीप मे भारतवर्ष को ही श्रेष्ठ कहा गया है जिसे कर्मभूमि कहा गया है। यही कर्म–फल भूमि है और यहा ही कर्म द्वारा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। यही सुकर्म (पुण्यकर्म) से मनुष्य देवत्व भी प्राप्त कर सकता है। यहा नाना प्रकार के लोग रहते है तथा नाना प्रकार के देवी–देवताओ का पूजन करते है और नाना प्रकार के कर्म करते है।

भारत–स्थिति एव विस्तार

उत्तरयत् समुद्रस्य हिमाद्रेष्चैव दक्षिणम।

वर्ष तद् भारत नाम नवसाहस्र विस्तृतम्।।[2]

दक्षिण समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण जो भूखण्ड (वर्ष) स्थित है उसे भारत वर्ष कहते है। यह नौ सहस्त्र योजन विस्तार वाला है। यह स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करने वालो के लिए कर्मभूमि है।[3] इसके पूर्व मे किरात तथा पश्चिम मे यवन बसे हुए स्थित थे।[4] पश्चिम स्थित यवन (म्लेच्छ यवन) अरब के मुस्लिम आक्रमणकारी थे जो सिन्ध तथा भारत के पश्चिमी सीमावर्ती देशो को जाकर वहा राज्य करने लगे थे। इनकी ही गरूण पुराण मे सैन्धवा यवनाम्लेच्छा नास्तिकास्तथा' कहा गया है।[5]

5(1)–भारतवर्ष–नवद्वीप

भारत वर्ष मे नवद्वीप सम्मिलित थे जिसका विवरण निम्नलिखित है–[6]

1–इन्द्रद्वीप

2–कसेरू

3–ताम्रवर्ण

4–गभस्तिमान

5–नागद्वीप

1–(क) अग्निपुराण 107/12(1)–मनु के वश को मानव वश कहा जाता था। इसी वश मे प्रियव्रत के पुत्र आग्नीघ्र जम्बूद्वीप के सम्राट बने और आग्नीघ्र के सम्राट बने और आग्नीघ्र के पुत्र जम्बूद्वीप के स्वामी हुये। नाभिदेव के पुत्र ऋषभदेव तथा ऋषभ देव के पुत्र थे।–107/8–12

(ख) ब्रहम पुराण–13/56–57

2–अग्निपुराण 118/1

3–अग्निपुराण 118/2(1)

4–(क) कूर्म पुराण–1/46/26(2)–पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा।

(ख)– विष्णु पुराण–2/3/8

(ग)– वायु पुराण 1/45/82

5–गरूण पुराण 1/55/15

6–अग्निपुराण 118/3(2)–4

6–सौम्य

7–गान्धर्व

8–वारूण

9–अय तुनवम द्वीप सगर सवृत

नवा द्वीप जो सागर से घिरा हुआ तथा उत्तर से दक्षिण तक सहस्त्रयोजन विस्तार वाला (योजनाना सहस्त्राणि) दक्षिणोत्तरत्[1] को वराह पुराण मे [2] भारतद्वीप स्कन्द पुराण के [3] कुमारी द्वीप या कुमारिका खड तथा वामन पुराण [4] मे कुमार द्वीप कहा गया है।

इन्द्रद्वीप–

यह इन्द्रद्युम्न द्वीप या अडमान द्वीप है।

नागद्वीप–

यह आधुनिक निकोबार है।

ताम्रवर्ण (ताम्रपर्ण)–

यह सीलोन (सिहल) या लका द्वीप है। यूनानी लेखको ने इसे तप्रोवेन कहा है।[5]

कसेरूमान–

इसकी पहचान मलाया से की गयी है।[6]

गभस्तिमान–

इसकी पहचान निश्चित नही हो सकी है।

सौम्यद्वीप–

यह सुमात्रा है।

गन्धर्वद्वीप–

यह फुन्नन देश है।

वारूणद्वीप–

यह आधुनिक बोर्नियो है।

1–अग्निपुराण–118/5(1)

2–वराह पुराण 85 (गद्य) इन्द्रकसेरु ताम्रवर्णो गभस्तिनागद्वीप तथा सौम्यो गान्धर्वो वारूणो भारत इति

3–स्कन्दपुराण 1/2/39/69

4–वामनपुराण 13/10

5–मैकिडिल इण्डिया– टालमी–247

6–एस एन मजूमदार– कनिघम ज्योग्राफी इ0 पृ0 752

इन समुद्र द्वीपो को ही द्वीपान्तर का नाम दिया गया है भारतीय सस्कृत साहित्य और पुराणो तथा काव्य मीमासा मे भी द्वीपान्तर के उल्लेख है।[1]

द्वीपान्तर के विविध द्वीपो मे भारतीय व्यापारी भिन्न–भिन्न वस्तुओ का व्यापार करते थे। द्वीपान्तर व भारत के बीच राजनैतिक सास्कृतिक और धार्मिक सबध थे।

भारत तथा इन द्वीपो के मिलने से ही भारत का विस्तार हुआ तथा भारत–महद् भारत वर्ष महाभारत कहलाया।

(2)जनपद

अग्नि पुराण मे भारत वर्ष का वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे दिया गया है और पाठ भी भ्रष्ट आगे का पीछे पीछे का आगे किया गया है। इसके तीनो सस्करणो मे एक से ही पाठ हैं। अध्याय 118 मे भारत वर्ष का वर्णन किया गया है। इसमे श्लोक 1 से 5 (1) तक शुद्ध है।

श्लोक एक मे भारत की स्थिति तथा कर्मभूमि (21) का वर्णन है। श्लोक 2 (2)–3(1) मे कुल पर्वतो का वर्णन है। इसके बाद श्लोक 3 (2)–4 (1) तक आठ द्वीपो और श्लोक 4 (2)–5(1) मे नवे द्वीप (भारत) का वर्णन है। श्लोक 5 (2) मे कहा गया है–नवभेदा भारतस्यमध्यमेदेथपूर्वत ।[2]

इसके बाद न तो नव भेदो का वर्णन है और न ही उन भागो मे स्थित जनपदो का वर्णन किया गया है।

ये नव भेद है जो मध्य देश से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर प्रदक्षिणा क्रम से हैं यथा–

1– मध्य भाग – मध्य देश

2– पूर्व देश – कलिङ्ग इस देश भाग मे स्थित था।

3– पूर्व दक्षिण – कोशल (दक्षिण कोसल)

4– दक्षिण – दक्षिणात्य

5– दक्षिण पश्चिम – –

6– पश्चिम भाग – अवन्ति इस देश भाग मे स्थित था।

7– पश्चिम उत्तर – पश्चिमोत्तर या उत्तरापथ

8– उत्तर – उदीच्वी

9–उत्तर–पूर्व – कामरूप इस देश भाग मे स्थित था।

1–डॉ० ए० बी० एल०– अवस्थी–प्रा० भा० भू० पृ० 160–170 201–203 207–209

2–अग्निपुराण – 118/5(2)

भोज प्रथम का युग

कान्यकुब्ज–

मध्य प्रदेश मे कुरु पाचाल की स्थिति से कान्यकुब्ज महादेश का ज्ञान होता है जो महाराज भोज प्रथम के साम्राज्य का परिचय देता है।[1] कुरूपाचाल (एक वचन में) एक ही राज्य था जिसमे कुरु और पाचाल सम्मिलित थे। यह राज्य भोज प्रथम और उनके पुत्र महेन्द्र पाल तक सीमित रहा।

कुरू

यह गगा–यमुना के अन्तर्वेदी का उत्तरी भाग ही था जिसमे दिल्ली मेरठ तथा मुजफफर नगर आदि प्रान्त सम्मिलित थे। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी जो मेरठ प्रान्त के मवाना तहसील मे स्थित है।

पाचाल[2]

इस युग मे यह कान्यकुब्ज देश ही कहलाता था। इसकी राजधानी महोदय (कन्नौज) थी इसे पाचाल नगर भी कहते थे।

एकचक्रा भी पाचाल देश [3] का प्राचीन नगर था।

काशी (काशीराज)[4]

काशी भी मध्य देश का प्राचीन प्रसिद्ध और पवित्र जनपद (राज्य) था। इसकी राजधानी वाराणसी थी। यह भी प्रतिहार साम्राज्य का एक प्रदेश था।

विराटक[5]

विराटक अर्थात् विराट का राज्य मत्स्य जनपद कहलाता था। इसकी राजधानी विराट नगर (आधुनिक वैराट जयपुर प्रान्त) थी।

कच्छ देश[6]

यह पश्चिमी भारत का प्रसिद्ध देश था। इस समय भी यह कच्छ ही कहलाता है।

कावेरी[7]

कावेरी तटवर्ती देश दक्षिण भारत का वह भाग है जिसमे मैसूर प्रान्त तथा आसपास का क्षेत्र

1–स्कन्द पुराण –7/2 कान्यकुब्जे महादेशे राजाभोजेति विश्रुत।
2–अग्निपुराण– 13/4– यहाँ द्रौपदी का स्वयवर हुआ था।
3–अग्निपुराण– 13/13
4–अग्निपुराण– 13/6
5–अग्निपुराण– 13/22
6–अग्निपुराण– 39/6
7–अग्निपुराण– 39/6

सम्मिलित था।

कोकण[1]

यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध देश है। यह अपरान्त क्षेत्र मे समुद्र और सहयाद्रि के मध्य स्थित था। इसमे महाराष्ट्र का थाना रत्नागिरी आदि सम्मिलित थे।

कामरूप[2]

यह आसाम का प्राचीन नाम है। इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (गौहाटी) थी।

कलिङ्ग[3]

यह दक्षिण पूर्व भारत का इतिहास प्रसिद्ध देश है। इसके पश्चिम मे अमरकटक पर्वत श्रेणी स्थित है और पूर्व मे बगाल की खाडी है। यह आधुनिक उडीसा प्रदेश मे महानदी और गोदावरी नदियो के मध्य स्थित भूभाग था। नन्दराज[4] और अशोक ने कलिङ्ग विजय[5] की थी। कलिङ्ग राज खारवेल ने चारो दिशाओ मे विजय प्राप्त कर कलिङ्ग की महानता स्थापित की थी।[6]

कश्मीर[7]

यह उत्तरापथ का प्रसिद्ध देश हिमालय की कुक्षि मे स्थित काश्मीर (केसर[8]) के लिए प्रसिद्ध रहा है। अग्नि पुराण के युग मे यहा तुरूको के आक्रमण हो रहे थे। रामानुज भरत के पुत्रो तक्ष और पुष्कर ने दो देशो को बसाया था। तक्षशिला तथा पुष्करावती[9]।

तक्षशिला–

सिन्धु नदी के पूर्व मे स्थित प्रसिद्ध राज्य (आधुनिक रावलपिडी और पेशावर) था।

पुष्करावती–

सिन्धु नदी के उस पार पश्चिम मे स्थित था। इसकी राजधानी पुष्करावत ही थी जिसे सिकन्दर के आक्रमण के समय यूनानी प्युकेलाटिस नाम से पुकारते थे।

1–अग्निपुराण– 39/6
2–अग्निपुराण– 39/7
3–अग्निपुराण–39/7
4–खारवेल का हाथी गुम्फालेख
5–अशोक का त्रयोदश लेख
6–खारवेल का हाथी गुम्फालेख
7–अग्निपुराण–39/7
8–अग्निपुराण–35/15 57/17
9–अग्निपुराण–11/8

आन्ध्र –

यह दक्षिण का प्राचीन और प्रसिद्ध जनपद था जो आज भी अपने प्राचीन नाम से प्रसिद्ध है। यह कृष्णा और गोदावरी के मध्य स्थित था। इसकी राजधानी धान्यकटक (या अमरावती) थी।

(3)नगर–ग्राम–पत्तन

अयोध्या[1]

यह मध्य देश का पवित्र और प्राचीन नगर था। रामायण युग मे यहा कौशल की राजधानी थी जो सरयू नदी के पवित्र तट पर आज भी स्थित है।

मिथिला[2]

यह मैथिलनगर जनक की राजधानी थी। यह उत्तरी बिहार मे आधुनिक जनकपुर कहलाता है।

श्रृगवेरपुर[3]

यह गगा तट पर स्थित प्राचीन और पवित्र नगर तथा तीर्थ था। यह इस समय लखनऊ इलाहाबाद मार्ग पर मुख्य मार्ग से थोडी दूर स्थित है। यहा पर पुरातात्विक खुदाइ से बहुत बडे तालाब के अवशेष प्राप्त हुए है।

मथुरा[4]

यह मध्य देश का पवित्र और प्राचीन नगर यमुना तट पर स्थित है।

वृन्दावन[5]

मथुरा के पास वृन्दावन धाम वैष्णव तीर्थ है।

द्वारका[6]

पश्चिम भारत मे सौराष्ट्र के समुद्र तट पर कृष्णपुरी द्वारका आज भी स्थित है।

शोणितपुर[7]

यह बलिपुत्र बाण की राजधानी थी। अत इसकी पहचान बाणपुर से की जा सकती है किन्तु इसकी ठीक–ठाक पहचान नही की जा सकी है।

1–अग्निपुराण–5/14 6/7 30 47 49
2–अग्निपुराण–11/19
3–अग्निपुराण–6/32 46
4–अग्निपुराण–12/22 27 28 29
5–अग्निपुराण–12/8
6–अग्निपुराण–12/30 46 53
7–अग्निपुराण–12/42

हस्तिनापुर[1]

यह कुरू राज्य की राजधानी थी जो इस समय उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले मे मवाना तहसील मे स्थित इसी नाम से प्रसिद्ध है। पुरातत्व परक खुदाई से इसकी प्राचीनता भी प्रमाणित हो गयी है।

ग्राम

नन्दिग्राम[2]

यह अयोध्या के निकट वह स्थान है जहा भरत जी ने श्री रामचन्द्र के वनवास काल मे तप करते हुए समय व्यतीत किया था।

पत्तन

प्रभासपत्तन

प्रसिद्ध तीर्थ प्रभास (सौराष्ट्र) को प्रभास पत्तन कहा गया है। यह समुद्र तट पर ही स्थित था।

पर्वत

भारतवर्ष के सबसे महत्वपूर्ण सात पर्वत श्रेणियो को कुल पर्वत कहा है। ये अग्निपुराण के अनुसार निम्नाकित है –

1– महेन्द्र– पूर्वीघाट की पहाडिया

2– मलय– पश्चिमी घाट का दक्षिणी भा मलय कहलाता है।

3– सह्य– पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग सह्य या सहयाद्रि कहलाता है।

4– शुक्तिमान– इसकी पहचान गोडवाना की पहाडियो से की गयी है।

5– हिमपर्व– हेमपर्व– यह हिमालय ही है।

6– विन्धय – यह प्रसिद्ध पर्वत नर्मदा के उत्तर व दक्षिण भारत के मध्य मे पश्चिम से पूर्व मे छोटा नागपुर तक फैला हुआ है।

7– पारियात्र[3]– विन्धय श्रेणि का पश्चिमी भाग ही पारियात्र कहलाता था। इसी पारियात्र मे अर्बुद (आबू) तथा भूपाल के आसपास की पहाडिया सम्मिलित थी। इस कुल पर्वत तालिका मे ऋक्षवत (ऋक्ष पर्वत) के स्थान पर हेम पर्वत या हिम पर्वत का नाम दिया गया है। प्रचलित तालिका निम्नलिखित है–

1–अग्निपुराण–15/9

2–अग्निपुराण–6/49

3–अग्निपुराण–118/2 (2) 3 (1)

महेन्द्र मलय सह्य शुक्ति मानृक्षवानपि।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल पर्वता ।।[1]

हिम पर्वत या हिमालय के उल्लेख से ही सपूर्ण भारत देश का ज्ञान होता है।इन पर्वतो के अतिरिक्त अन्य पर्वत भी है जिन्हे क्षुद्र पर्वत कहा गया है। उनका भी कम महत्व नही था।

नदिया

हिमाद्रेश्चन्द्रभागका[2]

अर्थात् हिमाद्रि (हिम पर्वत या हेम पर्वत) हिमालय से चन्द्रभागा आदि नदिया निकलती है।

चन्द्रभागा (हिमालय से)

यह पजाब की चिनाव नही है। चन्द्रभाग नामक काश्मीर की पहाडियो से चन्द्रभागा निकलकर आगे सेलम मे मिल जाती है। हिमालय से निकलने वाली अन्य नदियो के नाम नहीं दिये है हिमालय से ही गगा सिन्धु यमुना शतद्रु वितस्ता इरावती आदि भी निकलती है।

त्रिसामा–

त्रिसामाद्या महेन्द्रजा[3]

महेन्द्र अर्थात पूर्वी घाट से त्रिसामा आदि नदिया निकलती है। यह उडीसा की पवित्र नदी है। इसे ही पितृसोमा और ऋषिकुल्या ही माना गया है।[4]

कृतमाला–

मलयात्कृतमालाद्या[5]

अर्थात् मलय से कृतमाला आदि नदिया निकलती हैं। यह नदी मलय पर्वत से निकलती है। श्रीएस के डे ने इसकी पहचान बेगाई नदी से की है जिस पर मदुरा नगर बसा हुआ है।[6]

1–(क) मत्स्य पुराण– 113/17
ब्रहम पुराण 19/3 27/19–20
गरूण पुराण 1/55/6
वायु पुराण 1/45/88
वामन पुराण 13/15
2–अग्नि पुराण 118/8(2)
3–अग्नि पुराण 118/8(1)
4–बी० सी० ला० रिवर्स आफ इण्डिया पृ० 45
5–अग्नि पुराण 118/8(1)
6–जा० डि० पृ० 104
ला० हि० जा० ऐ० इ० पृ० 39

कुमाराद्या शुक्तिमते[1]

शुक्तिमान पर्वत से कुमारा (कुमारी) आदि नदिया निकलती है। श्री एस के डे[2] तथा कनिंघम[3] ने इसकी पहचान बिहार की कोरहरी नदी से की है जो राजगिरि से निकलती है।

विध्याच्चनर्मदाद्या स्यु तापी पयोष्णिका[4]

<u>नर्मदा</u>–

यह भारत की अत्यन्त पवित्र नदी है। यह अमरकटक के पास से निकलकर मध्य प्रदेश मे बहती हुई अरब सागर मे अनेक सहायक नदियो को अपने मे समेट कर गिर जाती है। इसके मुहाने पर भृगुकच्छ (भडौच) प्रसिद्ध बदरगाह स्थित था।

<u>तापी</u>–

यह भी विन्ध्य से निकलती है। गलती से पुराण मे लिख दिया गया है–सहयात्तापीपयोष्णिका[5] इसे तपती भी कहते है। यह नदी वेतूल (मध्य प्रदेश) के पास से निकलती है और सूरत होती हुई अरब सागर मे गिरती है।

<u>पयोष्णी</u>–

यह भी विन्ध्य पर्वत से निकलती है। महाभारत से ज्ञात होता है कि यह विदर्भ (आधुनिक बरार) देश से होकर बहती थी।[6]

<u>गोदावरी</u>–

यह दक्षिण भारत की सर्वप्रसिद्ध और महापावनी गौतमी गगा है जो नासिक (महाराष्ट्र) के पार त्रयम्बल गिरि–ब्रह्मगिरि से निकल कर बगाल की खाडी (पूर्व सागर) मे दडकवन को पवित्र बनाती हुई गिर जाती है। यह सात धाराओ मे समुद्र मे गिरती है। अत सप्तगोदावरी तीर्थ भी वहा है। ब्रह्म पुराण मे गौतमी (गोदावरी) महात्म्य 105 अध्यायो मे वर्णित है।[7]

इसके किनारे ही पचवटी वन मनोरम देश तथा विशाल गोदावरी वन था जहा ऋषियो के आश्रम और असख्य तीर्थ थे।

1–अग्नि पराण 118/8(2)
2–जा डि प्र० 107
3–आर्क सर्वे जिल्द 8 प्र० 125
4–अग्निपुराण 118/7(1)
5–अग्निपुराण 118/7(1)
6–महा० वनपर्व– 61/22
7–ब्रह्मपुराण– गौतमी माहात्म्य

भागीरथी–

यह नदी सह्य पर्वत से निकलती है। यह आधुनिक भीमा है।[1]

कृष्णवेणा–

यह कृष्णा और वेणा की मिली हुई धारा है जिसे खारवेल के अभिलेख मे कन्हवेणा कहा गया है।[2] पश्चिमी घाट से निकलकर पूर्वी घाट को काटती हुई मसलपटम् के पास बगाल की खाडी में गिर जाती है। इस अग्नि पुराण मे हिमालय (चन्द्रभागा) से लेकर मलय (कृतमाला) तक सम्पूर्ण भारत का परिचय दिया है। जब कृतमाला[3] के तट पर ही मनु महाराज तप तथा तर्पण कर रहे थे तभी मत्स्य भगवान ने उन्हे पालन धर्म (राजधर्म पालन) का आदेश दिया था।

6–कर्मभूमि पर्वत वन नदिया

भारतवर्ष को कर्मभूमि माना गया है। कर्म के द्वारा ही स्वर्ग मोक्ष अथवा नरक की प्राप्ति होती है। यहा के पर्वतो वनो नदियो और समुद्रो ने मनुष्य को कर्मठ बना दिया तथा वे ऋषिपथ का अनुसरण करते हुए चर्तुवर्ग पुरूषार्थों की प्राप्ति मे शिथिल न रहे।

भारत जम्बूद्वीप का एक विभाग (वर्ष) है हिमालय मे स्थित गगा की धाराओ भागीरथी गगा अलकनन्दा आदि की घाटियो मे ही आर्य सस्कृति का उदय और विकास हुआ था। इन सात धाराओ ने हिमालय को देश्तात्मा (देवलोक) बना दिया।

भारत के सात कुल पर्वतो से निकलने वाली नदियो की पवित्र घाटियो मे ऋषि–मुनियो के आश्रम मदिर मठ और विहार स्थित थे जो धर्म आचार शिक्षा विद्या और विभिन्न दार्शनिक विचार–धाराओ के मूल स्रोत थे। ईसा की आठवी शताब्दी मे इन्ही मुनि आश्रमो का विनाश होने पर भी निर्जन पुण्यारण्य ही भारतीय सस्कृति के रक्षारण्य थे जहा के साहित्य और विद्याओ का सरक्षण पुराणो मे किया गया। आज बहुत से प्राचीन तीर्थ नष्ट हो गये है और उनके नाम भी बदल दिये गये है। परन्तु पौराणिको ने उनकी तालिका बनाकर उन्हे सुरक्षित रखा। अग्नि और गरूण पुराण ऐसे ही दो महापुराण हैं जिन्हे हम विद्यासार कहते हैं। अग्नि पुराण मे ऐसे पचपन वैष्णव क्षेत्रो तथा अन्य तीर्थों का वर्णन किया गया है।

अग्नि पुराण वैष्णव पुराण है–(वासुदेवनमाम्यहम्) साथ ही यहा अन्य देवी देवताओ (श्रियसरस्वती गौरी

1–डा० ए० बी० एल० अवस्थी– प्राचीन भा० भू० पृ० 228

2–खारवेल का हाथी गुम्फालेख पक्ति–4

3–अग्नि पुराण– 2/4

गणेशस्कन्दमीश्वरम् ब्रह्मणमिन्द्रवह्न्यादीन्) का महत्व भी वर्णित है। शक्ति का महत्व सदा विशेष रूप से था। शक्ति के बिना ही राष्ट्र या व्यक्ति नि श्रीक हो जाता है। ये देवता मानव को शक्ति प्रदान करते थे। इसीलिए इनका पूजन किया जाता था। इसी हेतु पुराणो मे इनकी स्तुति तथा वर्णन किये गये है।

7—तीर्थ

अग्नि पुराण के अध्याय 108 के अन्त मे कहा गया है कि अब मै भारत के तीर्थों का वर्णन करूगा।[1] इस प्रकार अध्याय 109 मे तीर्थ माहात्म्य तीर्थयात्रा के लिए सयम और इन्द्रिय– निग्रह पर विशेष बल दिया गया है। तीर्थयात्रा और तीर्थसेवा से भी भुक्ति (भोग) और मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त होती है। इस हेतु तीर्थों मे स्नान दान और जप आदि का भी महत्व था।[2]

पुष्कर–

यह राजस्थान मे प्रसिद्ध तीर्थ है। यह परमपुण्य तीर्थ तथा सिद्ध क्षेत्र था। यहा कार्तिकी पूर्णिमा के दिन स्नान और जप आदि का विशेष महत्व था।[3] इस विस्तृत वैष्णव क्षेत्र पुष्करारण्य मे सहस्त्रो उपतीर्थ थे। इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण मे अन्य तीर्थों का भी उल्लेख है जिनको नीचे दिया जा रहा है।

जम्बू मार्ग–

यह प्रसिद्ध तीर्थ था। यहा तण्डुलिकाश्रम भी प्रसिद्ध था।[4]

कण्वाश्रम–[5]

यह प्रसिद्ध कण्व ऋषि का आश्रम पौडी गढवाल प्रान्त के कोटद्वार के निकट स्थित माना गया है। इस आश्रम मे ही दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हुआ था और यही शकुन्तला के पुत्र भरत का जन्म भी हुआ था।

तीर्थतालिका[6]–

इस स्थान पर निम्नलिखित तीर्थों का भी उल्लेख हुआ है– कोटितीर्थ नर्मदा अर्बुद चर्मण्वती सिन्धु सोमनाथ प्रभास सरस्वती और समुद्र का सगम सागरतीर्थ पिण्डारक द्वारका गोमती भूमितीर्थ ब्रह्मतुग तीर्थ पचनद भीमतीर्थ गिरीन्द्र देविला विनशन नागोदभेद कुमार कोटि कुरूक्षेत्र धर्मतीर्थ सुवर्ण तीर्थ गगाद्वार कनरवल भद्रकर्ण गगा–सरस्वती सगम ब्रह्मावर्त भृगुतुग कुब्जाम्र गगोद–भेद वाराणसी अविमुक्त

1–भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वाच्मिते – अग्निपुराण 108/33 (2)

2–तीर्थाभिगमने तत्स्याद यद् यज्ञेनाप्यते फलम् – अग्निपुराण 109/1–4

3–अग्निपुराण 109/5–8

4–अग्निपुराण 109/9

5–अग्निपुराण 109/10(1)

6–अग्निपुराण 109/9 से 109/24 तक तीर्थो तथा नदियो का वर्णन किया गया है।

क्षेत्र कपालमोचन तीर्थ तीर्थराज प्रयाग गोमती गगा सगम राजगृह पुण्यतीर्थ शालग्राम वटेरा वामनतीर्थ कालिका सगम लौहित्य करतोया शोण ऋषभ तीर्थ श्री पर्वत कोतलगिरि (कोतवगिरि) सह्यादि मलयगिरि गोदावरी तुगभद्रा कावेरी वरदानदी तापी पयोष्णी रेवा दण्डकारण्य काञ्जर मुञ्जवटतीर्थ सूपरिक परम (तीर्थ) मन्दाकिनी चित्रकूट श्रृगवेरपुर परमतीर्थ अवन्ती पापनाशनी अयोध्या मुक्ति को प्रदान करने वाला परम तीर्थ नैमिष।

इस प्रकार यह तीर्थाध्याय भारत के तीर्थों का वर्णन करने के बाद समाप्त हो जाता है। उपर्युक्त तालिका पर दृष्टिपात करने से हमे यह ज्ञात होता है कि यहा प्राय सभी दिशाओ मे स्थित तीर्थों का वर्णन किया गया है। पश्चिम भारत मे स्थित पुष्कर अर्बुद सोमनाथ प्रभास सरस्वती सागर सगम सूपरिक पिण्डारक द्वारका गोमती के अतिरिक्त सह्यादि (पश्चिमी घाट) तथा अवन्ती के नाम भी प्रसिद्ध हैं। उत्तर भारत मे गिरीन्द्र (हिमालय) मुजवट भृगुतुग शालग्राम कण्वाश्रम कुब्जाम्र कनखल गगाद्वार तथा मध्यदेश मे अयोध्या अविमुक्त–वाराणसी प्रयाग श्रृगवेरपुर गोमती गगा सगम चित्रकूट मदाकिनी कालञ्जर एव कुरू क्षेत्र और ब्रह्मावर्त प्रसिद्ध धार्मिक क्षेत्र थे।

मध्य देश की पश्चिमी सीमा पर विनशन (जहा सरस्वती राजस्थान के प्रवेश द्वार पर लुप्त हो गई) तथा उत्तरापथ मे केवल देविका नदी का उल्लेख है। यहा पजाब के तीर्थों तथा नदियो का उल्लेख नही है। जिस सिन्धु नदी का उल्लेख है वह चर्मण्वती (चम्बल) की सहायक नदी ग्वालियर क्षेत्र की नदी है। पूर्व दिशा मे स्थित लौहित्य करतोया तथा राजगृह का उल्लेख है। गगा सागर सगम[1] पूर्व देश का प्रसिद्ध तीर्थ है।

मध्य देश के दक्षिण (दक्षिणापथ) मे नर्मदा रेवा शोण तापी वरदा पयोष्णी गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी एव दण्डाकारण्य (विध्याटवी) तथा श्री पर्वत और मलय पर्वत का उल्लेख है।

इन प्रसिद्ध तीर्थों के अतिरिक्त भी जो तीर्थों के नाम हैं उस समय वे अप्रसिद्ध न थे पर आज हम उन्हे नही पहचान सकते। ये तीर्थ और क्षेत्र वन पर्वत नदी (तट) आदि धर्म विद्या और कला के महाकेन्द्र थे जो उच्च शिखरो के मदिरो से सुशोभित थे क्रूरकाल के कराल रूप मे वे विलीन हो गये। गगा माहात्म्य मे कहा गया है कि– सेव्यासा भुक्ति मुक्तिदा[2]

अर्थात भोग और मोक्ष के लिए गगा का सेवन (स्नान गगा जलपान)[3] आदि करना चाहिये।

1–अग्निपुराण – 111/12

2–अग्निपुराण – 110/1(1)

3–अग्निपुराण – 110/3(1) गगाम्भ पानमुत्तमम्।

जिन–जिन देशो से होकर गगा जी बहती है वे देश पवित्र और श्रेष्ठ हैं–

येषामध्ये याति गगा ते देशा पावना वरा ।[1]

गगा दर्शन स्पर्शन और गगाजलपान तथा गगा–कीर्तन से पूर्वजो का भी उद्धार हो जाता है।[2]

प्रयाग माहात्म्य–

अध्याय 111 मे तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य वर्णित है। गगा–यमुना का मध्य भाग पृथ्वी देवी की जघा है तथा इन दोनो नदियो के बीच मे स्थित प्रयाग योनि है ऐसा ऋषि लोग कहते है।[3] प्रयाग मे ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण और श्रेष्ठ मुनि जन रहते है।[4]

वहा तीन अग्नि कुण्ड हैं जिनके मध्य गगाजी बहती हैं।[5] इस प्रजापति की वेदी मे प्रतिष्ठानपुर (झूसी) कम्बलाश्वत (दोनाग ऋषि) तथा भोगवती (नागो की राजधानी) तीर्थ है।[6] यहा वेद और यज्ञ मूर्तिमान होकर विद्यमान हैं।[7] प्रयाग सगम मे स्नान दान श्राद्ध जप आदि पुण्य कर्मो का फल अक्षय है।[8] यहा प्रयाग मरण[9] (प्राण त्याग) अति प्रसिद्ध पुण्य कर्म था। अथर्व वेद मे यहा स्नान करने पर स्वर्ग तथा शरीर त्याग करने पर अमर बन जाने का निरूपण किया गया है।

सिताजिते यम ग्रङ्ग् चामरे तमाप्कु तासो दिन मुत्पतन्ति।

येवे लन्व विजृजन्ति् धीरास्तिऽमृतत्व भजन्त।।

चन्देल वशी राजा धग ने भी रूद्र शिव का ध्यान करते हुए यहा पच भूतात्मक शरीर का त्याग कर दिया था।[10]

महाराज हर्ष ने भी यहा दान (मोक्ष) सभा की थी।[11] यहा केवल तीन दिन स्नान करने से कोटि गोदान का फल होता है।[12] यहा असख्य तीर्थ है यथा वटमूल सगम उर्वशी पुलिन सध्यावट कोटि तीर्थ

1–अग्निपुराण – 110/1(2)
2–अग्निपुराण – 110/6
3–अग्निपुराण – 111/4(2)
4–अग्निपुराण – 111/1
5–अग्निपुराण – 111/2(2)
6–अग्निपुराण – 111/5
7–अग्निपुराण – 111/6
8–अग्निपुराण – 111/6(2)–7
9–अग्निपुराण – 111/8
10–धग और जयवर्म देव का खजुराहो लेख पक्ति29
11–हर्ष की दान सभा – मुकर्जी
12–अग्निपुराण – 111/10

अश्वमेध गगा और यमुना[1] माघमास मे प्रयाग स्नान का विशेष महत्व है।[2] इस प्रयाग के महान क्षेत्र अपनी गरिमा से राजा और रक सभी को आकृष्ट करते रहे है।

<u>वाराणसी (काशी) अविमुक्त क्षेत्र</u>–

वाराणसी के माहात्मय का वर्णन अध्याय 112 मे किया गया है। शकर जी ने गौरी से कहा कि वाराणसी अविमुक्त क्षेत्र परम पावन तीर्थ है। यहा स्नान दान जप ध्यान निवास (तप) तथा स्वाध्याय आदि से सासारिक सुख (भोग) और मोक्ष प्राप्त होते है। यहा पर किया गया जप तप हवन एव दान अक्षय थे[3] यहा आठ परम गुह्य क्षेत्र हैं–

1– <u>हरिश्चन्द्र (हरिश्चन्द्र घाट)</u>–

यही श्मशानेश्वर शिव है। इस तीर्थ का सबध महादानी सम्राट हरिश्चन्द्र द्वारा चाण्डाल (धर्मरूप) की सेवा करने से है। सभवत यही हरिश्चन्द्रेश्वर शिव का मदिर था।

2– आम्रातकेश्वर– शिव मदिर (परगुह्यम्)

3– जत्येश्वर

4– श्री पर्वत (गुह्यम्)

5– महालय (पर गुह्यम्)

6– भूमि

7– चण्डेश्वर

8– केदार– केदारेश्वर

ये काशी (अविमुक्त) क्षेत्र के प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र थे जहा अति विशाल और उत्कृष्ट शिव मदिर बने हुए थे। अन्य पुराणो तथा कूर्म और मत्स्य आदि मे भी वाराणसी का माहात्म्य वर्णित है। स्कन्द पुराण के काशी खण्ड मे इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। शकर जी काशी का कभी भी परित्याग नही करते इसीलिए इसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं।[4] अग्नि पुराण के युग मे दुष्ट–दस्यु म्लेच्छो के आक्रमण वाराणसी पर हो रहे थे। अत इन तीर्थों व मदिरो की सूची ही नाम शेष रह गयी है।

<u>नर्मदा–रेवा माहात्म्य</u>–

1–अग्निपुराण – 111/13

2–अग्निपुराण – 111/11

3–अग्निपुराण – 112/2–2

4–गौरि क्षेत्र न मुक्त वै अविमुक्त तत स्मृतम्– अग्निपुराण–112/2(1)

अध्याय 113 मे नर्मदा एव रेवा तथा नर्मदा तट दोनो तटो पर स्थित प्रसिद्ध मदिरो और तीर्थों का उल्लेख किया गया है।

यह अतिविस्तृत धर्म क्षेत्र था जिसमे 60 हजार तीर्थ स्थित थे। जो अमर कण्टक क्षेत्र मे पर्वत के चारो ओर स्थित थे।[1]

अमरकण्टक–

महा प्रसिद्ध शिव क्षेत्र है।

श्रीपर्वत–

नर्मदा तथा कावेदी नदी के सगम पर श्री पर्वत प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र है।[2] यही श्री रूपी गौरी ने तप लिया था जिससे प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उन्हे वरदान दिया कि तुम श्री पर्वत पर आध्यात्म ज्ञान प्राप्त करोगी।[3] इस तीर्थ के चारो ओर पवित्र स्थान स्थित है।[4] यही हिरण्यकशिपु ने भी तप किया था और शिव से वर प्राप्त किया था।[5] यहा योग मृत्यु (प्राण त्याग) का भी महत्व है।[6] नर्मदा तट शिव बिहार भूमि है–

हरोऽत्र कीडतेदेव्या[7]

स्कन्द पुराण मे नर्मदा माहात्म्य अति विस्तार से वर्णित है।[8] नर्मदा तट के पर्वत गुफाओ और घने पुण्यारण्य ही ब्राह्मणो क्षत्रिय राजाओ ऋषियो तथा धर्म के रक्षारण्य थे।

गया माहात्म्य–

अध्याय 114 से अध्याय 116 मे गया और गया क्षेत्र के तीर्थों का विस्तार से वर्णन है। गया पितृ–श्राद्ध के लिए विशेष प्रसिद्ध रहा है। यह वैष्णव क्षेत्र है जहा (गया) गदाधर[9] विष्णु का विशाल मदिर विद्यमान है।

गया मे श्राद्ध और श्राद्ध स्थलो एव धार्मिक क्रियाओ का विशेष वर्णन किया गया है।

1–अग्निपुराण – 113/1–3
2–अग्निपुराण – 113/3(2)
3–अग्निपुराण – 113/4
4–अग्निपुराण – 113/5
5–अग्निपुराण – 113/6
6–अग्निपुराण – 113/6(1) भरण शिवलोकाय सर्व देतीर्थमुत्त्मम्।
7–अग्निपुराण – 113/6(2)
8–स्कन्द पुराण रेवा खण्ड–डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी–स्ट० स्क० पु० भाग 3 व 4
9– अग्निपुराण – 114/9

स्वर्गारोहणसोपान पितृणा तु पदे पदे[1]

पितृ श्राद्ध पुत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण (परम) कर्तव्य है।[2] इसीलिए लोग पुत्र की कामना करते है। पुत नामक नरक से बचाने वाला ही पुत्र है।

विष्णु पद–

श्राद्ध के लिए परम पुण्य स्थान है। यह फल्गु[3] नदी के तट (तीर्थ) पर स्थित है।

धर्मारण्य मे ही[4] महाबोध तरू[5] भी वन्द्य है। यही शुद्धोदन पुत्र गौतम ने बुद्धत्व (तत्व ज्ञान) प्राप्त किया था।

बुद्ध को विष्णु का एक अवतार माना गया है।[6] ये विभिन्न तीर्थ प्रसिद्ध धर्मक्षेत्र विद्या और कला के केन्द्र थे। यही ऋषियो के आश्रम देवालय और यज्ञ स्थल भी थे जहा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यासी भी मोक्ष साधन मे लगे रहते थे।

8–राज्याभिषेक तथा तीर्थ आदि पुण्य क्षेत्र–

राजा के राज्याभिषेक मे नदीतटछयमृदा अर्थात् नदी के दोनो तटो की मिटटी से राजा के पार्श्व भाग का सशोधन (शुद्धीकरण) किया जाता था। इसी प्रकार सरोवर (पुण्य) की मिटटी से पृष्ठ (पीठ) और सगम (नदी–सगम) की मिटटी से उदर को शुद्ध करने का विधान था[7]

अभिषेक मन्त्र–भूलोक एव द्वीप–

अभिषेक मन्त्रो मे भी भूलोक (पावन भूमि) के अङ्ग प्रत्यगो का आवाहन किया गया है–

भूर्ल्लोकोश्थ भुवर्मुख्या जम्बू द्वीपादय श्रिय ।।53

उत्तरा कुरव पान्तु रम्यो हिरण्यकस्तथा ।

भद्राश्व केतुमालश्च वर्षश्चैव बलाहक ।।54

हरि वर्ष किम्पुरूषइन्द्रद्वीप कशेरूमान्

ताम्रवर्णोगभस्तिमान् नागद्वीपश्च सौम्यक ।।55

गन्धर्वो वारूणोयश्चनवम पान्तु राज्यद ।।56(1)

1–अग्निपुराण – 115/3(1)
2–अग्निपुराण – 115/4
3–अग्निपुराण 115/28 44
4–अग्निपुराण 115/34
5–अग्निपुराण 115/37
6–अग्निपुराण 16/2
7–अग्निपुराण 218/15

ऊपर जम्बू द्वीप तथा इसके नव वर्षों (उत्तरकुरू रम्य हिरण्यक भद्राश्व केतुमाल वर्ष बलाहक हरिवर्ष किपुरूष आदि) का वर्णन किया गया है।

वर्ष पर्वत–

हिमवान् हेमकूट (कैलास) निषद्य नील श्वेत और श्रृगवान मेरू माल्यवान् और गन्धमादन वर्ष पर्वत हैं।

कुलपर्वत–

महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान ऋक्षवान विन्ध्य और पारियात्र पर्वत आपको शान्ति दे।[1]

सप्त सागर–

लवण सागर इक्षु सागर सुरा सागर सर्पि दधि दुग्ध और स्वादुजल सागर तथा विविध तीर्थ आपकी रक्षा करे।[2]

अग्नि पुराण मे निम्नलिखित तीर्थों के नाम दिये गये है–

पुष्कर– राजस्थान अजमेर के निकट

प्रयाग– प्रसिद्ध तीर्थ है इलाहाबाद के निकट उ0प्र0

प्रभास– सौराष्ट्र (काठियावाड)

नैमिष–उ0प्र0 मे नीमसार सीतापुर जनपद

गयाशीर्ष– गया की पवित्र पहाडी चोटी

ब्रह्मशिर तीर्थ– सम्भवत गया का ही उपतीर्थ

उत्तर मानस– अज्ञात

कालोदक– अज्ञात

नन्दिकुण्डतीर्थ– अज्ञात

पञ्चनद– काशी मे भी इस नाम का तीर्थ है।

भृगुतीर्थ– अज्ञात

प्रभास– पुनरूक्ति

1–अग्निपुराण– 219/57–58 महेन्द्रोमलयोसह्य शुक्तिमानृक्षवान् गिरि।
विन्ध्यश्चपरियात्रश्च गिरय शान्तिदस्तु ते।।

2–अग्निपुराण –219/62 (2) 63(1)

अमरकण्टक– नर्मदा का स्रोत (म0प्र0)

जम्बू मार्ग– अज्ञात

विमल– अज्ञात

कपिल आश्रम– गगा सागर

गङ्गाद्वार– हरिद्वार

कुशावर्त– अज्ञात

विन्ध्यक – अज्ञात

नील पर्वत– नीलाचल (जगन्नाथपुरी)

वराह पर्वत–बारामूला (काश्मीर)

कनरवल– गगातट हरिद्वार के निकट सहारनपुर जनपद (उ0प्र0)

कालजर– उ0प्र0 के बादा जिले मे चित्रकूट के पास

केदार– हिमवत खण्ड

रूद्रकोटि– अज्ञात

वाराणसी– बनारस

बदर्याश्रम– प्रसिद्ध हिमालय का तीर्थ

द्वारका– सौराष्ट्र–काठियावाड का प्रसिद्ध तीर्थ

श्री गिरितीर्थ(श्री पर्वत)– नर्मदा और कावेरी के सगम पर स्थित

पुरूषोत्तम तीर्थ– जगन्नाथपुरी

शालग्राम– उत्तरी बिहार और नेपाल की तराई मे गडकी के तट पर स्थित

बाराह– अज्ञात

सिन्धु सागर सगम– कराची के पास सिन्धु और सागर सगम पर तीर्थ था।

फल्गु तीर्थ– फल्गु नदी गया तथा पटना के बीच बहती है। यहा श्राद्ध कर्म का महत्व है।

बिन्दुसार– गगोद्भव तीर्थ

करवीर आश्रम– अज्ञात

गगा सरस्वती शतद्रु (सतलज) गण्डकी (नारायणी) अच्छोदा–यह झील या नदी है (कश्मीर) विपाशा

(व्यास) वितस्ता (झेलम) देविका नदी (?) कावेरी (दक्षिण की प्रसिद्ध नदी) वरूणा (बनारस की नदी) निश्चिरा (?) गोमती नदी (नैमिष गोमती) पारा (पार्वती) चर्मण्वती (चम्बल) रूपा (?) मन्दाकिनी (चित्रकूट की पवित्र नदी) तापी (ताप्ती) पयोष्णी (विदर्भ की नदी) वेणा (बीना की नदी) अथवा वेनगगा जो कृष्णा नदी से मिलती है–(कृष्ण वेणा) गौरी पचकोश नदी– काबुल क्षेत्र मे बहती है। वैतरणी– उडीसा की प्रसिद्ध नदी गोदावरी–दक्षिण की प्रसिद्ध नदी भीमरथी (भीमा) तुगभद्रा– दक्षिण मे श्रृगेरी मठ के ऊपर तुग पर्वत से निकलकर भद्रा से मिलकर तुगभद्रा कहलाती है। चन्द्रभागा– चिनाव पजाब की नदी अथवा उडीसा के महेन्द्र पर्वत से निकलकर कोणार्क नदिया आपका अभिषेक करे।[1]

9–पचपन वैष्णव क्षेत्र

अग्निपुराण के अध्याय 305 मे विष्णु के पचपन तीर्थो (महावैष्णवक्षेत्रो) का वर्णन है। वहॉ विष्णु के विभिन्न नामो वाले प्रसिद्ध मन्दिर थे।

	स्थान नाम	विष्णु देवनाम	आधुनिक रूप
1	पुष्कर	पुण्डरीकाक्ष	राजस्थान (अजमेर के पास)
2	गया	गदाधर	बिहार प्रदेश
3	चित्रकूट	राघव(राम)	उ0 प्र0 बादा प्रान्त
4	प्रभास	दैत्यसूदन	सौराष्ट्र समुद्रतट
5	जयन्ती	जय	अज्ञात
6	हस्तिनापुर	जयन्त	उ0 प्र0 मेरठ प्रान्त तहसील मवाना
7	बर्द्धमान	वराह	अज्ञात
8	काश्मीर	चक्रपाणि	आधुनिक काश्मीर
9	कुब्जा	जनार्दन	उ0 प्र0 ह्रषिकेश के निकट
10	मथुरा	केशव	मथुरा उ0 प्र0
11	कुब्जाम्रक	ह्रषिकेश	ह्रषिकेश
12	गङ्गाद्वार	जटाधर	हरिद्वार उ0 प्र0
13	शालिग्राम	महायोग	नेपाल की तराई उत्तरी बिहार
14	गोवधर्नाचल	हरि	उ0 प्र0 मथुरा मण्डल मे गोवर्धन

1–अग्निपुराण – 2/9/62–72

15	पिण्डारक	चतुर्बाहु	द्वारका के पास प्रसिद्ध तीर्थ
16	शखद्वार	शखिनम(शखचारी)	अज्ञात
17	कुरुक्षेत्र	वामन कुरुक्षेत्र	हरियाना प्रदेश
18	यमुना(तट)	त्रिविक्रम	अज्ञात
19	शोणतट	विश्वेश्वर	अज्ञात
20	पूर्वसागर	कपिल	गगासागर
21	महोदधि	विष्णु	गगासागर (सगम)
22	किष्किन्धा	वनमाली	अज्ञात
23	श्वैतक(पर्वत)	देव	सौराष्ट्र(कठियावाड)
24	काशीतट	महायोग	काशी
25	विरजा	रिपुञ्जय	उडीसा
26	विशाखयूप	अजित	अज्ञात
27	नैपाल	लोकभावन	नैपाल
	विष्णुदेवनाम	स्थान नाम	आधुनिकरूप
28	कष्ण	द्वारका	सौराष्ट्र कठियावाड का प्रसिद्ध तीर्थ
29	मधुसूदन	मन्दर	अज्ञात
30	रिपुहर	कोकालुल	अज्ञात
31	शालग्राम	हरि	उत्तरी बिहार(नेपाल तराई)
32	पुरुष	पुरुषवट	अज्ञात
33	जगतप्रभु(जगन्नाथ)	विमल	अज्ञात
34	अनन्त	सैन्ध्यवारण्य	सिन्धुघाटी
35	शाडर्गधारी	दण्डकारण्य	विन्ध्यावन
36	सौरि	उत्पलावर्त	सिन्धुघाटी
37	श्रपति(श्रिय पत्ति)	नर्मदा (तटपरश्रीपर्वत)	अज्ञात
38	दामोदर	रैवतक	सौराष्ट्र का वन
39	जलशायी	नन्दा(तट)गढवाल	अज्ञात

40	गोपीश्वर	सिन्ध्वब्धि	अज्ञात
41	अच्युत	महेन्द्र पर्वत	पूर्वीघाट
42	देवदेवेश	सह्याद्रि	पश्चिमीघाट
43	मागधवन	बैकुण्ठ	मगधारण्य(बिहार)
44	सर्वपापहर	विन्ध्यअज्ञात	
45	पुरुषोत्तम	औड्र पुरुषोत्तमपुरी उडीसा जगन्नाथपुरी	
46	आत्मा	हृदय अज्ञात	
47	वैश्रवण	वटे–वटे	अज्ञात
48	शिव	चत्वरे–चत्वरे	अज्ञात
49	राम	पर्वते–पर्वते	अज्ञात
50	मधुसूदन	सर्वत्र अज्ञात	
51	नर	भूमि अज्ञात	
52	वशिष्ठ	–	अज्ञात
53	गरूडध्वज	वशिष्ठ(आश्रम)अज्ञात	
54	वासुदेव	सर्वत्र अज्ञात	
55	अज्ञात	अज्ञात	

दृष्टव्य है कि यह भूमि (भारत मे) नर विष्णु का ही रूप है यही शिक्षा देने के लिए राघव राम ने नर देव का अवतार लिया था। इन सभी क्षेत्रो मे विष्णु के विशाल मन्दिर थे जहा धार्मिक क्रियाये तथा पुराणो का पाठ तथा श्रवण होता था।

वैष्णव क्षेत्रो का वर्णन

1 पुष्कर एव पुण्डरीकाक्ष(विष्णु)

यह अति महत्वपूर्ण वैष्णव क्षेत्र था जहा वैष्णव साधु रहते थे। यह पुण्यारण्य प्रसिद्ध और प्रमुख तपोवन था जिसे पुष्करारण्य[1] भी कहते थे। यहा विष्णु का प्रसिद्ध मन्दिर था तथा मन्दिर मे पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) देव की पूजा होती थी।

दुष्कर पुष्करं गन्तु दुष्कर पुष्करे तप ।

1–पदमपुराण – 1/1/4

दुष्कर पुष्करे दान वसितु चैव सुदुष्करम्।।

त्रीणि श्रृगाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रसवणानि च।

पुष्कराण्यादि सिद्दानि न विघ्नस्तत्रकारणम्।।[1]

पुष्कर मे जाना कठिन है। पुण्यजन ही पुण्य प्रभाव से वहा जा पाते है। पुष्कर मे तप करना भी कठिन है। पद्मपुराण मे तुरुष्को का उल्लेख है। और पथ्वीराज–विजय से ज्ञात होता है कि पथ्वीराज चौहान के न होने पर म्लेच्छो ने इसे नष्ट–भ्रष्ट कर दिया।[2]

पुष्कर मे कार्तिकी–स्नान का विशेष महत्व है। यह राजस्थान मे अजमेर से सात मील दूर स्थित है। इस तपोवन मे ब्रह्मा और शिव (अजोगन्ध) के भी प्रसिद्ध मन्दिर थे।

2 गया गदाधर

गया ब्राम्हणो और बौद्धो का महान तीर्थ है जिसका मीलो विस्तार है। यहा वन और पहाडिया तथा फल्गुनदी विशेष प्रसिद्ध है।

यहा विष्णु–पद मन्दिर विशेषत दर्शनीय है। फल्गुनदी के तट पर ही गदाधर मन्दिर है। गदाधर विष्णु की यहा चतुर्भुज मूर्ति है।

3 चित्रकूट–राघव(राम)

इस वैष्णव क्षेत्र के प्रमुख देवता राघव (श्रीरामचन्द्र) है। वनवास के लिए यात्रा करते हुए श्री राम लक्ष्मण और सीता जी ने यहा वास किया था। भरत ने भी यहा श्री राम के दर्शन किये थे। यह अत्यन्त प्राचीन तपोवन है जो उत्तर प्रदेश के चित्रकूट धाम जनपद मे स्थित है।

यहा के वन मे अनेक तपस्वी रहते थे। आज भी वहा अनेक आश्रम है जिनमे सन्त लोग रहते है। यही पवित्र मन्दाकिनी नदी बहती है। इसके अतिरिक्त यहा पयस्विनी भी पवित्र नदी है।

यहा वाल्मीकि मुनि का भी प्रसिद्ध आश्रम था। चित्रकूट गिरि और मन्दाकिनी की महिमा का वर्णन कवि भवभूति ने उत्तर राम चरित मे भी किया गया है।[3]

4 प्रभास–दैत्यसूदन

पश्चिमी भारत के समुद्र तट पर स्थित प्रभास पत्तन अति महत्वपूर्ण पवित्र स्थान था। यह महातीर्थ[4] था।

1–पदमपुराण – 1/11/34–35

2–पृथ्वी राज विजय –स ओझा – पृ० 31

3–उत्तर राम चरितम (चौखम्भा) अक 6 के बाद – चित्रकूट वर्त्मनि मन्दाकिनी विहारे

4–(क) वराह पुराण –215/54 217/13

(ख) स्कन्दपुराण 7/1 – प्रभासखण्ड मे इस महाक्षेत्र के विविध उपक्षेत्रो का वर्णन किया गया है। डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी – स्ट० स्क० पु० भाग–3 खण्ड 2 –(111–11) प्र0 1–10 इत्यादि

यही सोमनाथ का ज्योतिर्लिङ्ग है। यही भगवान श्रीकष्ण ने अपने शरीर का त्याग (देहोत्सर्ग) किया था। यह शैव और वैष्णवो दोनो का ही परम पवित्र स्थान है। स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड मे इसका विस्तार से वर्णन है।

5 जयन्ती–जय

इसकी ठीक–ठीक पहचान नही हो सकती है। पश्चिमी समुद्र तट पर विजन्टान (पेरिप्लस के लेखक तथा टालमी के अनुसार) अर्थात वैजयन्ती ही जयन्ती थी। यही जय नामक विष्णु का मन्दिर था।

6 हस्तिनापुर

यह कुरू राज्य की राजधानी और प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र भी था। इस समय यह उत्तर प्रदेश मे मेरठ प्रान्त के मवाना तहसील मे स्थित है। यहा पर पुरातात्विक खुदाइयो से भी इसकी प्राचीनता सिद्ध हो चुकी है। महाराज परीक्षित ने राज्य त्यागकर हस्तिनापुर के पास ही गगा तट पर महामुनि शुकदेव जी से भागवतपुराण सुनते हुए वासुदेव सर्वम् तथा अह ब्रह्मास्मि का ध्यान योग करते हुए पच भूतात्मक देह का त्याग किया था। यह स्थान इस समय हस्तिनापुर से कुछ दूर बिजनौर तथा फुजफ्फर नगर के बीच मार्ग पर स्थित गगातट वर्ती शुकताल ही है।

7 वर्द्धमान

सम्भवत यह उत्तरी बगाल मे प्राचीन पुण्डवर्धन मुक्ति मे स्थित था। इसकी ठीक से पहचान नही हो सकी है। यहा बराह मूर्ति से सुशोभित विष्णु मन्दिर था।

8 काश्मीर

प्राचीन प्रसिद्ध और पवित्र देश है जो हिमालय की कुक्षि मे स्थित है। यहा चक्रपाणि विष्णु का मन्दिर था।

9 कुब्जाम्र

यह वैष्णव क्षेत्र ह्रषिकेश (ऋषीकेश) के निकट ही स्थित था।

10 मथुरा

मध्यप्रदेश का अति प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र तथा भगवान कष्ण की जन्मभूमि है। वराह पुराण मे मथुरा का विशेष माहात्म्य वर्णित है।

11 कुब्जाम्रक

यह ऋषिकेश (उ0 प्र0) ही है।

12 गङ्गाद्वार

यह उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हरिद्वार ही है जो गगा तट पर स्थित है।

13 शालग्राम

यह उत्तरी बिहार तथा नेपाल की तलहटी मे नारायणी–गडकी नदी के तट पर स्थित अत्यन्त प्राचीन वैष्णव क्षेत्र है। यहा पुलस्त्य आश्रम था। महाराज ऋषभ तथा उनके योगी पुत्र भरत ने भी राज्यत्याग कर यहा तपस्या की थी।

14 गोवर्धनाचल

यह मथुरा क्षेत्र का गोवर्धन पर्वत ही है। जिसे भगवान विष्णु (कष्ण) ने अपनी उगली पर उठाकर धारण किया था। यहा की कष्ण मूर्ति का नाम गोविन्द था। ध्रुव ने यही तपस्या कर हरिदर्शन किया था।

27 नैपाल

यहा लोक भावन (लोकनाथ) विष्णु का मन्दिर और वैष्णव धर्म का महान केद्र था।

28 द्वारका

सौराष्ट्र काठियावाड का प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र है जो आज भी अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध है। यह एक मोक्षपुरी है।

35 दण्डकारण्य

यहा शाडर्गधारी विष्णु (श्रीदाशरथि) राम का प्रसिद्ध मन्दिर था। दण्डकारण्य विशाल वन्य क्षेत्र है। जिसका एक भाग गोदावरी वन भी था। सम्भवत यह राम (शाडर्गधारी) विष्णु का मन्दिर मध्यप्रदेश के रामपुर प्रान्त मे प्रसिद्ध राजीव–लोचन मन्दिर था। इस समय रजीम कहलाता है।

इन वैष्णव क्षेत्रो मे वैष्णव सन्त और ऋषि मुनियो के आश्रम थे जो विद्यध्ययन–अध्यापन के भी केन्द्र थे। यह पुण्यारण्य ही सस्कृति और साहित्य विद्या धर्म तथा कला के केन्द्र थे।

40 सिन्ध्वाब्धि (सिन्धुसागर–सिन्धुसागरसगम)

सिन्धु नदी और अरब सागर (पश्चिमी सागर) का सगम भी उतना ही पवित्र और महत्वपूर्ण था जितना कि गगा सागर सगम। यहा गोपीश्वर विष्णु का मन्दिर था। सम्भवत वह अरबो द्वारा सिन्ध विजय मे ही नष्ट कर दिया गया।

45 औड्र (पुरुषोत्तमायतन)

यह औड्र (या उडीसा) जगन्नाथ मन्दिर है जो जगन्नाथ पुरी मे विशाल स्वरूप मे इस समय भी विद्यमान है।

इन वैष्णव क्षेत्रो की स्थिति से वैष्णव धर्म एव सस्कृति के महान केन्द्रो का ज्ञान होता है। पूर्व मध्यकाल तथा मध्यकाल मे ये ही रक्षागार भक्ति आन्दोलन (वैष्णव क्राति) के अधिष्ठान थे।

ईसा की आठवी शताब्दी से लगभग 17वी और 18वी शताब्दी तक सस्कृत भक्ति काव्य यथा महावीर चरित उत्तर राम चरित कथा सरित्सागर वृहत्कथामजरी बाल रामायण नैषधीय चरित आदि ग्रन्थो के कवियो की वाणी तथा सन्तो के निर्भीक वचनो ने राष्ट्र चेतना को अग्रसारित कर हिन्दू और हिन्दुत्व की रक्षा की। यहा वैष्णव क्षेत्रो के अतिरिक्त शिव क्षेत्रो का भी उल्लेख है–

चत्वरे चत्वरे शिवम्।

अर्थात प्रत्येक चबूतरे पर (पाषाण या लिङ्ग) शिवस्थल है।

लिङ्ग क्षेत्र

प्रारम्भ मे विष्णु के दशावतारो का वर्णन करते हुए शिवलीला (रहस्य) का वर्णन है।

भगवान विष्णु के मोहिनी रूप से मोहित होकर शिवजी गौरी (पर्वती) को छोडकर मोहिनी के पीछे दौडे। स्थान–स्थान पर स्खलित वीर्य ही स्वर्णलिङ्ग बन गये।[1] ये ही यहा वहा (विभिन्न स्थानो पर) लिङ्ग क्षेत्र बन गये जहा लिङ्ग स्वर्ण का बना था।[2]

भवभूति ने मालती माधव मे पद्मावती नगरी के पास पारा और सिन्धु नदियो के सगम स्थान पर सुवर्ण बिन्दु नामक शिव क्षेत्र का उल्लेख किया है।[3]

स्कन्द पुराण मे भी स्वर्ण बिन्दु का उल्लेख प्राप्त होता है।[4]

<u>10–अग्नि पुराण के भूगोल का सस्कृति पर प्रभाव</u>

समाज तथा जीवन और सस्थानो पर पृथ्वी जल वायु एव वातावरण का विशेष प्रभाव पडता है। सामाजिक जीवन मे भारतीय मनुष्य का तीन चौथाई भाग वनो मे ही व्यतीत होता था।

ब्रह्मचर्याश्रम के गुरूकुल वन्य क्षेत्रो तथा नदी तटो पर ही होते थे और यहा विद्यार्थी 25 वर्ष तक रहकर वेदादि विद्याओ का अध्ययन करते थे। इसके साथ ही वनस्थ परिव्राजक और यति सन्यासी भी अपना जीवन जगलो मे ही व्यतीत करते थे। इन वनो से ही औषधिया भी प्राप्त होती थी।

मानव जीवन मे गौ आदि पशुओ का भी विशेष महत्व था। इन वनो मे ही गोकुल गोष्ठ भी थे।

1–अग्निनुराण – 3/18–20
2–अग्निनुराण – 3/20
3–मालती माधव – अक 9 पृ0 177–178
4–स्कन्द पुराण 5/3/207/1

लाखो गाये निर्भय होकर चरती थी। और वनचर गोपाल उनकी रक्षा करते थे। उनके दूध दही और घृत से ब्राह्मण आचार्यों तथा उत्साह का विकास होता था। साथ ही विद्यार्थियो के शारीरिक बौद्विक और आत्मिक शक्ति तथा उत्साह का विकास होता था। आर्य भारतीय जीवन की सरलता के पीछे विचारो की उच्चता विद्याकाश को छूती थी।

नदियो की घाटियो मे नदी तटो पर ग्रामो नगरो और पत्तनो का विकास हुआ जिससे वैश्यवृत्ति(वाणिज्य) का विकास हुआ। नदियो द्वारा गमानागमन भी होता था।

भारत के बेला– कूल पर अनेक प्रसिद्ध पत्तन (बन्दरगाह) स्थित थे जिनसे देशी और विदेशी व्यापार होता था। इस वाणिज्य से धन की समृद्वि होती था। धन से धर्म और समाज का पोषण होता था। वनो के आश्रमो तथा धर्म क्षेत्रो और तीर्थों मे देवकुल का निर्माण किया था जो विद्या और कला के केन्द्र उत्तर मे बदरी – केदार से लेकर दक्षिण मे रामेश्वरम तक तथा पश्चिम मे प्रभास और द्वारका से पूर्व कोणार्क तथा भुवनेश्वर तक फैला हुए थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय तीर्थों का राष्ट्र और समाज तथा धार्मिक एव सास्कृतिक जीवन मे कितना महत्व था। यहा तीर्थो वनो पर्वतो तथा नदी तटो और नदी सगम पर ऋषियो के आश्रम तथा तपस्थल थे। यही गुरू और शिष्य का अध्ययन अध्यापन तथा स्वाध्याय सदियो तक होता रहा। अग्नि पुराण के युगो मे युगान्त–वात (आधी) ने मन्दिरो को ध्वस्त कर दिया। ब्रह्मण जो बच सके निर्जन घने जगलो गुफाओ आदि मे रहने लगे। परन्तु वे न तो मृत्यु से डरते थे और न किसी दैत्य आतक से। उन्हे तो भय यही था–

माधर्मो सक्षय यातु

चतुर्थ अध्याय

अग्निपुराण में वर्णित समाज

अग्निपुराण मे वर्णित समाज

1—पुरूषार्थ—

धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष को ही पुरूषार्थ कहते है। इनकी सख्या चार होने के कारण इसे चतुवर्ग या पुरूषार्थचतुष्टय की सज्ञा दी जाती है। ये परम महत्वपूर्ण है। भारत कर्मभूमि है अन्य भूभाग भोग भूमि है।[1] पुरूषार्थ का अर्थ भी कर्म है जिसका कोई निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य है। भारतीय सस्कृति और समाज कर्म पर ही आधारित था। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट गुणकर्मविभागश[2]

कर्मों मे गुणो (सात्विक राजसिक और तामसिक) तथा स्वभाव और काल (युगव्यवस्था) का प्रभाव पडता है। कर्म का विशेषार्थ यज्ञ है और जम्बूद्वीप (भारत) मे यज्ञ द्वारा ही यज्ञ पुरूष (यज्ञमय विष्णु) की सदा पूजा की जाती है। तप होम दान और यज्ञ आदि कर्म ही है।[3] सहस्त्रो जन्मो के बाद यहा (भारत मे) पुण्य प्रभाव से ही मनुष्य का जन्म होता है और जिस मनुष्य ने भारत मे जन्म लेकर सुकर्मों को न किया उसका मनुष्य होना ही व्यर्थ रहा। इसीलिए कहा गया है कि—

इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता।[4]

सम्यक कर्म के द्वारा ही मनुष्य परमसिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त करता है और विकर्म के द्वारा नरक को जाता है।[5]

सुधी मनुष्य मोक्ष क्षेत्र मे मोक्ष प्राप्त करता है। धर्म अर्थ और काम मोक्ष प्राप्ति के सोपान अथवा मार्ग हैं। विषयी (कुधी) विषयो का ध्यान करता हुआ नष्ट हो जाता है। परन्तु सुधी (शुद्ध बुद्धि वाला) धर्म मार्ग से चलता हुआ धर्म के लिए ही अर्थ का उपयोग करता हुआ मोक्ष कामी होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

यह ससार विचित्र है। प्रभु की माया ही मनुष्य को मोह से जकड देती है और वह जीवन भर मोह (काम और अर्थ) मे फसा हुआ, कर्म बधन मे जकडता ही जाता है। परन्तु जो ईश्वर की शरण लेकर गृहस्थाश्रम मे ही कृष्णानुचिन्तन करता हुआ जरा जन्म व्याधि तथा मृत्यु से बचना चाहता है वह इन चार पुरूषार्थों (धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष) द्वारा (शनै शनै लघयते गिरिम्) मोक्ष के शिखर पर पहुच कर शिव

1—ब्रह्म पुराण—19/23
2—भगवद्गीता—4/13
3—ब्रह्म पुराण—19/21—23
4—ब्रह्म पुराण—23/11—(2)
5—ब्रह्म पुराण—26/24

स्वरूप हो जाता है।

अन्य पुराणो की भाति अग्नि महापुराण भी मानव जीवन मे पुरूषार्थों का महत्व प्रतिपादित करता हुआ भुक्ति (भोग) और मुक्ति (मोक्ष एव त्याग) की प्रेरणा देता है।

अग्निपुराण विद्यासार शास्त्र (पुराण) है। परा और अपरा विधाओ मे परा विद्या ही मोक्ष साधिका है। अपरा विद्याओ मे वेद वेदाग न्याय मीमासा और धर्म शास्त्र तथा पुराण धर्म सहित अर्थ और काम के सेवन को श्रेयस्कर बताते है। विद्या ही ससार सागर को पार करने की नाव है और भारत मे वाल्मीकि व्यास आदि एव कालिदास बाण भवभूति आदि ने अपार काव्य सागर की रचना की है जिसमे अवगाहन कर हम ससार सागर से पार जा सकते है।[1] काव्य भी चतुर्वर्गफल[2] कहा गया है। नाटको को त्रिवर्ग फल[3] कहा गया है। इस प्रकार सत्य है कि–

अपरा च विद्या ता ज्ञात्वा मुच्यते भवात[4]

यही भारत भूमि कर्मभूमि (सुकर्म करने योग्य भूमि) है यही फल भूमि भी है–

कर्म भूमिरिय ब्रह्मन फलभूमिरसौ स्मृता।[5]

गर्भान्तर्गत जीव दु खी होकर पश्चात्ताप करता हुआ सोचता है–

गर्भाद् विनिर्गतो ब्रह्मन मोक्षज्ञान करिष्यति।[6]

हे ब्राह्मन गर्भ से निकल कर मैं मोक्ष के सबध मे ज्ञान प्राप्त करूगा।

धर्म साधना की इच्छा से ही मोक्ष कामना और केशव (क्लेशनाशक वासुदेव) की भक्ति उत्पन्न होती है।[7] यही पुरूषार्थ मार्ग है। वर्णाश्रम धर्म भी पुरूषार्थ सिद्धि एव परमार्थ लाभ कर सरल मार्ग है। गृहस्थ मनुष्य धर्म पूर्वक चलता हुआ इस मार्ग से कल्याण (श्रेय) प्राप्त कर सकता है। गृहस्थ धर्म द्वारा चारो पुरूषार्थों मे समन्वय होता है।

1–अग्निपुराण–337/23
2क–अग्निपुराण–337/34 (1) चतुवर्गफल विश्वश्व्याख्यातम
2ख–चतुवर्गफलप्राप्ति सुखादल्पधियामपि।
3–अग्निपुराण–338/7–त्रिवर्गसाधननाद्यम्
4–अग्निपुराण–347/40 (2)
5–अग्निपुराण–369/6 (1)
6–अग्निपुराण–369/26
7–अग्निपुराण–369/356 (1)–धर्मेप्सा मोक्षकामित्वं पराभक्तिश्च केशवे।
काव्यादेव साहित्यदर्पण 1–2

त्रिवर्ग–

धर्म अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहा गया है।[1] इनका विशेष सबध प्रवृत्ति मार्ग या गृहस्थ धर्म से है। गृहस्थ के लिए धर्मकामार्थ सिद्धि [2] परमावश्यक है। इसी को धर्मयुक्त भुक्ति या भोग तथा अभ्युदय भी कहते हैं। मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। विष्णुपुराण मे कहा गया है कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष की इच्छा वालो को सदा भगवान्/पुरूषोत्तम की आराधना करनी चाहिये।[3] पुरूषार्थ का प्रयोजन मोक्ष रूप परम पुरूषार्थ ही है।[4]

गरूण पुराण मे भी कहा गया है कि सन्ध्या तर्पण होम और ईश्वर वन्दना से धर्म अर्थ काम और मोक्ष देने वाले भगवान विष्णु को प्राप्त किया जा सकता है।[5]

धर्म–

जो हमे समाज और जगत को धारण कर सके वही धर्म है। ब्रह्मोक्त धर्मों का पालन मुनियो ने भक्तिपूर्वक किया था–

मुनिभिश्चरिता धर्मा भक्त्या व्यास मयोदिता।

जिनसे विष्णु भगवान प्रसन्न होते है। सुख आदि तो धर्म के ही परिचायक है।[6] ब्रह्मा ने धर्म के रूप मे वृष का निर्माण किया था।[7] मनु आदि धर्मशास्त्रकारो ने भुक्ति और मुक्ति प्राप्त कराने वाले धर्मों का वर्णन किया है।[8] ये वर्णाश्रम से भिन्न धर्म है जिनसे विष्णु प्रसन्न होते हैं।[9]
अहिसा सत्य बोलना दया प्राणियो पर अनुग्रह तीर्थानुसरण दान ब्रहमचर्य मत्सरहीनता देव–द्विज–गुरू–सुश्रूषा सभी धर्मों का श्रवण पितृपूजन राजभक्ति सच्छास्त्र का पथ प्रदर्शन अनुकम्पा तितिक्षा आस्तिक्य (ईश्वर तथा वेद पर विश्वास) सभी वर्णों के सामान्य धर्म थे।[10]

अर्थ–

अग्निपुराण मे वर्णित अर्थ विद्या भी एक विधा थी जिसका मूल विषय अर्थ ही था। जिस वस्तु से कार्य की उपयोगिता सिद्ध हो उसी को अर्थ कहते हैं। अर्थ के अन्तर्गत ही वार्ता विद्या (कृषि पशुपालन

1– अग्निपुराण–369/36 (1)
2– अग्निपुराण–35/11 (1)
3– विष्णुपुराण–1/14/16 धर्ममर्थं च काम च मोक्ष चान्विच्छता सदा आराधनीयो भगवाननादिपुरूषोत्तम।।
4– विष्णुपुराण–3/3/25
5–गरूण पुराण–3/3/25 1/215/2
6–गरूण पुराण–1/215/1
7–गरूण पुराण–2/4/24 (1)
8–अग्नि पुराण–151/1 (1)
9–अग्नि पुराण–151/2 वर्णाश्रमेतराणा धर्मान् वायुदेवादितुष्टिदान्।।
10–अग्निपुराण–151/3–6(1)

वाणिज्य) थी। तथा बाद मे कुसीद (महाजनी) भी सम्मिलित हो गया।

न्यायपूर्वक स्वधर्मानुकूल जीविका साधन से धन कमाना और धन रक्षा करना तथा वृद्धि करना भी आवश्यक था। बढे हुए धन को सुपात्र को दान देना ही श्रेयस्कर था।

<u>काम</u>–

काम का अर्थ है इच्छा। बिना इच्छा हुए मनुष्य कोई कर्म नही करेगा। वह अजगर की तरह पडा रहेगा। इच्छा से ही धनार्जन और धन से भोग करना भी आवश्यक था परन्तु यह भोग धर्मानुकूल ही हो।

<u>मोक्ष</u>–

जन्म मृत्यु जरा व्याधि के दु खो का चिन्तन करते हुए (मृत्यवे नम) मृत्यु का भी स्मरण रहे। मरना भी बहुत दु ख है जिससे बचने की कोई औषधि ही नहीं है। अत मृत्यु के पजो की कठोरता को अन्ते नारायणस्मृति से ही सरल बनाया जा सकता है। इन चारो पुरूषार्थों पर ऋषियो ने शास्त्रो का निर्माण किया था। वेद इतिहास पुराण स्तोत्र आदि मोक्ष साधन ही हैं।

<u>2–वर्णव्यवस्था और वर्णधर्म</u>–

वर्ण धर्मादिकथन–(वर्ण धर्म वर्णन)

वेदस्मार्त धर्म को पाच विभागे मे विभक्त किया गया है–वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पचधा स्मृतम।[1] वेदस्मार्त धर्म ही श्रौत स्मार्त धर्म भी कहलाता है। तीनो वर्णों के उपनयनादि धर्मों को वर्णधर्म कहते है। किसी एक वर्ण को जो अधिकार प्रदान किया गया है वह वर्ण धर्म है।[2]

1–वर्णत्व या वर्ण धर्म–इसमे प्रत्येक वर्ण के धर्मों का वर्णन किया गया है।

2–आश्रम धर्म– उपनयनादि तीन वर्णों (ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्य) के आश्रमो (ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास) से सबधित धर्मों को आश्रम धर्म कहा जाता है।[3] शूद्र का उपनयन नही होता। अत उसका सबध आश्रम धर्म से नही है।

3–नैमित्तिक धर्म– किसी निमित्त किये गये कर्म की नैमित्तिक धर्म कहा जाता है यथा प्रायश्चित्तादि धर्म।

4–नित्यधर्म– स्नान सन्ध्या तर्पण आदि।

1–अग्निपुराण– 166/1 (1)

2–वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकार प्रर्वतते। वर्णधर्म स विज्ञेय अग्निपुराण–166/1–(2)

3–यत्स्वाश्रम समाश्रित्य पदार्थ सविधीयते उक्त आश्रम धर्म अग्निपुराण–366/2–(2)–3(1)

5–षाडगुण्य– इसका सबध राजा से है इसे दृष्टार्थ भी कहा गया है। यह तीन प्रकार का है–मन्त्र यज्ञ प्रभृति अदृष्टार्थ है जैसा कि मनु ने कहा है। दोनो का व्यवहार (उभयार्थक व्यवहार) दण्ड धारण तथा तुल्यार्थ विकल्प भी यज्ञ मूलक धर्म के अग कहे गये है।[1]

इसी प्रकार वेद विहित धर्म है और स्मृतियो मे भी उसी प्रकार कहा गया है। कार्य के लिए स्मृति वेदोक्त धर्म का अनुवाद करती है ऐसा मनु आदि धर्मशास्त्रकारो का मानना है। इसी धर्म के अन्तर्गत सस्कार और पाच यज्ञ भी आते है।[2]

क–<u>वर्णव्यवस्था और वर्णधर्म मर्यादा</u>

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत चार वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय (राजन्य) वैश्य और शूद्र तथा उनके धर्म (कर्मों) एव जीविका के साधनो का वर्णन है। यह दैवी विधान था जिसे चातुर्वर्ण्य मर्यादा कहा गया है। यही सद्धर्म मार्ग था।[3] जिसे वर्णश्रम व्यवस्था कहते है। दुष्ट म्लेच्छ दस्युओ के आतक और उत्पात से इस युग मे इस धर्म व्यवस्था को विशेष आघात पहुचा था। कृतयुग (सतयुग) मे सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे।[4]

ख–<u>चातुर्वर्णा</u>

कलियुग मे चारो वर्ण प्रपीडित थे।[5] ब्राहमणो और क्षत्रियो (ब्रह्म–क्षत्र) पर ही क्रमश धर्म और प्रजा की रक्षा का भार था। ब्राहमण (विप्र) का परम धर्म वेदरक्षा (वेदधर्म) तथा क्षत्रिय (पृथ्वीपति) का धर्म साध्वी वसुन्धरा की रक्षा करना था परन्तु क्षत्रिय राजा युद्ध से पलायन कर पृथ्वी को अरक्षित छोड देते थे। ऐसे ही क्षत्रिया को सुद्र क्षत्रिय कहा गया है। म्लेच्छो द्वारा सिन्ध विजय के बाद आठवी शताब्दी मे पुराणो मे समाज और धर्म के पुनर्गठन का यहा वर्णन किया गया। अब ब्राह्मणो के लिए मध्य देश ही सुरक्षित राज्य था। इनके साथ यहा पर किरात यवन तथा श्रुतियो और स्मृतियो के पारगत ब्राहमण निवास करते थे।[6] यहा पर पारियात्र से निकलने वाली नदिया प्रवाहित होती है।[7] और मध्य देश के ही ब्राहमण श्रेष्ठ माने गये थे।[8] इन्ही ब्राह्मणो पर पुराण आदि शास्त्रो के सरक्षण का भार था और यह सुरक्षित धर्म क्षेत्र था नैमिषारण्य।

1– अग्निपुराण–166/6–7

2–अग्निपुराण–166/7–12

3–अग्निपुराण–16/9 स्थापयिष्यति मर्यादा चातुर्वर्ण्ये यथोचिताम्।
आश्रमेषु च सर्वेषु प्रजा सद्धर्म वर्त्मनि।।

4–अग्निपुराण–16/11

5–अग्निपुराण–130/6 (2) चतुर्विधा प्रपीडयन्ते क्षुधान्तो अखिला नरा।

6–अग्निपुराण–118/6 (1)

7–अग्निपुराण–118/6 (3)

8–अग्निपुराण–118/8

प्रतिष्ठा आदि क्रियाओ मे मध्य देश के ब्राह्मण आचार्य को नियुक्त करना चाहिये न कि कच्छ देश कावेरी तटीय देश (कावेर) कोकण कामरूप कलिङ्ग और काश्मीर तथा कान्ची के ब्राहमण को आचार्य नियुक्त करना चाहिये।[1] इन देशो मे तथा कच्छ और काश्मीर मे म्लेच्छ तुरूष्को तथा अन्य देशो मे पाखण्ड मार्ग (बौद्ध एव जैन धर्म) का प्रभाव विशेष रूप से पड चुका था। कुरूक्षेत्र (ब्रह्मावर्त मे स्थित) के ब्राहमण को पडक्तिपावन अर्थात अभिजात कहा गया है।[2]

3–वर्णोत्पत्ति–चतुर्वर्ण एव उनके कर्म–

विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने यज्ञ कर्मानुष्ठान हेतु यज्ञ के साधन रूप मे चार वर्णों की रचना की।[3]

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त मे ब्राहमण को पुरूष का मुख राजन्य को उसकी भुजाये तथा वैश्य को उसकी जघा कहा गया है इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि पुरूष को पैरो से शूद्र की उत्पत्ति हुई है।[4]

परन्तु विष्णु पुराण तथा अन्य पुराणो मे कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख वक्षस्थल जघा और पाद (चरण) से क्रमश ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारो वर्ण उत्पन्न हुए।[5]

द्विजाति–

प्रथम तीन वर्णों ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्यो को द्विजाति कहा जाता था क्योकि उपनयन सस्कार से इन वर्णों का नवजन्म (सस्कार शुद्धि) होता था।[6] शूद्रो का उपनयन नहीं होता था। अग्निपुराण मे वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख नही किया गया है यहा उनके कर्मो का वर्णन किया गया है–

वर्णाश्रमेतराणा ते धर्मान्वक्षयामि सर्वदान्।
मन्वादिभिर्निगदितान्वासुदेवादितुष्टिदान्।।[7]

मै तुमसे वर्णाश्रम तथा इतर (वर्णेत्तर) जातियो के उन धर्मों की कहूगा जिनका वर्णन मनु आदि धर्म शास्त्रकारो ने किया है। इन धर्मों (स्वधर्मो–अपने अपने धर्मों के) पालन से वासुदेव आदि देव (पितृगण

1–अग्निपुराण–380/6–7 (1)

2–अग्निपुराण–117/51

3–विष्णु पुराण–1/6/7 यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकारवै।
चातुर्वर्ण्य महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम्।।

4–ऋग्वेद–10/90/12 ब्राहमणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्य कृत।
उरू तदस्य यद् वैश्य पदभ्या शूद्रोऽजायत्।।

5–विष्णु पुराण–1/6/6 ब्राहमणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च द्विज सत्तम।
पादोरूवक्ष स्थलतो मुखतश्च समुद्गता।।

6–अग्निपुराण–161/10 (1)

7–अग्निपुराण–151/2

आदि) भी प्रसन्न हो जाते है और सभी (मनवाछित) फल देने वाले है।

सबसे पहले सभी वर्णो के सामान्य धर्म अहिसा सत्य वचन दया प्राणिमात्र पर अनुग्रह तीर्थानुसरण दान ब्रह्मचर्य अमत्सर देव द्विजाति और गुरू की शुश्रूषा सभी धर्मों का श्रवण पितरो का पूजन नित्य नृपति भक्ति सच्छास्त्रो का आदर करना (चिन्तन) अनृशस्य तितिक्षा तथा आस्तिकता कहे गये हैं।[1]

<u>क—विप्र कर्म—</u>

1 यजन (यज्ञ करना)

2 याजन (यज्ञ कराना)

3 दान देना

4 वेद आदि का अध्यापन कर्म

5 प्रतिग्रह (दान लेना)

6 अध्ययन (वेदाध्ययन और स्वाध्याय)

ये ही विप्र के षट कर्म हैं।[2]

<u>ख—क्षत्रिय कर्म—</u>

1 दान देना

2 अध्ययन करना

3 यजन (यज्ञ करना)

4 पालन (प्रजापालन शिष्ट वर्ग पालन महीरक्षा)

5 दुष्ट निग्रह (दुष्ट दस्यु म्लेच्छो का दमन करना)[3]

<u>ग—वैश्यकर्म—</u>

1 दान

2 अध्ययन

3 यजन

4 कृषि

1—अग्निपुराण—151/3—6(1)

2—अग्निपुराण—151/6 (2)—7

3—अग्निपुराण—151/7—8

5 गोरक्षा (पशुपालन)

6 वाणिज्य

घ– शूद्रकर्म

1 द्विज शुश्रूषा

2 सभी शिल्प कर्म (सर्वशिल्पानि) कला कौशल।[1]

ऊपर वर्णित वर्णों के कर्तव्यो से यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद–विद्या और अन्य शास्त्रो के अध्यापन तथा समाज को धर्मोपदेश करने का कर्तव्य (अथवा अधिकार) ब्राहमणो को ही था। इन्ही ब्राहमणो मे ऋषि मुनि और धर्मशास्त्रवेत्ता तथा धर्माचार्य थे। यदि पुराणो मे वर्णित वेनोपाख्यान (धार्मिक राजा के अधार्मिक (धर्म विरोधी) वेन की कथा) का विश्लेषण करे तो यही सिद्ध होता है कि ब्राहमण ऋषिगण ही धर्म के सरक्षक थे और राजा की निरकुशता पर वे अकुश का कार्य करते थे। हजारो वर्ष तक शिक्षा का भार ब्राह्मणो के गृहो (आचार्य कुलो या गुरूकुलो) और आश्रमो पर ही आधारित था। बडे बडे ज्ञानी महात्मा तत्ववेत्ता दार्शनिक और बहुश्रुत मनीषी कवियो ने भारतीय विद्याओ और आध्यात्मिक जीवन को उच्च शिखर पर पहुचा दिया था।

ब्राहमणो के अतिरिक्त कुछ क्षत्रिय सम्राट यथा जनक–विदेहराज आदि ने भी इस क्षेत्र मे कम महत्वपूर्ण कार्य नही किया था। आज भी यदि कोई वस्तु ऐसी है जिस पर हम (अल्पज्ञ) भी गर्व करते है तो वह है भारतीय विचार और इसका श्रेय ब्राह्मण जीवन दर्शन को ही है।

क्षत्रियो ने विश्व पर अपना अधिकार कर वहा भारतीय विचार दर्शन तथा भारतीय विद्याओ का प्रचार किया। 712 ई0 के बाद सकट काल मे शकराचार्य ने नास्तिक बौद्धो (पाखण्डों) का दमन कर ब्राहमण को पक्का (शुद्ध) ब्राह्मण तथा क्षत्रियो को शुद्ध (अवदात क्षत्रियता) क्षत्रिय करते हुए देव वेद विप्र और गौ अर्थात् हिन्दू समाज की प्राचीन मर्यादाओ की रक्षा की और ऐसे आचार्यों की परम्परा की कडी वर्तमान युग तक चलती रही जो स्वतन्त्रता (मुक्ति) ऐश्वर्य (भुक्ति) और धर्म बुद्धि से जुडी रहकर दासता से मुक्त करने मे सफल हुई।

1–अग्निपुराण––151/7 (2)–9

दानमध्ययन चैवयजन च यथा विधि।
क्षत्रियस्य सवैश्यस्य कर्मेद परिकीर्तितम्।।
क्षत्रियस्य विशेषण पालन दुष्ट निग्रह ।। (8)
कषि गोरक्ष्य वाणिज्य वैश्यस्य परिकीर्तितम्
शूद्रस्य द्विजसुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाऽप्यथ (9)

वैश्यो ने वाणिज्य द्वारा राष्ट्र को समृद्ध बनाया। परन्तु पश्चिमी भारत (सौराष्ट्र सिन्धु सौवीर कोकण और केरल आदि) के व्यापारियो का अरब के व्यापारियो से मैत्री सबध उनका जैनया बौद्ध होना तथा ब्राह्मणो के प्रति द्वेष राष्ट्रघातक सिद्ध हुआ। शूद्र राज्य के शूद्र बौद्धो की सिन्ध के ब्राहमण राजा के प्रति विरोध की भावना भी हमारी भूमि पर यवन सत्ता की स्थापना मे सहायक सिद्ध हुई।

शूद्रो के कर्तव्यो मे द्विजाति सेवा (भृति या मजदूरी) अथवा सभी शिल्प कर्म करना था। इस शिल्प कर्म के ही आधार पर बहुत सी शिल्पी जातिया भी बन गयी। ई पू प्रथम शताब्दी के प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ महावस्तु मे ऐसी शिल्पी जातियो की श्रेणिया थी जिनका राजनैतिक जीवन मे भी कम महत्व न था। गुप्त अभिलेखो मे भी हमे उनके उल्लेख प्राप्त होते है।

4–सकर जातिया और उनका योगदान–

अग्निपुराण के युग मे सकरता (मिश्रण हीन उत्तम योनिसगम) अत्यधिक फैल चुकी थी।

भगवद्गीता के प्रथम अध्याय मे कहा गया है कि जब स्त्रिया दुष्ट हो जाती हैं तो समाज मे (वर्ण) सकरता बढ जाती है और यह सकरता नरक को ले जाने वाली होती है।[1]

ईसा की प्रथम शताब्दी मे भी (शक यवन पह्लव आदि विदेशियो के कारण तथा स्वय वर्णो के चारित्रिक पतन के कारण) समाज के चारो वर्णो मे सकरता फैल गयी थी जिसे गौतमी पुत्र शातकर्णी ने रोका।[2] पाखण्ड धर्मों की वृद्धि के कारण भी यह अनाचार फैल गया था। अरबो द्वारा सिन्ध विजय के बाद मुलसमानो द्वारा स्त्रियो का भी अपहरण किया गया था।[3]

अग्निपुराण के अनुसार चारो वर्णो के अनुलोम प्रतिलोम (मिश्रित) विवाह सबधो से नयी जातियो की उत्पत्ति हुई। इन जातियो को वर्णवाह्य (बहिष्कृत) या वर्णेतर जातिया अथवा सकर जातिया कहा जाता था।[4] इन्हे अन्त्यज भी कहते थे।[5]

5–कर्म–पतित जातिया–

चारो वर्ण के लोगो का धर्म था कि वह अपने वर्णों के निर्धारित धर्मों (स्वकर्मों) को ही करते रहे। स्वधर्म पालन (युद्ध आदि या धर्म रक्षा) मे प्राणो का उत्सर्ग करना पडे तो वह भी श्रेयष्कर ही है। (स्वधर्मे

1–स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णशकर।
सकरो नरकायैव कुलघ्नाना कुलस्य च।। भगवद्गीता–1–41 42

2–वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी का उन्नीसवे वर्ष का नासिक अभिलेख।

3–देवल स्मृति।

4–अग्निपुराण 151/18 (2)

5–अग्निपुराण 168–28 (2)

निधन श्रेय) परन्तु कुछ पाप कर्म (अकर्तव्य) भी जाति से च्युत करा देते थे। जाति भ्रश करम स्मृतम।[1]

इसमे सकीर्ण करण [2] भी गर्हितकर्म था। इसे ही सकरीपात्रकृत्य (विभाजीय स्त्री–पुरूष के विवाह) भी कहते थे। इस समाज मे आचार पर विशेष बल दिया जाता था। पतित के साथ रहने वाला भी पतित ही माना जाता था। अनुलोम विवाह से उत्पन्न होने पर वर्णों की जाति माता के समान होती है।[3]

1– चाण्डाल–

शूद्र पुरूष और ब्राह्मण की पत्नी के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न होने वाला पुत्र चाण्डाल कहलाता था।[4]

2– सूत– क्षत्रिय पुरूष और ब्राह्मणी स्त्री से उत्पन्न पुत्र सूत कहलाता था। [5]

3– पुक्कस– शूद्र पुरूष और क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पुक्कस कहा जाता था। [6]

4– मागध– वैश्य पुरूष तथा क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न पुत्र मागध कहलाता था। [7]

5–आयोगव– शूद्र पुरूष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र आयोगव[8] कहा जाता था।

समाज मे समान वर्णों मे ही विवाह करना उचित था। उत्तम तथा अधम जातियो मे विवाह करना या होना ठीक नही था।[9] माता पिता को कर्म से ही वर्ण सकर जातिया उत्पन्न होती थी। [10]

6–सकर जातियो के कर्म–

चाण्डाल कर्म– वध्यो (मृत्युदण्ड से दण्डित अपराधी) का वध करना चाण्डाल कर्म बताया गया है।[11] वे गाव के बाहर रहते थे और मृतक व्यक्ति के वस्त्रो को धारण करते थे। वे अस्पृश्य थे। [12]

वैदेहक– वैदेहक का कर्म स्त्रियो का जीवन और उनकी रक्षा करना था।[13]

1– अग्निपुराण–168/38 (1) 169/23 (2)
2– अग्निपुराण–168/39 (1)
3– अग्निपुराण–151/10 (2) अनुलोम्येन वर्णाना जातिर्मातृ समास्मृता।
4– अग्निपुराण–151/11 (1)
5– अग्निपुराण–151/11 (1)
6– अग्निपुराण–151/12 (2)
7– अग्निपुराण–151/12 (2)
8– अग्निपुराण–151/12 (2)
9– अग्निपुरााण–151/13–(2) विवाहस्सदृशैस्तेषा नोत्तमैनोधमैस्तथा।
10–अग्निपुराण–151/18 (2) सकरे जातयो ज्ञेया पितुर्मातुश्चकर्मत।
11–अग्निपुराण–151/14 (1)
12–अग्निपुराण–151/16–(2) 17–(1)
13–अग्निपुराण–151/14(2)

पुक्कस– यह जाति व्याध कर्म (शिकार) से जुडी थी। अत ये व्याध ही थे (पुक्कसानाच व्याधता)[1]

सूत– सूत जाति का कर्म अश्वो के रथ मे सारथी का काम करना था। (सूतानाम् अश्व सारथ्यम्)[2]

मागध– मागधो का कर्म स्तुति करना था। (स्तुति क्रिया मागधानाम्)[3]

आयोगव– आयोगव जाति का कर्म रगावरण तथा शिल्पो द्वारा जीवका कमाना था।[4]

<u>सकर जातियो का समाज मे योगदान</u>–

शूद्रवर्ण का धर्म द्विजसेवा के अतिरिक्त सभी शिल्प कार्य करना था जैसा कि ऊपर (वर्णधर्म) कहा गया है। आयोगव का भी कर्म शिल्प ही था।

इस प्रकार विविध प्रकार के शिल्प कर्मों तथा नगर आदि (प्रासाद) वास्तु कर्म मे भी इन शिल्पियो का विशेष योगदान था। अग्निपुराण मे हमे नृत्यवृत्ति वाले लोग यथा वेश्या स्त्री नट स्वर्णकार कर्मार–लोहे का काम करने वाले चक्रिक कैवर्त (केवट नाविक)[5] शौण्डिक[6] और कारूक[7] (शिल्पियो) के उल्लेख प्राप्त होते है।

ब्रह्मपुराण मे हमे निम्नलिखित जातियो के नाम प्राप्त होते है–

रगोपजीवी (ब्र पु 22/21)

कैवर्त (ब्र पु 22/21)

माहिसिक (ब्र पु 22/21)

कुहकाजीविन (ब्र पु 22/24)

मृगत्याध (ब्र पु 22/25)

वही पर अवन्तिका (उज्जयिनी) के वर्णन मे हमे निम्नलिखित व्यवसायी और शिल्पी जातियो के उल्लेख मिलते है–

1– अग्निपुराण–151/15 (1)
2– अग्निपुराण–151/15 (1)
3– अग्निपुराण–151/15 (2)
4– अग्निपुराण–151/15 (2)–16 (1) रगावतरणप्रोक्त तथा शिल्पैश्च जीवनम्।
5– अग्निपुराण–106/6 (2) –7
6– अग्निपुराण–106/8 (2)
7– अग्निपुराण–106/11 (2) कारूकान्।

अस्त्रविक्रयिका—अर्थात अस्त्र (हथियार बेचने वाले)

ताम्बूलपण्यजीविन—तम्बोली (पान बेचने वाले)

काष्ठविक्रयकारका—लकडी बेचने वाले (लकडहारा)

तृणविक्रयका—घास बेचने वाले (घसियारे)

रगोपजीविन—रगो से जीविका कमाने वाले (रगरेज)

मासविक्रयिका—मास बेचने वाले (बधिक)

तैलविक्रयिका—तेल बेचने वाले (तैलिक या तेली)

वस्त्रविक्रयिका—वस्त्र बेचने वाले (तन्तुवाय)

पत्रविक्रयिका— पत्ते बेचने वाले (पनवारी)

जवसहारा—घास ढोने वाले

फलविक्रयी—फल बेचने वाले

रजक—धोबी

गोपाला—गोपालक

नापित—नाई

वस्त्रसूचका—दर्जी

मेषपाला—भेड पालने वाले (गडरिया)

अजपाला—बकरा बकरी पालने वाले

मृगपाला—हिरण पालने वाले

हसका—हस पालने वाले

धान्यविक्रयी—गल्ला बेचने वाले

सत्तुविक्रयी—सत्तू बेचने वाले

गुडविक्रयी—गुड बेचने वाले

लवणजीविन—लवण से जीविका चलाने वाले

गायना—गाने वाले (गवैया)

नर्तका—नाचने वाले[1]

1—ब्रह्मपुराण—44 / 29—34

मगलपाठका —मगल पाठ करने वाले

शैलूष—अभिनय करने वाले (नट)

कथका —कथा बाचने वाले

रत्नपरीक्षिका —जौहरी

व्योकारा—लोहार (अनुवादक के अनुसार)

ताम्रकारा—कसेरा (ताबे के बर्तन बनाने वाले)

कास्यकारा—ठठेरा—पीतल कासे के बर्तन बनाने वाले

रूठका—(अज्ञात) सजावट करने वाले

कोषकारा—रेशमी वस्त्र बनाने वाल

कुन्दकारा—खरीदने वाले

इन व्यवसायी एव शिल्पी जातियो के कर्मों का अवलोकन करते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत के सामाजिक एव आर्थिक जीवन मे इनका कितना महत्वपूर्ण योगदान था।[1]

7—<u>आश्रम व्यवस्था एव आश्रम धर्म</u>—

प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन मे वर्ण व्यवस्था के बाद आश्रम व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान था। यह केवल द्विजाति व्यवस्था थी जिसके अन्तर्गत ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्य ही आश्रमो के अनुसार अपना जीवन चार भागो मे विभक्त कर चतुर्वर्ग (पुरूषार्थ सिद्धि) कर सकते थे। वस्तुत वर्ण और आश्रम व्यवस्थाये ही समाज और व्यक्ति की उन्नति की मूलाधार थे। आश्रम चार है—

1—ब्रह्मचर्य आश्रम

2—गृहस्थाश्रम

3—वानप्रस्थ आश्रम

4—सन्यास आश्रम

प्राचीन भारत मे मनुष्य की सामान्य आयु एक सौ वर्ष मानी गयी थी शतायुर्वेपुरूष इसे ही चार भागो अथवा चार आश्रमो मे बाट दिया गया। इन चारो आश्रमो के भी नियत धर्म थे।[2] जिनका पालन करना प्रत्येक आश्रम के व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण कर्तव्य था।

1—ब्रह्मपुराण—44/36—37

2क—विष्णुपुराण—3/8/41 (2) धर्मानामश्रमिणाम्

ख—अग्निपुराण—153/1 (1) धर्मममाश्रमिणाम्

क–<u>ब्रह्मचर्याश्रम–</u>

उपनयन के बाद अर्थात मौन्जी बधन से विप्र आदि का दूसरा जन्म होता है।[1] कुल धर्म के अनुसार ही ब्राहमण का उपनयन होता है। ब्राह्मण का उपनयन आठवे वर्ष मे क्षत्रिय का उपनयन ग्यारहवे वर्ष मे और वैश्य का उपनयन बारह से सोलह वर्ष तक कर देना चाहिये। वास्तव मे बारहवे वर्ष मे ही करना चाहिये किन्तु सोहलवे वर्ष के बाद तो उपनयन सस्कार नही किया जा सकता। स्मृति मे तो इसे सावित्रीपतित अथवा व्रात्य कहा गया है।[2]

उपनयन होने के बाद बालक को गुरू के गृह (गुरूकुल) मे रहते हुए ब्रह्मचर्य व्रतो तथा नियमो का पालन करते हुए सावधान होकर वेदाध्ययन करना चाहिये। [3] ये नियम–विशेष निम्नलिखित है–

1–शौचाचार–शुद्धि (शरीर मन और वाणी तथा शुद्ध सदाचार)।

2–व्रत–वेद व्रतो तथा अन्य नियमो का पालन करना।

3–गुरूशुश्रूषा–गुरूओ की सेवा करना।

4–वेदाध्ययन[4]– वेद वेदाङ्गो का अध्ययन करना।

5–दोनो समय सध्या तथा अग्नि उपासना और गुरू का अभिवादन।[5]

6–गुरू के खडे होने पर खडा हो चलने पर पीछे–पीछे चले तथा बैठ जाने पर नीचे बैठ जाय और गुरू के प्रतिकूल कभी कोई कार्य न करे। [6]

7–गुरू के कहने पर ही उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्त होकर वेदाध्ययन करे।

8–गुरू की आज्ञा होने पर भिक्षान्न भोजन करे।[7]

9–आचार्य के नहा लेने के बाद नहाये।

10–प्रतिदिन गुरू जी के लिए समिधा कुश और पुष्पादि ले आवे।[8]

इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम द्विजाति–शिशु विशेषकर ब्राहमण बालक की पवित्र आचरण सयम सेवा और शील के साथ–साथ उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने का जीवन काल था। आगे चलकर ये ही बालक धर्मिष्ठ <u>गृहस्थ एव त्यागी, भोग त्याग युक्त विरत और विमुक्त वानप्रस्थी (ऋषि) और सन्यासी (यति भिक्षु) और मुनि</u>

1–मौञ्जी वन्धनतो जन्म विप्रादेश्च द्वितीयकम्– अग्निपुराण–151/10 (1)

2(क)– अग्निपुराण–153/7 (ख)–यथाकालम सस्कता। सावित्रीपतिता व्रात्या–मनुस्मृति 1–2–39

3–विष्णुपुराण–3/9/1

4–विष्णु पुराण–3/9/2

5–विष्णु पुराण–3/9/3

6–विष्णु पुराण–3/9/4

7–विष्णु पुराण–3/9/5

8–विष्णु पुराण–3/9/6

बनते थे जिनका लक्ष्य ब्रहमज्ञान (तत्वज्ञान) द्वारा मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना ही था।

ब्रहमचारी–वेशभूषा

मेखला और चर्म–

ब्रहमचारी मेखला (मूज की या वल्कल) तथा मृगचर्म (ब्राहमण) व्याघ्रचर्म (क्षत्रिय) आदि से शरीर ढकते थे। वे दण्ड भी धारण करते थे। ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्य के लिए क्रमश (पलाश) पीपल और बेल के दण्ड बताये गये हैं। इनकी लम्बाई भी क्रमश (वर्णानुसार) केशान्त ललाट और मुख तक होनी चाहिये।

दण्डो को सीधा और छालयुक्त होना चाहिये यह अग्नि द्वारा जला हुआ न हो। इसका सदा धारण करना आवश्यक था। इसके टूट जाने पर उसे जल मे प्रवाहित कर दिया जाता था और उसके बाद नया धारण करना होता था।

वस्त्र एव उपवीत्–

वर्णानुक्रम मे वस्त्र और उपवीत (जनेऊ) कपास रेशम और ऊन का होना चाहिये।

भिक्षाटन–

ब्रहमचारियो के द्वारा भिक्षा मागते समय भवत् शब्द क्रमश आदि मध्य और अन्त मे होना चाहिये। प्रथमत वही भिक्षा मागनी चाहिये जहा मिलना निश्चित हो। ब्राह्मण ब्रहमचारी भवति भिक्षादेहि कहकर भिक्षाटन करता था। इसी प्रकार क्षत्रिय ब्रह्मचारी भिक्षा भवति देहि तथा वैश्य ब्रह्मचारी भिक्षा देहि भवति कहकर भिक्षा मागता था। इसी प्रक्रिया से उसके वर्ण का ज्ञान होता था।

शिक्षा–

उपनीत हौंने के पश्चात बालक को आरम्भ मे शौच (पवित्र) होने की शिक्षा देनी चाहिये। साथ ही उसे आचार अग्नि कर्म होम और सन्ध्योपासना की भी शिक्षा देनी चाहिये।

यज्ञ–

पूर्व की ओर मुखकर यज्ञ करने से आयु वृद्धि (आयुष्य) दक्षिणाभिमुख यज्ञ से यश पश्चिमाभिमुख यज्ञ से ऐश्वर्य और उत्तर की ओर मुह कर यज्ञ करने से ऋत (सत्य ऋत धर्म) की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचारी को साय और प्रात हवन करना चाहिये किन्तु अग्नि मे कोई अपवित्र वस्तु नहीं डालनी चाहिये।

ब्रहमचारी को किसी के साथ मधु (मद्य) मास आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। साथ ही साथ

गीत नृत्य का त्याग हिसा पराई निन्दा और अश्लील दृश्यो से विशेष रूप से दूर रहना चाहिये।

वेदाध्ययन के बाद स्नान कर ब्रह्मचारी का गुरू दक्षिणा देकर घर वापस आ जाना चाहिये।[1]

नैष्ठिक ब्रहमचारी (नैष्ठिक धर्म)[2]

जो ब्रहमचारी जीवन पर्यन्त गुरू गृह मे ही रहता हुआ (अध्ययन अध्यापन स्वाध्याय मे) जीवन व्यतीत करता था उसे नैष्ठिक ब्रहमचारी कहते थे।

नैष्ठिको ब्रहमचारी वा देहान्त निवसेद् गुरौ।[3]

ख–गृहस्थाश्रम–

इस प्रकार शौचाचार गुरूशुश्रूषा भिक्षाटन व्रताचरण सन्ध्योपासना और अग्निहोत्र आदि करते हुए समाजशील तथा धर्मरत हो जाने के बाद गुरू की आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रम मे ब्रहमचारी प्रवेश करता था। जीवन का यहा प्रथमाश (25 वर्ष) समाप्त होता था। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम मे भी वह अपनी धर्मचर्या तथा जीविकोपार्जन कर पोष्य वर्ग (माता पिता आदि) की सेवा करता हुआ 25 से 50 वर्ष तक सवर्णा स्त्री से विवाह कर भोगमय (भुक्ति) जीवन व्यतीत करता हुआ गृह कुल परिवार समाज और राष्ट्र की सेवा करता था। गृहस्थाश्रम मे भी वह ब्रह्मचर्य स्वाध्याय और वेदाध्ययन तथा अध्यापन और चिन्तन मे लीन रहता था।

गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमो की जीविका का आधार है और यह सबसे कठिन आश्रम था जिसमे जीवन और जगत के थपेडो से कभी सुख और कभी दु ख का अनुभव करता हुआ भी मनुष्य विचलित और विक्षुब्ध नही होता था। राम कृष्ण और महाराज हरिश्चन्द्र की कथा आदि हृदय मे धर्म, साहस और समता उत्पन्न करती है। कोई भी सुख दु ख का दाता नही है। हमारे पूर्व जन्मो के कर्मो से ही सुख–दु ख मिलता है। अत सुकर्म और पुण्य (दानादि) गृहस्थ के मुख्य धर्म थे।

गृहस्थाश्रम मे गृहस्थोचित धर्मो [4] (यज्ञ दान आदि) द्वारा मनुष्य अपने शरीर और जीवन का मार्जन करता है।

जीविका के साधन (गृहस्थवृत्ति)–

गृहस्थाश्रम मे ब्राहमणो को अपनी जीविका का निर्वाह अपने कर्मो (स्वधर्मानुसार) के उपयुक्त जीविका के साधनो के द्वारा ही करना चाहिये। वह क्षत्रिय और वैश्य कर्मो से भी निर्वाह कर सकता है। परन्तु शूद्रो का कर्म नहीं करना चाहिये। ब्राहमण कृषि वाणिज्य गोरक्षा (पशुपालन) और लेनदेन (कुसीद)

1– अग्निपुराण–153/7–16 (1)
2– अग्निपुराण–153/16 (2) 165/16 (1)
3– अग्निपुराण–153/16 (2)
4–कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहम् भागवतपुराण–1/8–51

तो कर सकता है किन्तु उसे गोरस गुड लवण लाक्षारस और मास का परित्याग कर देना चाहिये।[1]

कृषि कार्य मे भूमि तोडने वनस्पतियो को काटने मे कीडो और चीटियो की जो हत्या होती है उस पाप से प्रायश्चित रूप मे यज्ञ करना चाहिये।[2] गृहस्थाश्रम मे गृहस्थ को विधि पूर्वक पाणिग्रहण सस्कार सपन्न करने के बाद धनोपार्जन कर अपने पोष्य वर्ग का पोषण तथा सभी गृहस्थ कर्मों का धैर्यपूर्वक सम्पादन करना चाहिये।[3]

पिण्डदान से पितरो का पूजन (श्राद्ध) यज्ञो द्वारा देवताओ की पूजा तथा अन्न (भोजन) द्वारा अतिथियो की सेवा स्वाध्याय द्वारा ऋषियो की पुत्रोत्पत्ति से प्रजापति की और बलि (अन्नादिदान) से प्राणियो तथा वात्सल्य भाव से सम्पूर्ण जगत् की पूजा करते हुए पुरूष अपने कर्मों द्वारा उत्तमोत्तम लोको को प्राप्त कर लेता है।[4] जो केवल भिक्षावृत्ति से ही अपनी जीविका वृत्ति चलाते हैं यथा ब्रहमचारी वानप्रस्थी (परिव्राजक) और सन्यासी उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है। अत गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है।[5] इनके अतिरिक्त ससार मे जिनका कोई नही है और वे अनिकेत देश–दर्शन तथा पृथ्वी–पर्यटन किया करते है। अथवा जो विप्रगण वेदाध्ययन और तीर्थाटन आदि करते रहते हैं उनका भी आश्रय गृहस्थाश्रम ही है।[6]

इस प्रकार सधर्मचारिणी पत्नी को प्राप्त कर गार्हस्थ्य धर्म जीवन को मिलकर पालन करने से वह महान फल (पुण्यलोक) को प्राप्त करता है।[7]

<u>पचमहायज्ञ</u>–

गृहस्थाश्रम मे विविध पाप अनजाने से हो जाने के पाप से बचने के लिए पाच महायज्ञो का विधान था। ये पाच महायज्ञ है[8]

1–अग्निपुराण–152/1–2 ब्राहमणा स्वेन कर्मणा क्षत्रविट शूद्र धर्मेण जीवोनैव तु शूद्रगात्।

2–अग्निपुराण–152/3 भूमि भित्त्वौषधीश्छित्वा हत्वा कीटपिपीलिकान्।
पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात्।।

3– विष्णुपुराण–3/9/8 विधिनावाप्त दारस्तु धन प्राप्य स्वकर्मणा।
गृहस्थकार्यमखिल कुर्याद् भूपाल शक्तित ।।

4–विष्णु पुराण–3/9/9–10

5–विष्णुपुराण–3/9/11

6–विष्णुपुराण–3/9/12–13

7–विष्णुपुराण–3/9/17

8–अग्निपुराण–166/12 (1)

1—देवयज्ञ

2—पितृयज्ञ

3—मनुष्ययज्ञ

4—भूतयज्ञ

5—ब्रह्मयज्ञ।

देवयज्ञ— होम करना देवयज्ञ है।

पितृयज्ञ— तर्पण करना पितृयज्ञ है।

मनुष्य यज्ञ— अतिथियो की सेवा करना मनुष्य यज्ञ है।

भूत यज्ञ— बलि (भोजन देना) भूत यज्ञ है।

ब्रह्मयज्ञ— अध्यापन करना ब्रह्म यज्ञ है।[1]

तीन ऋण—

देवऋण पितृऋण और ऋषि ऋण ये तीन ऋण हैं जिनसे उद्धार होना गृहस्थ का प्रमुख धर्म है।

पितृ ऋण— सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण का उद्धार होता है।

ऋषि ऋण— स्वाध्याय एव वेदाध्ययन से ऋषि ऋण से मुक्ति होती है।

देवऋण— यज्ञो के द्वारा देवऋण से उद्धार होता है।[2]

ग—वानप्रस्थाश्रम—

वानप्रस्थाश्रम का वर्णन[3] करते हुए कहा गया है कि वह जटाधारी अग्निहोत्र करने वाला भूमिशयन करने वाला और मृगचर्म धारण करने वाला होना चाहिये। उसे वन मे रहते हुए विचरण करना चाहिये। उसे मूल फल और नीवार से अपना जीवन यापन करना चाहिये। उसे प्रतिग्रह (दान लेने) का अधिकार नहीं होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तीन बार स्नान करना चाहिये। देवताओ तथा अतिथियो की भी पूजा करनी चाहिये।

गृहस्थ व्यक्ति को अपने पौत्र को देखकर अरण्यवास करना चाहिये। जीवन के इस तृतीय भाग को एकाकी अथवा भार्या के साथ व्यतीत करना चाहिये। उसे ग्रीष्म काल मे निरन्तर पचाग्नि तप करना चाहिये।

1—गरूणपुराण—1/205/140—डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी ग पु अ पृ० 124

2—गरूण पुराण—1/85/22

3—अग्निपुराण—160/1 (1) वानप्रस्थयतीना च धर्म वक्ष्ये ।

वर्षा काल मे खुले आकाश मे रहना चाहिये हेमन्त ऋतु मे भीगे वस्त्रो मे रहना चाहिये। इस प्रकार उसे उग्र तपस्या करनी चाहिये। [1] उसे अपरावृत्ति मे रहकर सरल भाव से दिशाओ मे चला जाना चाहिये।

घ—सन्यासाश्रम—

यह जीवन का चतुर्थाश्रम है जिसका लक्ष्य मोक्ष साधना है। इसी को यति धर्म भी कहा गया है। [2] जीवन की इस चौथी अवस्था मे सभी का सगत्याग कर देना चाहिये। इसमे सभी प्रकार की आसक्ति से सन्यास ले लेना चाहिये। ब्राह्मण को सभी वेदो से युक्त प्रजापत्य इष्टि का निरूपण करके ब्राह्मणो को दक्षिणा देकर अपने आपमे अग्नि को आरोपित करके घर से निकल जाना चाहिये। नित्य अकेले भ्रमण करना चाहिये तथा सन्यासी को भोजन के लिए गाव मे जाना चाहिये। [3]

उपेक्षक— उसे इस ससार से उपेक्षा करनी चाहिये।

असचयिक— उसे सचय नही करना चाहिये। (असग्रही) ज्ञान समन्वित मुनि को मुनि का जीवन बिताते हुए ज्ञान मे लीन रहना चाहिये।

कपाल धारण करना वृक्षमूल मे निवास करना मोटे वस्त्रो को धारण करना चाहिये। सभी के प्रति समान दृष्टि रखना चाहिये। न तो मृत्यु की निन्दा करे और न जीवन का मोह ही करे। जिस प्रकार सेवक स्वामी की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार मृत्यु की प्रतीक्षा करे। [4]

दृष्टि पूत न्यसेत्पाद वस्त्रपूत जल पिबेत्

सत्यपूता वदेद्वाच मन पूत समाचरेत्। [5]

अर्थात् आगे देखकर कदम रखे वस्त्र से छान कर जल पिये सत्ययुक्त वाणी बोले और पवित्र मन से आचरण करे। उसकी तोबडी (यति का पानपात्र) लकडी मिटटी या बास का होना चाहिये।

उसे भिक्षा मागने के लिए उस समय निकलना चाहिये जब रसोई का धुआ समाप्त हो चुका हो मूसल का चलना (धान कूटना) बद हो चुका हो आग ठडी पड गयी हो और सारे बर्तनो को उलट कर रख दिया गया हो।[6]

1—अग्निपुराण—160/1—5

2—अग्निपुराण—161/1 यतिधर्मं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शनम्।

3—अग्निपुराण—161/2—3 प्राजापत्योनिरूप्येष्टि सर्ववेद सदक्षिणाम्।

आत्मन्यग्नीन्समोरोप्य प्रव्रजेद् ब्राह्मणों गृहात्।

एक एवचरेन्नित्य ग्राममन्नार्यमाश्रयेद्।।

4—अग्निपुराण—161/4—6 (1)

5—अग्निपुराण—161/6 (2)—7 (1)

6—अग्निपुराण—161/8

भिक्षा पाच प्रकार की कही गयी है–

1–मधुकरी

2–असक्लृप्त

3–प्राकप्रणीत

4–अयाचित और

5–तात्कालिक

सन्यासी को या तो करपात्री होना चाहिये या दिये गये पात्र से अपने पात्र मे भिक्षा ग्रहण करे। उसे अपने आश्रमी जीवन को शुद्ध मन से व्यतीत करना चाहिये।[1] सभी पर समदृष्टि और समबुद्धि [2] होनी चाहिये। केवल सन्यासी के चिह्न ही सन्यास के कारण नही है।

8–सस्कार –

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनो वर्ण द्विज माने गये है। जिनका दो बार जन्म होता है उनको ही द्विज कहते है। ये तीनो वर्ण पहले तो माता से जन्म लेते है और फिर उपनयन सस्कार से इनका दूसरा जन्म होता है। इन तीनो वर्णों की गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सभी क्रियाये वैदिक मत्रो से सम्पन्न होती है। शबर स्वामी के अनुसार सस्कार से कोई पदार्थ या व्यक्ति कार्य के योग्य हो जाता है।[3] सस्कार का सामान्य अर्थ सुधारना सवारना शुद्ध स्वरूप मे बदलना आदि है। यह व्यक्ति के छिपे गुणो को प्रकाशित कर बालक ब्रहमचारी को शक्ति (बल) सपन्न ब्रह्मतेज से युक्त एव शीलवान तथा स्वधर्म पराण बनाता है। अग्निपुराण मे सस्कारो की सख्या 48 बतायी गयी है।[4] यहा इन्हे भुक्ति एव मुक्ति देने वाला कहा गया है।[5] मुख्य रूप से निम्नलिखित सोलह सस्कार ही अधिक प्रसिद्ध हैं–

1–गर्भाधान–

शिशु के माता के पेट मे आने के पूर्व से ही दोनो (स्त्री–पुरूष) उत्तम सन्तान हेतु ही ऋतुकाल मे एक शुद्ध भाव से बीजक्षेप करते थे और यही प्रथम सस्कार गर्भाधान है।

2–पुसवन–

1–अग्निपुराण–161/9 10

2–अग्निपुराण–161/11

3–हिन्दू धर्मशास्त्र भाग–1 पी०वी० काणे पृ० 176

4–अग्निपुराण–32/1 (1)

5–अग्निपुराण–32/12 सस्कारै सस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
सर्वरो गादिनिर्मुक्तो देववद् वर्त्तते नर ।।

जिसके करने से पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है उसे पुसवन नाम से जाना जाता है। गर्भधारण के तीसरे माह मे इसे सपन्न करना होता है।

3—सीमन्तोन्नयन—

सामान्यत गर्भाधान के चौथे मास मे सीमन्तोन्नयन सस्कार होता है।

4—जातकर्म—

पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात यह सस्कार सम्पादित किया जाता है।

5—नामकरण—

इसके अन्तर्गत विधिवत धार्मिक सस्कारो का आयोजन करके पुत्र या पुत्री का नाम निर्धारण किया जाता है।

6—निष्क्रमण—

चौथे मास मे बालक घर से बाहर लाया जाता है।

7—अन्नप्राशन—

छठे मास मे बालक का अन्नप्राशन सस्कार किया जाता है।

8—चूड़ाकर्म—

एक वर्ष का होने पर उसका चूडाकर्म होता है। यह कुल के आचार के अनुसार तीसरे वर्ष मे भी किया जाता है।

उपर्युक्त सस्कार कन्याओ तथा बालको दोनो के समान रूप से होते थे। ये सस्कार बिना मत्र के ही होते थे।

9—उपनयन—

किसी भी बालक के जीवन मे उपनयन सस्कार का विशेष महत्व होता है। इसके पश्चात् ही उसका नया जीवन प्रारम्भ होता है। उपनयन सस्कार का सबध बालक का दीक्षित होकर गुरू के साथ गुरूगृह गुरूकुल या आश्रम मे जाकर वेदाध्ययन से था।

10—13 वेदव्रत या ब्रह्मचर्य व्रत—

सावित्री (गायत्री) व्रत एव यज्ञ तथा शुद्ध आचरण कर्म भैक्ष्यचर्या वेदाध्ययन एव गुरूसुश्रूषा।

14—समावर्तन (स्नान, स्नातकत्व)—

अध्ययन समाप्त होने पर गुरू की अनुज्ञा (अनुमति) के पश्चात गुरू को दक्षिणा दान करके अपने घर के लिए ब्रह्मचर्य प्रस्थान करना था।

15–विवाह (पत्नी सयोजन)–

घर वापस आकर वह सुलक्षणा कन्या से विवाह करता था। विवाह के पश्चात वह गृहस्थ धर्म मे प्रवेश कर पच महायज्ञो तथा माता पिता की शुश्रूषा के दायित्व का निर्वाह करता था।

16–अन्त्येष्टि (और्ध्वदेहिक सस्कार)–

शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर किया जाने वाला सस्कार अन्त्येष्टि सस्कार कहलाता है। यह समाज मे अग्निदाह जल प्रवाह और भूमि मे स्थापना तीन रूपो मे पाया जाता है।

सामान्य रूप से ये ही सस्कार प्रचलित और प्रसिद्ध थे। परन्तु पूर्णरूप से ब्राहमणत्व के लिए गौतम ऋषि ने अडतालीस सस्कार गिनाये है। स्कन्द पुराण मे प्रचलित सस्कारो– गर्भाधान पुसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण निष्क्रमण (बाहर निकालना) अन्नप्राशन चूडाकर्म कर्णवेध उपनयन ब्रह्मचर्यव्रत वेदव्रत और विवाह का वर्णन किया गया है। [1]

ये क्रियाए निषेक (बीजक्षेप गर्भाधान) से लेकर श्मशानात तक वैदिक क्रियाए हैं। [2] समाज मे सस्कार क्रियाओ का करना अत्यावश्यक था। तीनो वर्णों के पुरुषो के सस्कार मत्र विधान के साथ किये जाते थे–

गर्भाद्यानादि सस्कारा कार्या मन्त्र विद्यानत ।

किन्तु स्त्रियो के सस्कार मन्त्रहीन ही (अमन्त्र) होते थे–

स्त्रीणाममत्रत कार्या यथाकाल यथाविधि। [3]

इन सस्कारो को सपन्न करने का समय नियत था (यथाकाल) और इनकी शास्त्रीय विधि (यथाविधि) थी। गृह्यसूत्रो धर्मशास्त्रो (स्मृतियो) और पुराणो मे हमे सस्कारो का वर्णन मिलता है। सीमत कर्म पहले और चौथे मास मे करना प्रशस्त माना गया है। यह सस्कार इसके अतिरिक्त छठे सातवे या आठवे मास मे करावे। [4] पुत्र के जन्म होने पर पिता कपड़ो सहित स्नान कर जातकर्म को नान्दीश्राद्ध और

1–स्कन्द पुराण–4/1/11/27–43
2–स्कन्द पुराण–4/1/36/3
3–बृ ना पु –1/25/3
4–बृ ना प –1/25/4

स्वस्तिवाचकपूर्वक करे।[1] स्वर्ण या चादी से वृद्धि श्राद्ध करे। जो अन्न से (व्रीहि) श्राद्ध करता है वह चाण्डाल के समान ही कहा गया है।[2] अभ्युदयिक श्राद्ध के साथ नाम सस्कार करे।[3] तीसरे वर्ष अथवा पाचवे छठे सातवे या आठवे वर्ष मे चौलकर्म करे।[4] गर्भ के आठवे वर्ष मे ब्राहमण बालक का उपनयन करा दे। राजन्य (क्षत्रिय) का ग्यारहवे वर्ष मे तथा वैश्य का उपनयन बारहवे वर्ष मे कराये। इसके बाद कराने से द्विज सावित्री पतित होता है। उसे विद्या पाठ न कराये।[5] उपनयन के बाद गुरू के पास रहकर विद्याध्ययन करे और वेदग्रहण तक वहा रहे।[6] वेदाध्ययन के बाद गृह लौटकर सुशील और धर्मचारिणी कन्या से विवाह करे। [7]

इस प्रकार गर्भाधान से लेकर विवाह कर्म तक प्रमुख सस्कार निम्नलिखित थे--

1--गर्भाधान

2--पुसवन

3--सीमत कर्म

4--जातकर्म

5--नामकरण

6--चौलकर्म

7--उपनयन

8--विवाह

इन जातकर्म आदि सस्कारो से ही पवित्र और सस्कृत (शुद्ध) होकर (उपनयन एव वेद व्रतादि द्वारा) द्विजत्व प्राप्त कर वेदाध्ययन--सपन्न ब्रह्मकर्मरत शौचाचार--सहित, सम्यग्विद्याभ्यासी गुरूप्रिय नित्यव्रतपरायण (नियमो का पालन करने वाला) सत्यपरायण--व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाता है।[8] इसीलिए कहा गया है कि--

---

1--बृ ना पु--1/25/5
2--बृ ना पु--1/25/6
3--बृ ना पु--1/25/7--8
4--बृ ना पु--1/25/9
5--बृ ना पु--1/25/11--14
6--बृ ना पु--1/25/21--22
7--बृ ना पु--1/26/2--3
8--बृ ना पु--1/43/64--65

जन्मना जायते शूद्र सस्कारात्द्विज उच्चते।

अर्थात् जन्म से (ब्राह्मण) बालक भी शूद्र ही होता है। वह सस्कारो से ही ब्राहमण होता है। साधारण रीति से आज भी उपनयन सस्कार से पूर्व ब्राह्मण के पुत्र पर भी स्नान खान पान पर कोई नियम नियत्रण नही किया जाता है। परन्तु उपनयन के बाद स्नान सध्या गायत्री जप आदि तथा शौचाचार के नियम लागू हो जाते हैं। वस्तुत उपनयन के बाद ही उसका दूसरा जन्म होता हे। माता पिता शरीर के जनक है। परन्तु गुरू उनके मन बुद्धि शरीर और आत्मा को नई दिशा (लक्ष्य मनुष्य) की ओर फेरता है। वेदाध्ययन स्वाध्याय आचार तथा गुरूसेवा से उसका नया रूप बनता है जिसे ब्राहमण कहा गया है। वह अपना जीवन का सत्य दान त्याग अद्रोह (मित्रभाव) दया अहिसा कृपा और तप को समर्पण कर देता है।[1]

सत्य दानमथाद्रोह अनृशस्य कृपा घृणा।

तपस्या दृश्यते यत्र स ब्राहमण इति स्मृत ।।

<u>9—अग्निपुराणोक्त सस्कार वर्णन</u>[2]

अग्निपुराण मे अडतालीस सस्कारो का वर्णन किया गया है—

1—गर्भाधान

2—पुसवन

3—सीमन्तोन्नयन

4—जातकर्म

5—नामकरण

6—अन्नप्राशन

7—चूडा (कर्म)

8—ब्रह्मचर्य (उपनयन)

9—वैष्णवी

10—पार्थी

11—भौतिकी

1—बृ ना पु—1/43/66

2—अग्निपुराण 32/1 चत्वारिंशत्तथाष्ट च सस्कारान् कारयेद्।

12—श्रौतिकी

13—गोदान

14—स्नातकत्व (समावर्तन)

<u>सप्तपाक यज्ञ</u>

15—अष्टका

16—पार्वण

17—श्राद्ध

18—श्रावणी

19—आग्रायणी

20—चौत्री

21—आश्वपुजी

<u>सप्त हविर्यज्ञ</u>

22—आद्यान

23—अग्निहोत्र

24—दर्श

25—पौर्णमास

26—चातुर्मास्य

27—पशुबन्ध

28—सौत्रामणि

<u>सप्त सोमयज्ञ</u>

29—अग्निष्टोम [1]

30—अन्त्यग्निष्टोम

31—उक्थ्य

32—षोडशी

1—हिन्दी साहित्य सम्मेलन सस्करण मे इसे छोड दिया गया है। मोर सस्करण मे इसका उल्लेख है।

33—वाजपेय

34—अतिरात्र

35—अप्तोयमि

उत्तमयज्ञ

36—हिरण्याघ्रि

37—हिरण्याक्ष

38—हिरण्यमित्र

39—हिरण्यपाणि

40—हेमाक्ष

41—हेमाग

42—हेमसूत्रक

43—हिरण्यास्य

44—हिरण्याग

45—हेमजिह्व

46—हिरण्यवान्

47—अश्वमेध

48—सर्वेश[1]

इनके अतिरिक्त आठ आत्मगुण—गुणाश्चाष्टावद्य[2]

प्राणियो पर दया (सर्वभूतेषु) क्षान्ति (क्षमा) आर्जव (विनम्रता) शौच (पवित्रता) अनायास (शक्ति के अनुसार श्रम) मगलम् अकार्पण्य (उदारता) और अस्पृहा[3] (सन्तोष) है। इन सस्कारो से सस्कृत होकर भी रोगो से मुक्त होकर भुक्ति (भोग लौकिक) और मुक्ति प्राप्त करता है तथा मनुष्य देवतुल्य हो जाता है।[4]

स्कन्द पुराण मे चालीस सस्कार तथा आठ आत्मगुण मिलाकर अड़तालीस सस्कार गिनाये गये हैं। परन्तु यहा अग्निपुराण मे अन्तिम आठ उत्तम यज्ञ भी जोडकर सस्कारो को अड़तालीस पृथक सस्कार तथा आठ आत्मगुणो का उल्लेख है। विवाह तक प्रमुख सस्कार है। शेष यज्ञो का पुण्य पर्वों तथा अवसरो पर

1—अग्निपुराण—32/1—9 (2)
2—अग्निपुराण—32/9 (2)
3—अग्निपुराण—32/10—12
4—अग्निपुराण—32/12

यज्ञ और श्राद्ध मे विधान किया गया है।

इन सस्कारो का विवरण न स्कन्द पुराण ने दिया है और न अग्निपुराण मे ही इनका विवरण दिया गया है। डॉ० काणे ने भी इनका वर्णन नहीं किया। डॉ० पाण्डे (हि स) ने केवल सोलह सस्कारो का ही वर्णन किया है। डॉ० ज्ञानी ने भी इनका विवेचन नही किया है। उनके अनुसार इन सस्कारो मे प्राय सभी यज्ञो की गणना कर ली गयी है।[1]

आगे अन्य स्थलो पर भी अग्निपुराण मे अडतालीस सस्कार का उल्लेख है।[2] यहा पर हमे उपनयन के स्थान पर ब्रह्मचर्य और विवाह के स्थान पर स्वधर्मचारिण्यायोग[3] का उल्लेख मिलता हैं। परन्तु पीछे उल्लिखित उत्तम यज्ञो (स० 36 से 48 तक) का उल्लेख नही है। साथ ही यहा पाच पाक यज्ञो[4] का उल्लेख है। इस प्रकार कुल मिलाकर चालीस सस्कार तथा आठ आत्मगुण मिलाकर अडतालीस सस्कार ही ठीक हैं। इनका नाम निम्नलिखित है–

<u>अड़तालिस सस्कार (शुद्ध) तालिका</u>

1–गर्भाधान

2–पुसवन

3–सीमन्तोन्नयन

4–जातकर्म

5–नामकृति

6–अन्नप्राशन

7–चूडाकर्म

8–उपनयन सस्कार

9 से 12–वेदव्रत चतुष्टय

13–स्नान

14–विवाह (स्वधर्मचारिण्या योग)

15–देवयज्ञ

1–अग्निपुराण–स्टडी पृ० 244–245

2–अग्निपुराण–166/9 (2)

3–अग्निपुराण–166/11 (2)

4–अग्निपुराण–166/11–12 (1)

16—पितृयज्ञ

17—मनुष्ययज्ञ

18—भूतयज्ञ

19—ब्रह्मयज्ञ

20 से 26 सात पाक यज्ञ

27 से 33 सात हवि यज्ञ

34 से 40 सात सोम यज्ञ

41 से 48 आठ आत्मगुण।[1]

सम्भवत यह आचार्य कुमारिल भटट का ही युग था जब वैदिक यज्ञो का विशेष रूप से प्रचार हुआ था।

इस प्रकार मनुष्य का सस्कार द्वारा अधर्मकाय (अवगुणो) से भरी काया का परिष्कार कर धर्मकार्य मे परिवर्तन होता था। इस मानव शरीर का साध्य स्वर्ग या अपवर्ग ही है।

<u>10—विवाह</u>

ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ब्रह्मचारी गुरू की आज्ञा लेकर अपने घर वापस लौट आता था और वहा सदृश कुल की गुणवती कन्या के साथ उसका विवाह होता था।

हिन्दू समाज मे विवाह केवल वासना तृप्ति का साधन नही माना गया है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और पवित्र सस्कार रहा है। अग्नि को साक्षी मानकर पति—पत्नी दोनो ही लौकिक कार्य के लिए एक नये जीवन मे प्रवेश करते हैं। यही से मानव जीवन का कर्मयोग (गृहस्थ आश्रम) प्रारम्भ होता है।

सहधर्मचारिणी (पत्नी) के गार्हस्थ जीवन के धर्मों और कर्तव्यो के पालन का विशेष फल मिलता है।[2] इससे ही सन्तानोत्पत्ति द्वारा वश वृद्धि होती है तथा गृहस्थ धर्म मे सन्तान (पुत्र) द्वारा ही पितृकर्म (तर्पण और श्राद्ध) होता है। इसके अभाव मे पितृगण अतृप्त और दु खी रहकर प्रेतयोनि मे भटकते रहते हैं।

<u>विवाह का महत्व</u>—

हिन्दू समाज मे गृहस्थाश्रम का विशेष महत्व रहा है। जो लोग मनुष्ययोनि मे जन्म लेकर गृहस्थ आश्रम के धर्म का पालन नही करते है वे नरकगामी होते हैं। गृहस्थाश्रम की प्राप्ति ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात

1—अग्निपुराण—166/9 (2)—17 (1)

2—विष्णुपुराण—3/10/26 सहधर्मचारिणी प्राप्त गार्हस्थ्य सहितस्तया।
समुद्रवहेद् ददात्येतत्सम्यगूढ महाफलम्।।

होती है। इससे ससार मे प्रजावृद्धि होती है। गृहस्थाश्रम के बिना ससार की वृद्धि नही हो सकती। गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ विवाह से होता है और विवाह से ही पुत्र की उत्पत्ति होती है। जो अपने माता--पिता को पुत नामक नरक से बचाता है वह पुत्र कहलाता है। अत विवाह अत्यन्त आवश्यक सस्था है। शास्त्रो मे इसीलिए पुत्र लाभ की प्रशसा की गयी है--

अत कर्ता तु शास्त्रेषु सुतलाभ प्रशसित ।[1]

विवाह का महत्व अर्थात पत्नी सयोग धर्मपालन करने के लिए ही माना गया है। पत्नी के बिना गृहस्थ के कर्मों का सम्यक पालन सभव ही नही है। इससे कुलधर्म और कुल भी क्षीण हो जाता है।

स्वधर्म पालन मे भी स्त्री का सहयोग आवश्यक है पति--पत्नी सयोग (विवाह) से ही पुत्रोत्पत्ति होती है और पुत्र ही वशधर होता है। विवाह के बिना वह तीन ऋणो से भी मुक्त नही हो सकता और न वह पचयज्ञो का ही सम्पादन कर सकता है। पुराणो मे कई आख्यान हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पत्नी के बिना पितृकार्य (श्राद्ध और तर्पण आदि) भी नही हो सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि गृहस्थ धर्म के पालन के लिए विवाह करना अत्यावश्यक है। विवाह के महत्व के कारण ही हिन्दू समाज व्यवस्था मे इसे एक पवित्र और महत्वपूर्ण सस्कार माना गया है। जिसको गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करने तथा सामाजिक धर्मों एव कुल धर्मों को पालन करने की इच्छा हो वह विवाह कर ले--

गार्हस्थ्यमिच्छन् भूपाल कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।[2]

विवाह धर्मविधान पर आधारित था। स्त्री या पुरूष की स्वेच्छाचारिता एव पाशविक वृत्ति का यहा अभाव था। वर वधू के गुण दोषो का विचार करना तथा सगोत्र सपिण्ड आदि नियमो का पालन करना भी आवश्यक माना गया था।

विष्णु पुराण मे कन्या के दोषो पर विशेष विचार किया जाता है। यदि विवाह करना हो तो पुरूष को अपने से तृतीयाश आयु वाली कन्या से विवाह करना चाहिये। अधिक या अल्पकेशवाली अतिकृष्णा (बहुत काली) भूरे रगवाली अधिक दुबली रोगी अगहीन और दुष्ट स्वभाव वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिये ।[3]

गृहस्थ की न्याय विधि (वैदिक विधि) से ही विवाह करना चाहिये--

1--मत्स्यपुराण (जीवानद स)--153/154 (2)

2--विष्णुपुराण--3/10/13 (2)

3--विष्णु पुराण--3/10/16--20

गृहस्थश्चोद्वर्हत कन्या न्यायेन विधिना।[1]

ऐसे विवाह आठ प्रकार के कहे गये है—ब्राह्म देव आर्ष प्राजापत्य (प्रशस्त) असुर गन्धर्व राक्षस और पैशाच (अप्रशस्त)[2]

इनमे से जिस विवाह को जिस वर्ण के लिए महर्षियो ने धर्मानुकूल (न्यायोचित) कहा है उसी विधि (प्रकार) से विवाह करना चाहिये।[3] इस प्रकार वह न्याय विधि के अनुसार विवाह द्वारा सहधर्मचारिणी (पत्नी) प्राप्त कर गृहस्थ धर्मों का भली प्रकार से सम्पादन करने मे सफल होता है।[4]

विवाह के प्रकार एव उनका विवरण—

मनु आदि धर्मशास्त्रकारो के अनुसार विवाह आठ प्रकार[5] के प्रचलित थे—

1—ब्रह्म

2—दैव

3—आर्ष

4—प्राजापत्य

5—आसुर

6—गान्धर्व

7—राक्षस तथा

8—पैशाच

इनका विवरण निम्नलिखित है—

ब्राह्म—

उत्तम कुल और युक्त वर को बुलाकर कन्या का दान ब्राह्म विवाह कहलाता है।[6] इस विवाह मे कन्या को वस्त्र आभूषणो से सुसज्जित कर कन्यादान किया जाता है।[7]

दैव—

1—विष्णु पुराण—3/10/23 (2)
2—विष्णु पुराण—3/10/24
3—विष्णु पुराण—3/10/25
4—विष्णु पुराण—3/10/26
5—अग्निपुराण—154/9—11 मनुस्मृति 3/27—34
6—अग्निपुराण—154/9 (1) आहूयदान ब्राह्म स्यात्कुलशीलयुताय तु।
7—मनुस्मृति—3/27 आच्छाद्य ।

इसी प्रकार ऋत्विज को कन्यादान करना दैव विवाह कहलाता है।[1] अग्निपुराण का पाठ कुछ अशुद्ध और अस्पष्ट है। परन्तु यहा भी कन्या प्रदान को नित्य (दैव) कहा गया है।

नित्य कन्या प्रदानत[2]

<u>आर्ष</u>–

दो गायो के देने से (गोमिथुनादानाद्) जो विवाह होता है वह आर्ष विवाह[3] कहलाता है। ऐसा भी कथन है कि वर से गोमिथुन लेकर कन्या दी जाती है यह विवाह आर्ष विवाह होता है।

<u>प्राजापत्य</u>–

कन्या और वर से यह कहकर कन्यादान करे कि तुम दोनो एक साथ धर्म का आचरण करो। इस प्रकार सत्कार पूर्वक किये गये कन्यादान को प्राजापत्य विवाह कहते हैं।[4] अग्निपुराण के अनुसार प्रार्थना करने पर जो कन्या धर्म के लिए दी जाती है उसे प्रजापत्य विवाह कहते हैं।[5]

<u>आसुर</u>–

वर के माता पिता आदि तथा कन्यो को यथा शक्ति धन देकर इच्छापूर्वक कन्यादान को आसुर विवाह कहा जाता है।[6] अग्निपुराण के अनुसार यह विवाह शुल्क देने से होता है अत यह मन्द है।[7]

<u>गान्धर्व</u>–

वर और कन्या के परस्पर वरण पर होने वाला विवाह गान्धर्व विवाह कहलाता है।

गान्धर्वो वरणान्मिथ ।[8]

यह स्वेच्छन्दकामियो का सयोग कहा गया है।[9] यह तो और भी मन्दतर है। परन्तु इस सबध को मान्यता देकर नियमानुकूल कर लेना ही था।

<u>राक्षस</u>–

युद्ध मे अपहरण कर व्याह लेने की क्रिया को राक्षस विवाह कहा जाता है–

1–मनुस्मृति–3/8

2–अग्निपुराण–154/9 (2)

3–अग्निपुराण–154/10 (1) मनु0–3/29

4–मनुस्मृति–3/30 सहोभौचरताधर्ममिति वाचानुभाष्यच।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्योविधि स्मृत ।।

5–अग्निपुराण–154/10 (2) प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्य सधर्मकृत्।

6–मनुस्मृति–3/31 ज्ञातिभ्यो द्रविण दत्वा कन्यायै चैव शक्तित।

7–अग्निपुराण–154/11–(1) शुल्केन चासुरोमन्द ।

8–अग्निपुराण–154/11 गान्धर्वो वरणान्मिथ ।

9–मनुस्मृति–3/32 इच्छयान्योन्यसयोग कन्यायाश्चवरस्यच।
गान्धर्व स तु विज्ञेयो मैथुन्य कामसभव ।।

राक्षसो युद्धहरणात्।[1]

मनु के अनुसार बलपूर्वक मारकाट कर घर से रोती चिल्लाती कन्या का हरण करना राक्षस विवाह है।

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्ती रूदती गृहात्।

प्रसह्य कन्याहरण राक्षसो विधिरूच्यते।।[2]

<u>पैशाच</u>—

छलपूर्वक कन्या का हरण पैशाच विवाह है। पैशाच कन्यकाच्छलात्।[3] मनु के अनुसार सोती हुई नशे मे बेहोश और प्रमादिनी को जहा मनुष्य न हो विषय करके प्राप्त होना पैशाच विवाह है और इसे पापिष्ठ (पाप का मूल) कहा गया है।[4]

इन विविध विवाह विधियो से समाज के नैतिक (चरित्रिक) आदर्श तथा पराभव का भी आभास मिलता है।

<u>विवाहोत्सव</u>—

विवाहोत्सव के समय यज्ञ होम विशेष कर ग्रहयज्ञ (नवग्रह पूजन) करना भी पवित्र कर्म कहा गया है।[5]

गृहदेश (आगन) मे मडल की रचना करने के बाद उसमे कुण्ड बनाकर चार ऋत्विजो द्वारा लक्ष होम करने के बाद शान्तिपाठ (शाति प्रयच्छ मे) अर्थात् इस कार्य मे विघ्नशान्ति हो करना चाहिये।[6] इस उत्सव का धार्मिक और सामाजिक महत्व था।

इसमे यज्ञ होम देवपूजन दान (कन्यादान) आदि के अतिरिक्त सगीत (गीत वाद्य नृत्य) तथा बधु—बान्धवो का मेल मिलाप भी होता है। मण्डप की रचना मे भी चित्र कला की प्राचीन परम्परा की झलक मिलती है।

ऊपर वर्णित विवाहो के विविध रूपो से यह सिद्ध होता है कि स्त्री पुरूष के यौन सबध का आधार

1—अग्निपुराण—154/11 (2)
2—मनुस्मृति—3/33
3—अग्निपुराण—154/11 (2)
4—मनुस्मृति—3/34
5—अग्निपुराण—167/32
6—अग्निपुराण—167/32—36

भी विवाह ही था। जिस किसी प्रकार से भी सबध हो उसे विवाह की गाठ से बाधकर जीवन पर्यन्त निर्वाह करना आवश्यक था।

राजनैतिक जीवन मे स्वयवर प्रथा भी प्रचलित थी।

स्वयवर प्रथा–

रामायण के अनुसार सीता का स्वयवर हुआ था और राम ने उन्हे वीर्यशुल्क[1] (पराक्रम) द्वारा जीता था। काशीराज की पुत्रियो अम्बिका और अम्बालिका को स्वयवर से भीष्म जीतकर लाये थे जिन्हे उन्होने चित्रागद और विचित्रवीर्य के साथ ब्याह दिया।[2] पाचाल राज्य मे द्रौपदी के स्वयवर मे द्रौपदी को पाचो पाण्डवो ने प्राप्त किया था।[3] तपस्वी कण्डुमुनि और अप्सरा प्रम्लोचा का सबध गन्धर्व विवाह कहा जा सकता है। इन दोनो से मारिषा नाम की कन्या का जन्म हुआ था।[4] कण्डू मुनि गोमती (गौतमी) तट पर तपकर रहे थे इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा था। वे उसके रूप पर मुग्ध होकर उसका हाथ पकड़कर (पाणिग्रहण) अपनी कुटी के भीतर ले गये और वहा उसके साथ वर्षों तक सम्भोग करते रहे। इसमे दोनो कण्डु और प्रम्लोचा की इच्छा से ही सम्भोग हुआ था।[5] अत इसे गन्धर्व विवाह ही कहा जाना चाहिये।

अग्निपुराण मे भी रामायण का वर्णन करते हुए स्वयवर का उल्लेख है। जनक के यज्ञ मे विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण भी यज्ञ देखने गये थे। वहा भगवान राम ने शिव धनुष पर डोरी चढाकर वीर्यशुल्क से सीता को प्राप्त कर विवाह कर लिया था। यह स्वयवर विवाह ही था। समुद्र गुप्त ने भी शुल्क (पराक्रम) से दत्ता देवी को प्राप्त किया था।[6]

असगोत्र–असप्रवर विवाह–

अधिकाशत सवर्ण विवाह ही प्रचलित थे यही धर्मशास्त्रीय विवाह विधि भी थी।[7] समान गोत्र कुल की कन्या के साथ विवाह नही होता था।[8] पिता की ओर से सात पीढी और माता की ओर से पाच पीढी

1–अग्निपुराण 5/11–12 धनुरापूरयामास लीलया स बभन्जतत्।
वीर्यशुल्कास जनक सीता कन्यात्वयो निजाम् ददौ रामाय ।

2–अग्निपुराण–13/7

3–अग्निपुराण–13/14

4–अग्निपुराण–18/26–27

5–विष्णुपुराण प्रथम अ 15

6–एरणस्तम्भ लेख–पौरूषपराक्रमदत्ता शुल्क।

7–क मनुस्मृति–3/4
ख याज्ञवल्क्य–1/53

8–अग्निपुराण–154/8 (1) नैकगोत्रा तु वरयेन्नेकर्षिया च भार्गव।

पूर्व से सम्बद्ध स्त्री पुरूष मे विवाह हो सकता है।[1]

अनुलोम प्रतिलोम विवाह–

उच्च वर्ण के पुरूष का निम्न वर्णीय कन्या से विवाह सबध को अनुलोम विवाह कहते हैं।[2] निम्न वर्ण के पुरूष का उच्चवर्ण की कन्या से विवाह–सबध को प्रतिलोम विवाह कहते हैं।[3]

अनुलोम और प्रतिलोम विवाहो से ही सकर जातिया उत्पन्न हुईं।

11–कुल, कुटुम्ब परिवार

समाज मे व्यक्ति अकेला रह नही सकता। वृहदारण्यक उपनिषद् मे कहा गया है कि वह (भगवान परमात्मा) अकेला था उसका मन रमण न कर सका अत उसने दूसरे की इच्छा की–

स एकाकीनरमयत द्वितीयमिच्छत् इस प्रकार उस एक ईश्वर से ही यह विश्व भी बन गया। सृष्टि के समय मनु और शतरूपा एक ही पुरूष के दो भाग थे आधा पुरूष और आधा स्त्री। पुरूष मनु से ही मानव वश (मनुष्यो) का उदय तथा विस्तार हुआ तथा स्त्री (शतरूपा) से ही स्त्रियो की उत्पत्ति और वृद्धि हुई।

पुरूष (व्यक्ति भी स्त्री सयोग से सन्तानो (पुत्रादि) को जन्म देता है। इसी प्रकार पुत्र पौत्र प्रपौत्र आदि से उसका परिवार भी बढता जाता है। इनको ही मिलाकर कुल बनता है। इनसे समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है।

अत स्पष्ट है कि मनुष्य समाज अपने को विभिन्न परिवारो कुलो तथा वशो मे सघटित करता है। और इनके क्रियाकलापो से ही समाज और राष्ट्र की उन्नति होती है।

पुराणो के पचलक्षणो मे सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्ग (प्रलय के पश्चात पुन सृष्टि) वश (मानव वश) मनु से उद्भूत क्षत्रिय राजवश मन्वन्तर अन्य मनुओ का वर्णन तथा वशानुचरित) ऋषिवशो तथा प्रमुख उदार महापुरुषो के चरित्र आख्यान यथा रामचरित कृष्णचरित ययाति चरित ध्रुवचरित आदि (जिनसे समाज को विशेष चेतना और प्रबोध मिलता है) का वर्णन समाज के इन अगो के महत्व पर प्रकाश डालता है।

1–क अग्निपुराण–154/8 (2)
  ख विष्णु पुराण–3/10/23
  ग याज्ञवल्क्य–1/53
2–याज्ञवल्क्य–1/92
3–याज्ञवल्क्य–1/94

कुल–

प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन मे कुल और कुटुम्बो का विशेष महत्व रहा है। यह जातीय सगठन परस्पर प्रेम और सद्भाव तथा सहयोग पर आधारित था। यही सयुक्त परिवार की भाति सयुक्त होकर कुल धर्म का भी पालन करता था। इस प्रकार सयुक्त परिवार व्यवस्था की भाति कुल परम्परा की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक किसी न किसी रूप मे विद्यमान है।

भगवदगीता के प्रथम अध्याय मे अर्जुन ने कुलधर्मो के महत्व को प्रतिपादित किया है।[1] रामायण से भी हमे यही शिक्षा मिलती है। मन्थरा की कुबुद्धि ने कैकेयी की शुद्धबुद्धि को भी विकृत कर दिया। दशरथ के परिवार मे कलह मच गयी परन्तु श्रीराम भरत कौशल्या सुमित्रा तथा लक्ष्मण की सुबुद्धि ने कुल को नष्ट होने से बचा लिया।

महाभारत से ज्ञात होता है कि दुर्योधन तथा उसके साथियो की कुबुद्धि ने कौरव कुल को नष्ट कर दिया। यही दशा रावण के कुल की भी हुई थी।

अत परिवार वश और कुल की समुन्नति मे सद्भाव धर्मबुद्धि और सहयोग तथा सहानुभूति की परम आवश्यकता होती है।

भार्या और कुल–

जो पति एव पति के कुल द्वारा भरण प्राप्त करे उसको ही भार्या कहते हैं। परिवार को भोजन आदि देने के कारण भी उसे भार्या कहते है। आज भी अधिकाशत यह प्रथा प्रचलित है कि जब सभी कुल (घर) के लोग भोजन कर लेते हैं तब ही भार्या भोजन करती है। इस प्रकार सत्य ही कहा गया है कि भार्या ही कुल बनाने और बढाने वाली होती है–

भार्या कुलडकरी प्रजा सवर्द्धयिष्यति।[2]

दम्पत्ति (पति और पत्नी) विशेषकर भार्या अपने गृहस्वामी के साथ नारी धर्म का पालन करते हुए सभी को सतुष्ट और सुखी बनाकर कुल को उन्नति पथ पर ले जाती थी।

कुलधर्म–

प्राचीन भारतीय समाज मे कुल धर्म का विशेष महत्व रहा है। सदाचार और धर्म एव पुण्य कर्म करने से ही कुल भी पवित्र होता है– विमल सकुल ।

अग्निपुराण मे कहा गया है कि जो इस पवित्र पुराण का विशेषकर इसमे वर्णित दशावतार (मत्स्य

1–भगवदगीता–1/40
2–अग्निपुराण–18/27

कूर्म वराह नरसिह वामन परशुराम दाशरथिराम कृष्ण (वासुदेव) बुद्ध और कल्कि के अवतार) का वर्णन पढेगा या श्रवण करेगा उसकी समस्त कामनाये पूरी होगी वह निर्भय होगा तथा कुल सहित स्वर्ग जायेगा।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दुष्कर्म से ही कुल नष्ट हो जाता है और सुकर्म से उसकी कीर्ति और यश बढते है।

परिवार मे माता पुत्र–पुत्री आदि के आचार पर ही कुल मर्यादा सुरक्षित रहती है। कृष्ण की सोलह हजार पत्निया और हजारो पुत्र रहे होगे जो सभी यादव कहलाये। यह यादव कुल इतिहास प्रसिद्ध है। तीन करोड अग्निपुराण मे इनकी सख्या तीन करोड बतायी गयी है।[2]

कुल और कुलधर्म की रक्षा करना ही कुल के सदस्यो का धर्म है इसको कुलधर्म या कुलमर्यादा कहते है। रामायण महाभारत और पुराणो की कथाओ तथा वश–वर्णन का यही सार है कि कुल धर्म की रक्षा हो।

<u>कुटुम्ब, वश, परिवार</u>–

एक व्यक्ति के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ उसके विवाह से होता है (पत्नी सयोजनम्)। विवाह से ही उसके द्वारा पत्नी से पुत्र या पुत्री (सतान) उत्पन्न होती है और फिर धीरे–धीरे उसका परिवार पुत्र पौत्रादिको से बढता है। कई परिवारो को मिलाकर ही वश और कुटुम्ब का निर्माण होता है। जिनमे सामाजिक एकता और सहयोग के अतिरिक्त उपनयन विवाह आदि सस्कारो तथा समाजोत्सव मे मेल मिलाप होता है।

वश या कुटुम्ब और्ध्वदेहिक सस्कारो (यथा अग्नि सस्कार उदक सस्कार आदि) मे भी सम्मिलित होता है। प्राचीन काल मे कुटुम्ब और सवशज लोग क्षौरकर्म भी करवाते थे, जो कम मात्रा मे आज भी होता है परन्तु आधुनिकता के प्रभाव से ये प्रथाये मिटती जा रही हैं।

<u>पुत्र और कुलवृद्धि</u>–

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पुत्रोत्पत्ति से ही परिवार और कुल की वृद्धि होती है। अत प्राचीन काल मे औरआज भी समाज मे पुत्र का महत्व है। पुत्र को पुत् नामक नरक से पिता को बचाने वाला कहा गया है।[3] अत पिता के लिए उसकी मृत्यु के बाद श्राद्ध आदि सस्कार विशेषकर गया श्राद्ध का महत्व पुराणो मे वर्णित है। पुत्र का महत्वपूर्ण कार्य पिता की सेवा करना था।

1–अग्निपुराण–16/12–13

2–अग्निपुराण–276/1–8

3–गरूण पुराण–1/127/4 (1)

जिस प्रकार एक सुगन्धित वृक्ष सम्पूर्ण उपवन को सुगन्धित कर देता है उसी प्रकार एक गुणवान विद्वान और धार्मिक पुत्र अपने कुल के यश को बढाता है। कुपुत्र ही कुल को निन्दित बनाकर नष्ट कर देता है।

12–आचार–

आचार ही प्रथम धर्म अथवा धर्म का मूल है– आचार प्रथमो धर्म । जो श्रुति तथा स्मृति (धर्मशास्त्र) पर आधारित है।[1] इसीलिए समाज मे धर्माचार (धर्माचरण) और शील या सदाचार का विशेष महत्व रहा है। मनु का कथन है कि घृति क्षमा दम (सयम) अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह (लज्जा) विद्या सत्य व्यवहार सत्यपालन सत्यवचन आदि) और क्रोधरहित होना ही धर्म के दस लक्षण कहे गये हैं।[2]

इन दस धर्मों से मनुष्य के शरीर की शुद्धि होती है जिससे वह धर्मपथ पर चलकर मोक्ष की ओर अग्रसर होता जाता है।

सदाचार–

प्रात उठकर मनुष्य को धर्म अर्थ एव धर्म–अधर्म और अपने कर्तव्यो पर विचार करना चाहिये। ससार और परलोक मे भी श्रेयपथ पर उसका केवल सदाचरण तथा धर्म ही साथ देता है। अत नित्य ही मनुष्य को धर्म की वृद्धि करनी चाहिये।[3]

धर्म आचरण और धर्मश्रवण से ही विवेक और सद्बुद्धि का विकास होता है। धर्मग्रन्थो के पठन और श्रवण से ही धर्म बुद्धि का विकास तथा धर्माचरण होता है। मनु आदि (धर्मशास्त्रकारों) ने भोग और मोक्ष (भुक्ति–मुक्ति) प्राप्त करने के लिए ही अहिसा सत्य दया प्राणियो पर अनुग्रह तीर्थ दान ब्रहमचर्य मत्सर रहित होकर देव ब्राहमण तथा गुरू की सेवा एव सभी धर्मों का पालन करना श्रेयष्कर बताया है।[4]

भगवान कृष्ण के सदुपदेश (गीता) के आधार पर अग्निपुराण भी बताता है कि दु सग से हानि और सत्सग से मोक्ष मिलता है। मनुष्य का जीवन क्षणिक है आचार का सबध सत्कर्म और शीलयुक्त आचरण से ही है।[5]

1–देवी भागवत पुराण–11/2/6

2–अग्निपुराण–161/17 घृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह।
ह्री विद्यासत्यमक्रोधो दशक धर्म लक्षणम्।।

3–देवी भागवत पुराण–11/1/5–8

4–वर्णाश्रमतेराणा ते धर्मान् वक्ष्यामि सर्वदान्।
मन्वादिभिर्निगदितान् वासुदेवादितुष्टिदान्।। अग्निपुराण 151/2–6 (1)

5–अग्निपुराण–381/10–11 39–49

13–आहार एव पेय–

अग्निपुराण का मध्यकाल सकट का युग था। म्लेच्छो और आर्यों के सम्पर्क से समाज मे परिवर्तन हुए। धार्मिक क्षत्र मे तात्रिक उपासना का भी अत्यधिक प्रभाव था। अत जब पूजा तथा बलि मे देवताओ को प्रसन्न करने के लिए सुरा और मास का प्रयोग हुआ तो भोजन मे भी इन पदार्थों का प्रचार और प्रभाव बढा। परिस्थितियो तथा वातावरण के प्रभाव से समाज अछूता नही रह सका। म्लेच्छ दस्युओ के भारत मे आने और बस जाने से लोगो के आहार और आचार पर विशेष प्रभाव पडा। अग्निपुराण के अतिरिक्त भवभूति के ग्रन्थो विशेषकर उत्तर रामचरित मे हम समाज मे मास का प्रचलन पाते हैं।[1] राजशेखर के ग्रन्थो मे विशेषकर कर्पूरमन्जरी मे भी हम ऐसे ही विलासी समाज का दर्शन पाते हैं।[2]

पूर्व मीमासक आचार्य कुमारिल ने विधि हिसा (यज्ञो मे शस्त्रानुसार पशुहिसा) पर विशेष बल दिया था। हिसामय यज्ञो से भी मास भक्षण की प्रवृत्ति बढी यद्यपि मासादि को अभक्ष्य आहार कहा गया है। सामान्यत मासाहार जनप्रिय नही था।

तात्रिक उपासना पद्धति के प्रभाव से शेष सम्प्रदायो (कालमुख आदि) तथा शक्ति उपासना (विशेषकर योगिनी पूजा) मे सुरा व मास आदि का प्रयोग चल पडा जिसके प्रभाव से समाज अपने आपको न बचा सका। अग्निपुराण मे भैरवानन्द का उल्लेख हमे महाकवि भवभूति के मालती माधव नामक नाटक की ओर ध्यान दिलाता है। शमशान क्रियाये और ऐसी ही क्रियाये अग्निपुराण के धार्मिक जीवन मे प्रचुरता से देखने को मिलती है। इसीलिए इस वैष्णव पुराण को तामस पुराण भी कहा गया है।

आहार ही मनुष्य और पशु पक्षियो आदि के जीवन का मूलाधार है। आहार के बिना जीवित रहना कठिन ही नही असभव है। अत आहार मानव समाज की प्राथमिक आवश्यकता है।
सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य के आहार मे भी विकास होता रहा है। प्रारम्भिक युग मे जब वह पशुओ के समान रहता हुआ आखेट आदि करता था तो मास उसका मुख्य भोजन था परन्तु सभ्यता के विकसित होने पर वह कृषि से उत्पन्न अनाज वन्याहार (फल मूलकन्द) आदि से जीवनयापन करने लगा। इस प्रकार उसका आहार अन्न बना। परन्तु कुछ लोग मास का भी प्रयोग करते थे। फिर भी समाज मे मास का प्रयोग लोकप्रिय न था।

1–समासो मधुपर्क इत्यामाय बहुमन्यमान–उत्तररामचरितम् पृ० 212 शारदाशतक भवन इलाहाबाद।
2–मद्य मास पीयते खाद्यते च–कर्पूरमञ्जरी 1/23(3)

आहार ही जीवन की शक्ति का आधार है। भोज्य पदार्थों को निम्नलिखित अगो मे बाटा जा सकता है–

1–अन्नाहार

2–फलाहार

3–मासाहार

4–पेय (दुग्ध रस सुरा आदि)

<u>1–अन्नाहार–</u>

प्राचीन काल मे अन्नाहार ही भारतीय जीवन का प्रधान भोजन था। अन्न के साथ अन्य पदार्थ लवण शाक गुड (मिष्ठान्न) एव चावल (धान्य व्रीहिशलि) तथा दालो का भी प्रयोग होता था भोजन के साथ दधि दुग्ध और घृत का भी प्रयोग होता था।

कृषि द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के धान्यो (ओषधियो) की उपज होती थी। वन मे अपने आप ही उत्पन्न होने वाले वन्य अन्न थे। पक्वान्न पायस गुडोदन यूप और सत्तू लोकप्रिय आहार पदार्थ थे। तेल का भी प्रयोग होता था। कन्दम मूल और फल व्रतोपवास या तपस्वियो द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त किये जाते थे। अन्न के अतिरिक्त भोजन मे मास का भी प्रयोग किया जाता था।

<u>अन्न माहात्म्य–</u>

अन्न ब्रह्म।

अन्न ही इस पाच भौतिक शरीर का मुख्य आहार है। अनाज कृषि से उत्पन्न होते तथा कुछ बिना बोये हुए ही स्वय उगते थे यथा–नीवार। अन्न के साथ शाक[1] का भी प्रयोग होता है। व्रतोपवास के समय इसका तथा अन्य पदार्थों का भोजन वर्जित था। इसके स्थान पर दुग्धपान और फलाहार प्रिय आहार थे। साथ ही घृत पय[2] (दुग्ध–घृत) दधि (दध्याहार[3]) और दुग्धाहार प्रसिद्ध है। फलाहार भी प्रसिद्ध ही है।[4] गुड[5] भी खाया जाता था।

मास का प्रयोग प्रचलित था। परन्तु व्रतोपवास के समय वर्जित था।[6] सुरा और मद्यपान होता था।

1–अग्निपुराण–175/7

2–अग्निपुराण–175/16

3–अग्निपुराण–175/20 197/15

4–अग्निपुराण– 198/12 दुग्धाहारवान् स्वर्गो पन्चगव्याम्बुभुक तथा शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरी व्रजेत्।।

5–अग्निपुराण – 198/4 गुड व्रत ।

6(क)–अग्निपुराण– 176/6 कास्य मासाहार च चणक कोरदूषकम।
शाक मधु पराग च त्यजेदुपवसन्।।

(ख)–187/1–मास मैथुन वर्जित

कुम्भकर्ण घडो शराब पीता था। सभवत यह असत्प्रवृत्तिया वाले लोगो का ही पेय था।

अन्न आहार का महत्व–

आहार प्राणिमात्र की प्राथमिक आवश्यकता है। आहार निद्रा भय मैथुन मनुष्य तथा पशुओ के सामान्य गुण है।

आहारनिद्रा भयमैथुनञ्चसामान्यमेतत पशुभिर्नराणाम।[1]

परन्तु मनुष्य का आहार पशु के आहार से भिन्न ही होता है। मानव जीवन के मनन और चिन्तन का प्रारम्भ वन्य जीवन से हुआ और उसने अपना जीवन पशु आहार वन्य कन्द मूल फल और शाक आदि की ओर बढाया। यही कालान्तर मे तपस्वी जीवन का भोजन बना।

शरीर रक्षण के लिए भोजन की नितान्त आवश्यकता है। भोजन के बिना जीना भी कठिन है। इस प्रकार अन्य (भोजन) ही शारीरिक बल का आधार है। भारतीय जीवन मे अन्न का विशेष महत्व रहा है। अन्न को भगवान (पुरूषोत्तम–विष्णु) ही वैश्वानर (अग्नि) रूप मे पेट मे पचाता है।[2] आर्य कृषक थे। देश मे नदियो (सिन्धु–गगा) की घाटियो की उपजाऊ भूमि मे विविध अन्न उत्पन्न होते थे और कुछ बिना बोये हुए ही स्वत उत्पन्न होते थे। अत इनके दो भेद किये गये थे–

1– ग्रम्य (कृषि से उत्पन्न)

2–आरण्य (ये अरण्यो मे बिना बोये हुए उत्पन्न होते थे)

इनकी (ग्राम्यो की) सख्या सत्रह बताई गयी है। इनके निम्नाकित नाम हैं–ब्रीहि (धान) यव (जौ) गोधूम (गेहू) ऊणु (छोटे धान्य) तिल प्रियगु (कागनी) उदार (ज्वार) कोरइषा (कोदौ) सतीनक (छोटी मटर) माष (उडद) मुद्ग (मूग) मसूर निष्पाव (बडी मटर) कुलत्थ (कुलकी) आदक्य (अरहर) और चणक (चना) ये सत्रह अन्न[3] ग्राम्य[4] थे।

14–ग्राम्य, आरण्य और याज्ञिय औषधिया–

जो आरण्य यज्ञो मे काम आते थे वे याज्ञिक[5] कहलाते थे। ग्राम्य और आरण्य मिलाकर चौवह

1–भर्तृरिनीतिशतकम्

2–भगवद्गीता– 15/14 अह वैश्वनरा भूत्वा पचाम्यग्नि चतुर्विधम्।

3–विष्णुपुराण– 1/6/21–22

4–विष्णुपुराण– 1/6/23 (1) इत्येताओषाधीना तु ग्राम्याना जातयोमुने।।

5–विष्णुपुराण– 1/6/23 (2) 26(2)

याज्ञिक औषधिया थी–

1–व्रीहि

2–यव

3–माष

4–गोधूम

5–अणु

6–तिल

7–वियगु

8–कुलत्थ

9–श्यामाक (सावा)

10–नीवार (तिन्नपसरि के चावल जगलीचावल धान)

11–जर्तिल

12–गावेधुक

13–वेणुयव–(बास के पेडो के साथ या वेणु वन मे होने वाले जगली जौ)

14–मर्कटक

ये सभी अन्न यज्ञ सम्पादन हेतु ही प्रजा की वृद्धि के कारण थे।[1]

अग्निपुराण मे इनके भेदो का उल्लेख नही मिलता है किन्तु विभिन्न अन्नो (धान्यो) के नाम प्राप्त होते है। ये निम्नलिखित हैं–

यव गोधूम[2]

गोधूम

यव

व्रीहि[3]

तिल[4]

1–विष्णुपुराण– 1/6/23–26

2– अग्निपुराण –129/3 यवगोधूम धान्यकै।

3– अग्निपुराण –205/25

4– अग्निपुराण –205/25

शालि गोधूम तिल माष मुद्ग यव ब्रीहि नीवार श्यामाक कुलत्थ निष्पाव तथा सितसर्षय (पीली सरसो)[1]

सरसो तथा तिल का तेल भी बनता था।[2] एक अन्य स्थल पर तिल मुद्ग गोधूम कोद्रव नीचक देव धान्य शर्माधान्य शितधान्य ब्रीहि षष्टिक साठी–चावल–कलाय तिल यव श्यामक नीवार तथा गोधूम का व्रत मे सेवन करना हितकर कहा गया है।[3]

अन्नदान–

विप्तो को भोजन कराना। महत्वपूर्ण दान माना गया था।[4] उसके बाद ही दक्षिणा देने के पश्चात ही गृहस्थ को भोजन करना उचित था। द्वादशी व्रत के समय विप्त को यव (जौ) ब्रीहि (धान) देना पुण्य कर्म है।[5] फलो का भी दान देना पुण्य कहा गया है।[6]

उपवास आहार–

पापो से विमुख होकर गुणो (धर्मगुणो) के ससर्ग मे रहने को ही उपवास कहते है।[7] इस समय सभी भोगो का त्याग करना पड़ता है। उपवास के समय कासे के पात्र मास मसूर की दाल चना कोदौ मधु (मद्य) परान्न तथा स्त्री का त्याग करना ही श्रेयष्कर है।[8]

सामान्यत दधि घृत पय (दूध) इक्षु (गन्ना) और गन्ने से बने हुए (रस राब गुड) शाल[9] और मधु (शराब) तथा मास (मधुमास) प्रचलित थे परन्तु मधु और मास को त्याज्य कहा गया है।[10]

सुरापान[11] प्रचलित था। जैसा कि पान भूमि[12] (मदिरालय) के उल्लेख से सिद्ध होता है। उत्सवो के

1–अग्निपुराण –68/4–5
अग्निपुराण –95/60–61 (1)
गोधूमान सतिलान्माषान्मुद्गानप्याहरेद्यवान्।
नीवार०श्यामकानेव ब्रीहयोऽप्यष्ट कीर्तिता।।
2–अग्निपुराण– 214/30 तिलेषु यथातैलम्।
3–अग्निपुराण– 175/13–15
4–अग्निपुराण– 189/15 प्रदत्तदक्षिणो विप्रा सम्भोज्यान्न स्वय चरेत्।
5–अग्निपुराण– 190/2 (1) यवव्रीहियुत पात्र अर्पयेत्।
6–अग्निपुराण– 192/3 (2) फलानि दद्यात् ।
7–अग्निपुराण– 175/6 (1) उपवास स विज्ञेय सर्वभोगविवर्जिता।
8–अग्निपुराण– 175/6 (2)–8
9–अग्निपुराण– 175/15–16
10–अग्निपुराण– 175/17
11–अग्निपुराण– 372/12
12–अग्निपुराण– 9/5 नापश्यत्पानभुम्यादौ

समय मधुपान (मधुपानरतोत्सवै)[1] विशेष प्रचलित था। गौडी (गुड से बनी हुई) पैष्टी और माहवी (महुआ की बनी हुई) तीन प्रकार की सुरा का उल्लेख है।[2] मद्यप[3] (शराबी) का भी उल्लेख उसकी हीनता का बोधक है। मास और मद्य[4] प्रयोग किये जाते थे उन्हे स्वप्न मे देखना शुभ समझा जाता था। मछली (मत्स्य मास) का भी प्रचलन था।[5] ताम्बूल भक्षण किया जाता था।[6]

अग्निपुराण मे कथाये न हाकर धर्म दर्शन साहित्य और कला (मन्दिर प्रतिमा आदि) का विशेष वर्णन है। अत केवल व्रतो के विवरण अथवा धार्मिक क्रियाओ के साथ ही भक्ष्य भोज्य का उल्लेख मिलता है।

समाज मे कुम्भकर्ण सदृश लोग भी थे जो घडो मदिरापान कर भैसे का मास खाकर (पीत्वाघटसहस्रकमद्यस्य महिषादीना भक्षयित्वा)[7] सोते रहते थे।

भोज्य आहार (भक्ष्य) और पेय का भी विभाजन गुण (सावत्विक राजसिक और तामसिक) तथा स्वभाव के आधार पर किया गया था।

ऊपर के विवरण से भारतीय समाज मे प्रचलित विविध प्रकार के खाद्य और पेय (पानीय) पदार्थों के उल्लेख मिलते है। इनको मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त किया गया है–

1–भक्ष्य[8]

2–अभक्ष्य[9] (निषिद्ध भक्ष्य)[10]

भक्ष्य आहार के अन्तर्गत दुग्ध (क्षीर) दधि अन्न फल मधु (शहद) इत्यादि का प्रयोग किया जाता था और समाज मे अधिकाशत इनका प्रयोग प्रचलित है। इसके प्रतिकूल अभक्ष्य अर्थात निषिद्ध आहार मे मधु (शराब) मास मत्स्य एव लशुन[11] (लहसुन) तथा गृजन[12] वर्जित आहार थे। परन्तु सामाजिक तथा

1–अग्निपुराण– 337/30
2–अग्निपुराण– 372/12 गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधा सुरा।
3–अग्निपुराण– 371/31
4–अग्निपुराण– 84/1
5–अग्निपुराण– 117/46 मत्स्यैर्मासद्वयम् ।
6–अग्निपुराण– 121/11 175/9
7–अग्निपुराण– 10/11
8–अग्निपुराण– 170/30
9–अग्निपुराण– 170/30 भक्ष्याभक्ष्य विशुद्धयर्थं ।
10–अग्निपुराण– 173/37
11–अग्निपुराण– 168/17
12–अग्निपुराण– 168/17

धार्मिक जीवन मे मधुमास का प्रयोग किया जाता था किन्तु यह साधारण समाज मे अभोज्य[1] ही माने जाते थे। गाय भैस और बकरी का दूध छोडकर अन्य पशु का दूध नही पीना चाहिये। खरगोश स्याही घडियाल गेण्डा और कछुआ ये पाच नाखूनो वाले भक्ष्य कहे गये हैं। शेष पशुओ का भक्षण वर्जित है। पठिन (पाढिन) रोहू और सिही मछलियो को खाना चाहिये।[2]

भोजनागार–

घर मे भोजनागार भी होता था और उसकी स्वच्छता भी नित्य होती होती थी। स्वच्छ और सुन्दर स्थान मे भोजन करना स्वास्थ्यवर्धक होता है। ग्राम जीवन मे आज भी भोजनागार नित्य साफ किया जाता है।

भोजन करने के भी नियम थे। भोजनागार मे आसन पर बैठकर ही भोजन करते थे।[3] भोजन बनाने वाले को सूपकृत[4] (सूपकार) कहते थे।

सूप का अर्थ रस है इस शब्द का प्रयोग अशोक क अभिलेख मे भी मिलता है।[5] महाराज अशोक के भोजनागार (महानस) मे बहुत से प्राणी (पशु) सूप के लिए (सूपार्थाय) मारे जाते थे।

पानीय[6]–पेय–

पेय पदार्थों मे रस[7] (इक्षुरस) एव दुग्ध (क्षीर) एव जल ही प्रमुख थे। दुग्ध के लिए ही धेनु का महत्व था (दुग्धा गौ) गोदोहन महत्वपूर्ण कर्म है।

अमृत और विष भी पेय थे। अमृत जीवन है और विष मृत्यु। शकर भगवान ने समुद्रमथन से प्राप्त हलाहल विष का पान किया था।[8] विषपान मृत्यु का साधन है। यह आत्महत्या और पाप है अत यह साधारण पेय नही है जिसे नीलकण्ठ ही पचा सकते थे। वारूणी एक शराब है जिसका प्रयोग भी समाज मे होता रहा है। इस समय मधुपान भी होता था। राक्षस रक्तपान भी करते थे।[9]

15–विहार (विनोद क्रीड़ा)–

मानव जीवन सुख चाहता है और सुख को जन्म देने वाले विविध साधनो को वह जुटाने मे लगा

1–अग्निपुराण– 173/38
2–अग्निपुराण– 168/18–21
3–अग्निपुराण– 77/8
4–अग्निपुराण– 13/22
5–अशोकीय शिलालेख
6–अग्निपुराण– 211/46
7–अग्निपुराण– 17/5
8–अग्निपुराण– 10/11
9–अग्निपुराण– 7/7 (2) तेषायद्रुधिर सोष्णापायमिष्यसिमायदि।

रहता है। सुख विविध है और उसके साधन भी अनन्त हैं।

कान से मधुर सगीत नेत्र से रूप नृत्य और अभिनय हाथो से क्रीडाये (था कन्दुक क्रीडा) पौरो से मनोरम स्थलो मे विहार और घ्राण से सुन्दर सुखद सुगन्ध वायु तथा शरीर से स्पर्श आदि सबको प्रिय है। ये मनुष्य के मन कौ सुख देने वाले मनोविनोद या मनोरजन के साधन हैं। ऋग्वेद युग मे घोडो बैलो एव रथो की दौड–होड धूत क्रीडा और सोमपान आदि विनोद के साधन थे। ये कालान्तर मे भी प्रचलित रहे।

अशोक ने अपने आठवे शिलालेख मे कहा है कि पहले राजा लोग विहार यात्रा पर जाया करते थे। जैसे मृगया आदि अनेक मनोविनोद के अभिराम साधन थे।[1]

सामान्य समाज मे गान्धर्व (सगीत) वाद्य नृत्य अभिनय तथा समाजोत्सव आदि प्रचलित थे।[2] राजकुमार (महाराज) खारवेल ने अपने कुमार काल मे कुमार क्रीडाये भी की थीं। इन क्रीडाओ मे मृगया अवश्य ही रही होगी।[3] महाक्षत्रय रूद्रदामन घोडा हाथी रथचर्या असिचर्म नियुद्ध[4] आदि युद्ध प्रिय क्रीडाओ मे दक्ष था। ये राजकुमार की अभ्यास क्रीयाये (क्रीडाये) ही थी।[5]

दशपुर नगर के घर गान्धर्व शब्द से मुखरित होते थे और नगर के उपवनो मे पुरागनाये अलकृत होकर विहार करती थी।[6] श्रीराम भी माया मृग (मारीच) के पीछे–पीछे धनुष बाण लेकर दौडे थे।[7]

इस प्रकार सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि नर–नारी विविध प्रकार के विहार और उत्सव तथा सगीत नृत्य नाटक आदि मे अपना मनोविनोद करते थे।

आमोद–प्रमोद

मानव समाज मे मन को प्रसन्न रखना व्यक्ति और समाज कमे लिए परमावश्यक है। भगवद्गीता मे कहा गया है–

1–अशोक–आठवा शिलालेख–प० 1–2 अतिकातर राजानोविहारयाता त्रियासुएतमगप्या अआनि
एतारिसानि अभिरमकानि अहुसु ।

2–खारवेल– हाथी गुम्फा अभिलेख पक्ति 4–5
ततियेपुनवसे गधववेद–बुधोदयनतगीति वदित सदसनाहि
उसव समाज कारा पर्नाह च कीडापयति नगरिं।

3–खारवेल का हाथी गुम्फा अभिलेख पक्ति 2

4–रूद्रदामन का जूनागढ शिलालेख पक्ति 13

5–कुमार गुप्त प्रथम बन्धु वर्ग का मन्दसोर अभि श्लोक 11

6–कुमार गुप्त प्रथम बन्धु वर्ग का मन्दसोर अभि श्लोक 9

7–अग्निपुराण– 7 / 15 (2)–20

प्रसादे सर्वदु खाना हानिरस्योपजायते।[1]

अर्थात् प्रसाद या प्रसन्नता से दु ख भाग जाता है। भगवद् कीर्तन गाना बजाना जागरण नृत्याभिनय एव खेलकूद आदि मन को प्रसन्न रखने के लिए आवश्यक है।

स्वभावत मन एकाकीपन से ऊब जाता है और वह आनन्दित नही होता। अत समाज मे विविध प्रकार के मन बहलाने (मनोरजन) और विहार के साधन है। लिङ्गाधिपति खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख मे कहा गया है कि गन्धर्व-वेद-वेत्ता सम्राट खारवेल प्रजानुरञ्जन के लिए-(दपनत गीत वादित उसव समाज) अभिनय नृत्य गायन वादन आदि स युक्त उत्सव और समाज मे मिलन मेला सभा गोष्ठी आदि साधनो की व्यवस्था करता था। इस प्रकार समाज मे लोगो के आमोद-प्रमोद के लिए समाज और उत्सवो का आयोजन किया जाता था। सगीत गीत नृत्य और वादन द्वारा नर-नारी आनन्द मनाते थे। मुख्यत तीन प्रकार के वाद्य यन्त्र थे-हाथ से आघात चोट थपक आदि वाले यथा-मृदग तबला ढोल आदि एव मुह वायु के आघात (फूकने) से यथा-बासुरी (वेणु) आदि और तारो को उगलियो से झनझनाने (बजाने) से यथा वीणा और सितार आदि वाद्ययन्त्र।

वैदिक युग मे रथो की दौड अश्वो की दौड या मल्लयुद्ध आखेट आदि क्रीड़ा के साधन थे। गायन (मत्र-गीत-सामवेद सामगान) आदि भी होता था इसी प्रकार मल्लयुद्ध आदि क्रीडाये वनोपवन विहार जलक्रीडा तथा पर्वों पर उत्सव होते रहते थे।

इसी प्रकार कथा वार्ता भी मनोरजन का एक साधन था। बुद्धकाल और इसके पूर्व पशु-पक्षियो के युद्ध (कुक्कुट युद्ध वृषभयुद्ध हस्थियुद्ध आदि) का भी प्रयोजन इसके लिए होता था। साथ ही नट-नर्तको द्वारा खेल तमाशा भी दिखाया जाता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि उस समय खेल तमाशो के लिए प्रेक्षागार मे प्रेक्षा-आयोजन होता था तथा नट नर्तक गायक वादक चारण (भाट) आदि अपने-अपने कौशल से समाज को आनन्द प्रदान करते थे।[2]

खारवेल के अभिलेख मे कुमार क्रीडा का उल्लेख है इसका तात्पर्य है राजकुमार की क्रीडाये। शैशवकाल मे भी बच्चो के लिए विविध प्रकार के क्रीडनक (खिलौने) बनते थे। राजा लोग मृगया विहार करते थे। रामायण मे भी विविध क्रीडाओ और विहारो के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत मे भी ऐसे ही साधनो

1-श्रीमद् भगवद्गीता 2/65(1)
2-कौटिल्य अर्थशास्त्र-2/27

का उल्लेख मिलता है। पुराणो मे विविध व्रतो (वारव्रत तिथि और मासव्रत) तथा उत्सवो (यथा पार्वती–विवाह) का वर्णन मिलता है।

उत्सव–

समाज मे उत्सवो[1] का भी विशेष महत्व है। इनसे परस्पर मेल–मिलाप बढता है और विविध प्रकार के आमोद–प्रमोद तथा मनोरजन का कार्य सगीत क्रीडा तथा अन्य विनोद होते हैं। ये धार्मिक और सामाजिक उत्सव विशेष स्थानो व्यक्तियो और घटनाओ से सम्बद्ध होते हैं। देव प्रतिष्ठा के समय उत्सव होना परम आवश्यक था। उसके बिना प्रतिष्ठा व्यर्थ हो जाती थी। अग्निपुराण मे इसका उल्लेख किया गया है। कहा गया कि उत्सव के बिना देव प्रतिष्ठा व्यर्थ हो जाती है।

जागरण[2]

किसी धार्मिक अथवा सामाजिक अवसर पर लोग रात्रि मे जागरण–जागते हुए गीत नृत्य[3] और कथा वार्ता करते है। जागरण मे पुराण श्रवण एव स्त्रोत पाठ[4] भी होता था।

मन्दिर और मूर्ति प्रतिष्ठा–

पवित्र स्थल या तीर्थ पर मन्दिर निर्माण कर उसमे मूर्ति प्रतिष्ठा के समय भी दान और महोत्सव[5] होता था। यह आज भी होता है। अग्निपुराण के अनुसार यह महोत्सव चार दिनो तक चलता था।[6] इसमे यज्ञ और हवन भी होता था। इसके अतिरिक्त इस महोत्सव मे भी गीत वाद्य[7] होता था।

जन्मोत्सव–

प्राचीन भारतीय समाज मे पुत्र जन्म के समय जन्मोत्सव मनाया जाता था। विशेष महापुरूषो की जन्मतिथि पर भी जन्मोत्सव मनाया जाता था जो आज भी प्रचलित है। जैसे–राम के जन्म के अवसर पर रामनवमी का उत्सव एव कृष्ण के जन्म पर कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव आज भी बडे धूम–धाम से मनाया जाता है।

इन्द्रोत्सव (शक्रोत्सव)

1–अग्निपुराण– 68/1 वक्ष्ये विधि चोत्सवस्य ।
क– उत्सवेन बिना यस्मात् स्थापनं निष्फल भवेत्।

2–क– अग्निपुराण– 193/23 199/6
ख– सङक्रान्तौ स्वर्गलोको स्याज्जागरणान्नर।

3–अग्निपुराण– 194/6

4–अग्निपुराण– 35/17–पुराणश्रवण स्तात्र पठन्जागरण निशि।

5–अग्निपुराण– 97/46 दान महोत्सव पश्चात्कुर्यात् ।

6–अग्निपुराण–दिन चतुष्टयम्–97–46

7–अग्निपुराण–97/45–46

मथुरा–वृन्दावन मे यह उत्सव कृष्ण के जीवन से सबधित है। जिस समय कृष्ण नन्द और यशोदा के यहा गोप और गोपियो के साथ रह रहे थे उसी समय गोपालो ने इन्द्रोत्सव[1] (याशक्रोत्सव) मनाने की योजना बनाई थी। भगवान कृष्ण ने इन्द्रोत्सव को बन्द कराकर गोवर्धन पर्वत के पूजन की प्रथा चला दी थी।[2] भागवत पुराण मे इन्द्रोत्सव का विशेष वर्णन किया गया है। भगवान कृष्ण ने नन्द जी से पूछा कि यह आप उत्सव का आयोजन क्यो कर रहे है।[3] नन्द ने उत्तर दिया कि पर्जन्य ही भगवान इन्द्र है। मेघ उनकी मूर्ति है। वे वर्षा करते है इससे जल की प्राप्ति होती है जो प्राणियो के जीवन का आधार है। यही त्रिवर्ग (धर्म अर्थ और काम) का फल देने वाला है। इसीलिए हम इस इन्द्रोत्सव मे यज्ञ आदि करते हुए पर्जन्य की पूजा करते है। यह हमारा परम्परा से चलने वाला धर्म है।[4] कृष्ण भगवान ने कहा कि कर्म से ही जीव का जन्म होता है। कर्म से ही सुख–दु ख मिलता है। इसलिए हम सबको कर्म की पूजा करनी चाहिये– 'तस्मात्सम्पूजयेत्कर्म'[5] यही पर इसी प्रसग मे समाज के विविध कर्मों का वर्णन करते हुए कृष्ण ने कहा कि–विप्र को ब्रह्म कर्मा (वैदिक अध्ययन–अध्यापन) क्षत्रिय को पृथ्वी रक्षा वैश्य का वार्ता तथा शूद्र को विज सेवा कर्म करते हुए जीविको चलाना चाहिये। हम लोगो की जीविका गोपालन पर आधारित है। हमसे इन्द्र से क्या प्रयोजन है–(महेन्द्र किकरिष्यति)[6] हम लोग वनो और पर्वतो के रहने वाले है और गाय ही हमारा धन है इसलिए हमको इन्ही की पूजा करनी चाहिये हमे इन्द्र से क्या लेना देना।[7] इस प्रकार समाज मे गोवर्धन की पूजा चल पडी जो आज तक प्रचलित है। अग्निपुराण से यह ज्ञात होता है कि अर्जुन के कहने से भगवान ने इन्द्रोत्सव की परम्परा पुन चला दी।[8]

<u>नगर महोत्सव</u>–

राम के राज्याभिषेक की तैयारी मे अयोध्या नगरी का अलकरण किया गया था–

अयोध्यालकृतिदृष्ट्वा'[9]

1–अग्निपुराण–12/22 (1) इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूय कृष्णन कारित।
2–अग्निपुराण–12/20 (2) शक्रोत्सव परित्यज्य कारितोगोपयज्ञक ।।
3–भागवतपुराण– 10/24/1–7
4–भागवतपुराण– 10/24/8–10
5–भागवतपुराण– 10/24/11–18 तस्मात्सम्पूजयेत्कर्म स्वभावरुप स्वकर्मकृत्।
6–भागवतपुराण– 10/24/23
7–भागवतपुराण– 10/24/24–36
8–अग्निपुराण– 12/21–22 (1) इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूय कृष्णेन कारित।
9–अग्निपुराण–6/7

इससे प्रकट होता है कि नगरोत्सव का भी कभी—कभी आयोजन होता था। सभी नागरिक नगर मे विविध प्रकार के उत्सव और उल्लास मनाते थे। मनो विनोद के विविध साधन थे। भारत भूमि पर विविध ऋतुये होती है। और उनमे लोग ऋतुओ के अनुसार क्रीडाये विलास हास करते थे। विभिन्न कवियो यथा कालिदास आदि ने ऋतुओ का वर्णन किया है। वामन पुराण के प्रारम्भ मे ही पार्वती और शिव के प्रसग मे ग्रीष्म वर्षा आदि ऋतुओ का वर्णन किया गया है। भागवत मे शरद की चन्द्रिका मे भगवान कृष्ण और गोपियो ने रासलीला (सगीत वाद्य और नृत्य) किया था।

इन ऋतुओ मे विलासी धनिक वर्ग पानभूमि मे जाता है और पान गोष्ठिया होती हैं। साधारण जन विविध प्रकार के व्रतो व त्योहारो मे उत्सव मनाते हैं।

<u>वेश्याए एव नर्तकी स्त्रिया</u>—

समाज और राष्ट्र मे वेश्याए भी थी और उनकी सामान्य स्थिति थी। राज्याभिषेक के समय वेश्या द्वार से मृदा (मिटटी)[1] लाना भी आवश्यक था। इसी से राजा के कटिभाग को पवित्र बनाया जाता था। इससे सिद्ध होता है कि राजशक्ति से उन्हे सरक्षण प्राप्त था।

नगरो मे वेश्याओ तथा नर्तकी स्त्रियो (नटिनियो) एव नटो आदि के आवास दक्षिण पश्चिम मे होते थे।[2] इससे ज्ञात होता है कि नगर मे वेश्याओ का स्थान भी निर्धारित था। राज प्रासादो तथा पौर जनपदीय समाज मे गणिकाओ—गायिकाओ तथा नर्तकियो की भी आवश्यकता थी। राजाओ के मनोरजन के अतिरिक्त प्रजा के धनिक लोग भी अपना मनोरजन करते थे। साधारण उत्सवो मे भी उनकी कला का प्रदर्शन होता था। गणिकाये सगीत कला और नृत्याभिनय मे कुशल होती थीं। इसी प्रकार समाज मे नट नर्तक भी थे।

<u>द्यूतकार्म</u>[3]

द्यूतकर्म (या जुआ खेलना) भी समाज मे एक मनोविनोद के रूप मे प्रचलित रहा है। इसमे बहुत ही दोष है। इसके शिकार महाराज युधिष्ठिर हुए थे जिन्हे अपने भाइयो स्त्री और राज्य से भी हाथ धोना पडा[4] और अन्त मे बारह वर्ष के लिए वन भी जाना पडा—

अरण्यक ययौ[5]

1—अग्निपुराण—218/16 वेश्याद्वारमृदा राज्ञ कदिशौच विधयते।।

2—अग्निपुराण—106/7 (1) दक्षिण नृत्य वृत्तीना वेश्यास्त्रीणागृहाणि च।

3—अग्निपुराण—13/19 द्यूत कार्ये शकुनिना द्यूतेन युधिष्ठिरम् अजयत्।

4—अग्निपुराण—13/19—20

5—अग्निपुराण—13/20 (2) 21

उद्यान–सलिल क्रीड़ा–

कविगण महाकाव्यो मे उद्यान जलक्रीडा एव मद्यपानादि उत्सवो का वर्णन करते है।[1] महाकवि राजशेखर ने कर्पूर मजरी नामक नाटिका मे इस प्रकार के राज समाज का विशेष चित्रण किया है। एक ओर विदेशी शत्रु सिर पर सवार था ता राजागण सुरा और सुन्दरी की विलास क्रीडा मे रत होकर उद्यान विहार कर रहे थे।

पानभूमि–

नगरो मे पानभूमि[2] (मधुशाला) भी होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी पानभूमि (शराबखाना मदिरालय) के प्रबन्ध का विधान था।

यज्ञोत्सव–

महाराज बलि के यज्ञोत्सव मे भगवान विष्णु वामन रूप मे भूमिदान लेने गये थे।[3]

यज्ञोत्सव–विवाहोत्सव–पुरोत्सव–

मिथिला मे सीता स्वयवर का आयोजन यज्ञोत्सव ही था।[4] धनुष तोडने के बाद राम आदि चारो भाइयो का विवाह भी उसी समय हो गया था।[5] अत यही विवाहोत्सव भी था।

ऐसे शुभ अवसरो पर सम्पूर्ण राजनगर अलकृत होता था तथा प्रजाजन भी उस पुरोत्सव मे आनन्द मनाते थे।

16–वेश–भूषा–वस्त्र अलकरण एव आभूषण–

वस्त्रो का प्रयोग सभ्यता के विकास का मापदण्ड है। आदिम मानव जाति के स्त्री पुरूष प्राय नगे ही घूमते थे। आज भी अण्डमान–निकोबार के जगलो में ऐसी स्त्री–पुरुष नगे ही घूमते हुए देखे जा सकते है। परन्तु ये लोग उन्ही शून्य निर्जन वनो मे रहते है और सभ्य समाज या नगरो के सम्पर्क मे आना पसन्द नही करते हैं।

कुछ धार्मिक लोग यथा दिगम्बर–जैन साधू तथा नागा साधू आदि भी नग्न देखे जा सकते है परन्तु इन लोगो ने भी अपने आपको समाज से पृथक ही माना है।

1–अग्निपुराण–337/30 (1) उद्यानसलिल क्रीडा मधुपानरतोत्सवै।

2–अग्निपुराण–9/5

3–अग्निपुराण–4/9 पदत्रय मे गुर्वर्थ देहिदास्येतमब्रवीत्।

4–अग्निपुराण–5/9 (2) गत क्रतु मैथिलस्य द्रष्टु चाप सहानुज।

5–अग्निपुराण–5/10–14(1) वीर्यशुल्का स जनक सीता कन्याम् ददौ रामाय।

पुराणो मे विशेषकर नग्नो (जैन अर्हतो तथा बौद्धो) की निन्दा की गयी है क्योकि उन्होने वैदिक आवरण को उतार फेका था।[1] समाज मे नगा रहना या घूमना असभ्यता का ही रूप था सभ्यता के विकास के साथ–साथ वस्त्रो के प्रयोग मे भी विकास हुआ। पहले जब लोग सभ्यता के प्रथम स्तर पर थे तो वे अपने गुह्यागो को पत्तो छालो या खालो से ढकते थे। विन्ध्यवन के शबरो मे विशेषकर इनकी एक शाखा को पर्ण शबर (पर्णों पत्तो से शरीर ढकने वाला) कहा गया है। वानप्रस्थी और यती वल्कल[2] पर्णचीर एव मृगचर्म को धारण करते थे।

कपडो की आवश्यकता होने से कपडा भी बुना जाने लगा और कपडा बुनने वालो का तन्त्रवाय (तन्तुवाय)[3] अर्थात् जुलाहा कहा गया।

गुप्त सम्राट कुमार गुप्त प्रथम के मन्दसौर अभिलेख मे रेशमी कपडा (पटटमयवस्त्र)[4] बुनने वालो की पटटवाय श्रेणी[5] का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार वस्त्रोद्योग विकसित था और रेशमी कपडे का बुनना विश्व मे प्रसिद्ध–प्रथत जगत शिल्पा[6] था।

अग्निपुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आभूषणो के साथ वस्त्रो[7] का प्रयोग प्रचलित था।

विविधवस्त्र–

अग्निपुराण काल मे ऊनी और सूती (ऊर्ण कर्पास)[8] तथा रेशमी वस्त्रो (अशुपटाना क्षौम)[9] का प्रयोग होता था। अशुपटट तथा पटटवस्त्र[10] का प्रयोग धनाढय तथा उच्च वर्ग मे होता था। धार्मिक पुरूष (ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यती) मृगचर्म[11] का प्रयोग करते थे।

1–विष्णुपुराण– अ० 3 17 व 5 ऋग्यजु साम सज्ञेय मयी कर्मवृतिद्विज ।
2(क)–वायुपुराण– 1/45/2
(ख)–विष्णुपुराण– 4/24/96 तरूवल्कल पर्णचीर ।
3–अग्निपुराण– 168/5
4–स० इ० डि०–भाग 1 पृ0 303 प0 12 श्लोक 20 21
5–स० इ० डि०–भाग 1 पृ0 305 प0 17 श्लोक 29
6–स० इ० डि०–भाग 1 पृ0 303–306
7(क)–अग्निपुराण– 70/6
(ख)–अग्निपुराण–96/24 वस्त्रमुकुटादिभि।
8–अग्निपुराण– 156/9– ऊर्णाकार्पासयो ।
9–अग्निपुराण– 156/15 श्रीफलैरशु पटटाना क्षौमाणा गौरसर्षपै शुद्धि ।
10–अग्निपुराण– 58/3– पट्टवस्त्रेण कर्तव्यम्।
11–अग्निपुराण– 156/15 मृगलोम्नाम् ॥

सूत्र–

इस पुराण के समय सूत भी काता जाता था। कोई ब्राहमणी सूत कातती थी[1] और इसी सूत्र से ही तन्तुवाय कपडा बुनता था।

आभूषण एव अलकरण–

सभ्य एव सस्कृत–सामाजिक जीवन मे वेशविन्यास तथा आभूषणो एव शरीर प्रसाधन का विशेष महत्व रहा है। समाज मे राजा मुकुटादि से विभूषित राजवेश मे रहता था।[2] सामन्त वर्ग उष्णीश (पगडी) और अन्य सामान्य नागरिक टोपी धोती दुपटटा चादर या उत्तरीय आदि का प्रयोग करता था। पैरो मे वह उपानह और पादुकाओ (खडाऊ) का भी प्रयोग करता था। स्त्रिया साडी और कन्चुक तथा विविध आभूषणो (कुण्डल मगलसूत्र भुजबन्ध मेखला और ककण आदि) का प्रयोग करती थी। वे उगलियो मे अगुलीयक (अगूठी) पहनती थी। वे आखो मे अजन तथा केशो मे पुष्प गन्ध आदि का प्रयोग करती थीं। केश सज्जा के भी विविध प्रकार प्रचलित थे।

पुराणो के अतिरिक्त रामायण महाभारत सस्कृत काव्यग्रन्थो (कालिदासीय काव्यो बाण के हर्षचरित एव कादम्बरी) के अतिरिक्त मदिरो पर प्राप्त कलाकृतियो और सिक्को आदि पर मूर्तियो के वेश–भूषा का अध्ययन किया गया है।[3] यह अध्ययन सामाजिक जीवन पर विशेष प्रकाश डालता है।

अग्निपुराण कथा प्रधान ग्रन्थ नही है। अत इस विषय मे बहुत ही कम सामग्री प्राप्त होती है। परन्तु जो भी सामग्री उपलब्ध है उससे प्राचीन प्रचलित परम्पराओ की ही पुष्टि होती है।

17–मडन (श्रृगार)–

केवल वस्त्रावरण से ही मनुष्य और स्त्री सन्तुष्ट नही रहते हैं। वे शरीर को ढकने के बाद इसे सजाने (सुन्दर बनाने) के लिए अग्रसर होते हैं तथा अपने–अपने आर्थिक साधनो की सीमाये रत्नो मणियो एव स्वर्णादि के आभूषणो तथा पुष्पो और विविध लेप उपलेपो का प्रयोग करते रहे है। इस प्रकार समाज मे अलकरण या मडन प्रचलित हुआ तथा विविध प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग होता रहा है। इस प्रकार उस समय वस्त्राभूषण प्रचलित थे।[4]

1–अग्निपुराण– 33/5 ब्रहमण्या कर्तित सूत्रम्

2–वृष्टव्य–प्राचीन भारतीय सिक्के (चित्र फलक स० 1)

3–डॉ० मोतीचन्द्र– प्राचीन भारतीय वेशभूषा (भारतीय भडार प्रयाग) स० 2006

डॉ० सच्चिदानन्द सहाय– इडियन कास्टयूम्स क्वफियर ऐण्ड आर्नामेन्टस इन एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया–दिल्ली 1975

4–अग्निपुराण– 70/6 भूषितो दक्षिणा दद्याद ।

मडन कर्म मे तेल गन्ध (सुगन्ध) पुष्प वनमाला (हार माला) और विविध प्रकार के लेपो (उबटन आदि) का प्रयोग होता था। इस प्रकार सुमण्डिता (रूप सम्पन्ना)[1] स्त्री ही मोहिनी (मोहित करने वाली) बन जाती है विष्णु रूपी मोहिनी ने शकर सदृश वैरागी–उदासी को भी मूढ बना दिया था।[2] स्त्रियो के लिए मडन काल भी निश्चित था। जो पति परागमुखा व्यभिचारिणी (स्वैरिणी) स्त्रिया होती है वे पति (को प्रसन्न करने) के लिए मण्डन काल के समय मण्डन नही करती हैं।[3]

स्नान के लिए जल को कपित्थ बितव जामुन आम और करवीर के पत्तो से शुद्ध कर अथवा कस्तूरी मिश्रित जल से स्नान किया जाता था।[4] धूप आदि सुगन्धित पदार्थों तथा चन्दन आदि का भी प्रयोग किया जाता था।[5] सुगन्धित तेल (गन्धतैल) तथा तिल तैल का भी प्रयोग होता था।[6] कपूर कस्तूरी और कुकुम आदि का भी प्रयोग होता था।[7] दर्पण (शीशा) का भी प्रयोग होता था।[8]

भूषणशिल्प–

इस काल मे आभूषणो की लोकप्रियता के कारण ही भूषण निर्माण का भी विकास हुआ। सभी शिल्पो के प्रर्वतक विश्वकर्मा से ही आभूषण निर्माण की कला का भी उदय हुआ। आज भी स्वर्णकार इस कला द्वारा अपनी जीविका चलाते है।

देवताओ ने भगवान के स्वरूप मे भी उनके सभी अगो को आभरणो से विभूषित देखा। वे कौशेय वस्त्र धारण किये हुए थे वे मणिकिरीट और केयूरो से विभूषित थे। उनके अनेक अगो पर कुण्डल (कर्णाभरण) कई लडियो वाली काञ्ची ककणो तथा हारो और नूपुर एव वक्षस्थल पर कौस्तुममणि आदि शोभायमान थी।[9] इसी प्रकार भगवान के अगो पर विभिन्न आभूषण पहने हुए मूर्तियो का भी निर्माण होता है।

किरीट कुण्डल वलय अगद काञ्ची और नूपुर[10] भगवान के आभूषण थे जिनको वे भिन्न–भिन्न अगो मे धारण करते थे। ये आभूषण समाज मे ही पहने जाते हैं।

1–अग्निपुराण– 3/13 (1)
2–अग्निपुराण– 3/17/18 मायया मोहित शम्भुर्गौरी व्यक्त्वा स्त्रिय गत।
3–अग्निपुराण– 224/9 ज्ञातमण्डन कालापि न करोति च मण्डनम्।
4–अग्निपुराण– 224/21 कपित्थ विल्व जम्ब्वाम्र करवीरकपल्लवै।
5–अग्निपुराण– 224/23–32
6–अग्निपुराण– 224/32–33
7–अग्निपुराण– 224/34–35
8–अग्निपुराण– 218/28 त पश्येद्दर्पणम ।
9–भागवतपुराण– 8/6/4–6
10–भागवतपुराण– 8/18/12

ललित विस्तार मे हस्ताभरण पादाभरण मूर्धाभरण कण्ठाभरण मुद्रिकाभरण कार्णिका केयूर मेखला सुवर्णसूत्र किकिणी जाल रत्नजाल मणि रत्नहार करक और मुकुट का उल्लेख मिलता है।[1]

<u>मुकुट</u>[2]

इस पुराण मे सिर पर मुकुट धारण किया जाता था। राजा तथा महाधनिक पुरूष (सामन्त) आदि और विष्णु देवताओ की मूर्ति के सिर पर मुकुट पहनाया[3] जाता था। राज्याभिषेक के समय राजा का भी मुकुट बन्ध[4] किया जाता था।

<u>उष्णीष</u>[5]

साधारण लोग सिर पर उष्णीष (साफा) पगडी बाधते थे। कुछ पुराने लोग (वृद्ध) आज भी बाधते हैं।

<u>मणि</u>[6]

मणि को भी स्त्री पुरूष धारण करते थे। सीता जी ने हनुमान जी को रामचन्द्र के लिए अभिज्ञान रूप मे उतार कर दी थी।

<u>कौस्तुभ</u>[7]

यह एक दिव्य मणि है जिसे भगवान विष्णु अपने वक्षस्थल पर धारण करते हैं।

<u>अङ्गुलीय</u>[8]

श्रीरामचन्द्र ने सीताजी के पास हनुमान द्वारा अङ्गुलीय (अगूठी) अङ्गुली मे पहनने वाली पहचान के लिए भेजा था।

<u>मेखला</u>[9]

करधनी और किरीट[10] का प्रयोग होता था।

1—ललित विस्तार (मिथिला) 9वा परिवर्त पृ0 85 प0 7—9
2—अग्निपुराण— 90/10 उष्णीशमुकुट
3—अग्निपुराण— 44/5 10 (क) मुकुट तालमात्र स्यात्।
(ख)—मुकुटोपरिकर्तव्य ।
4—अग्निपुराण— 218/30 राजा मुकटबन्धश्च ।
5—अग्निपुराण— 90/10
6—अग्निपुराण— 9/13 14 (क)—मणि सीताददात् । 9—138
(ख)—मणि कथा गृहीत्वा ।। 9—14
7—अग्निपुराण— 3/9 219/48 (2)
8—अग्निपुराण— 9/9 साभिज्ञान चाङ्गुलीयक रामदत्त
9—अग्निपुराण— 44/8 मेखला बन्ध सिध्यर्थम्
10—अग्निपुराण— 96/28 किरीटिनम्

नवीन वस्त्राभूषण धारण तथा ज्योतिष विचार–

नये मणि मूगा और रत्न (आभूषणादि) के धारण करने तथा नये वस्त्रो (वस्त्रप्रावरण) को धारण करने मे भी शुभ दिनो तथा राशि के अनुसार लग्न आदि का भी विचार किया जाता था।[1]

1–अग्निपुराण– 121/31–32

पंचम अध्याय

अग्निपुराण में वर्णित धर्म और दर्शन

अग्निपुराण मे वर्णित धर्म और दर्शन

1–धर्म

व्यक्ति समाज राष्ट्र तथा सम्पूर्ण विश्व के धारण पोषण सगठन सामजस्य एव एकत्व का सम्पादन करने वाला एक मात्र पदार्थ है– धर्म। धर्म का सम्यक ज्ञान अधिकारी व्यक्ति को अपौरूषेय वेद वाक्यो एव तदनुसारी पुराणादि आर्ष ग्रन्थो द्वारा ही सम्पन्न होता है। सब लोग एक परिस्थिति मे नही रहते। एक ही व्यक्ति सदा एक सी परिस्थिति मे नही रहता। सम्पूर्ण समाज एव देश मे परिस्थितिया बदलती रहती है। मनुष्यो की रूचि अधिकार मानसिक योग्यता भी एक जैसी नहीं है इसलिए कोई एक ही धर्म का निश्चित रूप कोई एक ही साधन–सम्प्रदाय कोई एक ही आचार पद्धति सब देशो सब लोगो और सब समय के लिए अभ्युदय–नि श्रेयस सिद्धि का कारण हो सके यह सम्भव नहीं है। इसलिए धर्म नानारूपात्मक है। वह एक होकर भी अनेक रूप है। अनेकता मे एकत्व का दर्शन यही सृष्टि मे परम तत्व का दर्शन है। महाकवि भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि पशु और मानव मे अन्तर धर्म के द्वारा ही किया जा सकता है–

आहार निद्राभयमैथुन च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभि समाना ।।1

अर्थात् भोजन निद्रा भय एव मैथुन ये सभी आचरण पशु और मनुष्य मे समान रूप से होते है किन्तु धर्म ही इन दोनो को एक दूसरे से पृथक करता है। पशु शास्त्र–सम्मत धर्म के आचरण से विहीन होता है। और मनुष्य शास्त्रसम्मत धर्म का अनुपालन करता है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता वह पशु के समान कहा गया है।

जिसको धारण करने से प्राणी परम उत्कर्ष को प्राप्त करता है वह धर्म है। जो कुछ है वह धर्म है। धर्म के बाहर कुछ भी नहीं है। ऐसा होने पर भी जिससे जीवन और जगत की स्थिति मे गतिरोध उत्पन्न हो वह अधर्म है और जिससे जीवन और जगत की स्थिति सम्भव और सुचारू हो वह धर्म है। अत जीवन और जगत् को सन्तुलित करने वाला तत्त्व धर्म है। 2

(क)–धर्मलक्षण

धर्म धृञ धारण धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ धारण करना' है। धर्म की शाब्दिक व्याख्या इस

1–नीतिशतक

2–कल्याण–सिद्धि सुख और परम गतिप्रद सनातनधर्म–पृष्ठ सख्या 93 वर्ष 75 स० 1

प्रकार है– धरति लोकान घ्रियते पुण्यात्माभि इति वा अर्थात जो लोको को धारण करता है अथवा जो पुण्यात्माओ द्वारा धारण किया जाता है वह धर्म है। दूसरे शब्दो मे इस प्रकार से भी कहा जा सकता है घ्रियते यन स धर्म अर्थात् जिसने इस विश्व ब्रह्माण्ड को धारण किया है वह धर्म है। ऋग्वेद मे लिखा है–

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाम्य ।

अतो धर्माणि धारयन् ।।[1]

अर्थात् परमेश्वर ने आकाश के बीच मे त्रिपाद परिमित स्थान मे त्रिलोक का निर्माण करके उनके भीतर धर्मों (जगन्निर्वाहक कर्म समूहो) को स्थापित किया है। ऋग्वेद मे धर्म शब्द का उल्लेख अनेको बार कई अर्थों मे किया गया है। वह कही तो विशेषण के रूप मे प्रयुक्त है तो कही पर नाम है। किसी स्थान पर धर्म का अर्थ पोषण करना है तो किसी स्थान पर नैतिक नियम और आचार अर्थ मे प्रयुक्त है। कही पर प्राचीन नीति नियम के अर्थ मे भी धर्म शब्द प्रयुक्त हुआ है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।[2]

अर्थात् यज्ञ के द्वारा यज्ञ पुरुष की देवताओ ने पूजा की थी यह प्राथमिक धर्म था। देवलोक की प्रेरणा से मनुष्य लोक मे यज्ञ प्रवर्तित हुआ। अथर्ववेद मे धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक आचार्यों द्वारा मिलने वाला पुण्य इस अर्थ मे किया गया है।[3] वाजसनेयी सहिता मे ध्रुवेण धर्मणा' अर्थ मे धर्म शब्द का प्रयोग किया गया है।[4]

छान्दोग्य उपनिषद मे चार आश्रम के विशिष्ट कर्तव्य इस अर्थ मे धर्म शब्द प्रयुक्त हुआ है।[5]

स च एत देव विद्वान

अर्थात् जो कोई इस प्रकार जानकर साधुगुण विशिष्ट रूप मे साम की उपासना करता है उसके पास सारे उत्तम धर्म (पुण्य समूह) अतिशीघ्र आ जाते है। और उसके भोग्य रूप मे अवस्थान करते हैं यहा धर्म शब्द पुण्य अर्थ मे आया है।

तैत्तिरीय उपनिषद[6] मे सत्य वद। धर्म चर। अर्थात सत्य बोलो धर्मानुसार आचरण करो। इस प्रकार

1–ऋग्वेद 1/22/18

2–ऋग्वेद 10/90/16

3–अथर्ववेद 11/9/17

4–वाजसनेयी सहिता 2–3

5–छान्दोग्योपनिषद 2/1/9

6–तैत्तिरीयोपनिषद 1/11/1

यहा धर्म शब्द अनुष्ठेय कर्म के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। ईशोपनिषद् लिखा है–

हिरण्ययेन पात्रेण सत्स्यापिहित मुखम्।

तत्व पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[1]

अर्थात् ज्योतिर्मय पात्र के द्वारा सत्य का (अर्थात् आदित्यमण्डलस्थ ब्याहृति अवयव पुरूष का) मुख (मुख्यस्वरूप) आवृत है हे जगत के परिपोषक सूर्यदेव सत्यस्वरूप तुम्हारी उपासना के फल से सत्यस्वरूप की मेरी उपलब्धि के लिए उस आवरण को हटा दो। कठोपनिषद मे धर्म शब्द आत्मा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है–

देवैरत्रापि विचिकित्सित पुरा

नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म ।[2]

अर्थात् नचिकेता आत्मज्ञान के अधिकारी है या नही इसकी परीक्षा करने के लिए यमराज कहते है–इस तत्व के विषय मे सृष्टि काल मे देवगण को भी सदेह हुआ था क्योकि यह आत्माख्य धर्म सूक्ष्म होने के कारण सुविज्ञेय नही है।

अग्निपुराण मे धर्म के विषय मे कहा गया है कि मनु इत्यादि ऋषियो ने भुक्ति मुक्ति और धर्मों को कहकर जिन धर्मों को प्राप्त किया है उन वरूणोक्त धर्मो को भगवान पुष्कर ने भगवान परशुराम से कहा था।[3] सम्पूर्ण कामनाओ को प्रदान करने वाले ये धर्म जो भगवान वासुदेव तथा अन्य देवताओ को भी प्रसन्न करने वाले है वैष्णव धर्म है तथा ये ही सर्वलोकहित मानव धर्म है।

वर्णाश्रमेत्तराणा ते धर्मान्वक्ष्यामि सर्वदान्।

मन्वादिभिर्निगदितान्वासुदेवादितुष्टिदान्।

तीर्थानुसरण दान ब्रह्मचर्यममत्सर ।

देवद्विजातिशुश्रूषा गुरूणा च भृगूत्तम।

श्रवण सर्वधर्माणा पितृणा पूजन तथा।

भक्तिश्च नृपतौ नित्य तथा सच्छास्त्रमित्रता।

आनृशस्य तितिक्षा च तथा चाऽऽस्तिक्यमेव च।।[4]

1–ईशोपनिषद 15
2–कठोपनिषद 1/1/21
3–अग्निपुराण–151/1
4–अग्निपुराण–151/2–5

अर्थात– अहिसा सत्य दया प्राणियो पर अनुग्रह तीर्थाटन दान ब्रह्मचर्य अमत्सर देवता द्विज और गुरूजनो की सेवा समस्त धर्मों का श्रवण पितृपूजन राजा मे निरन्तर भक्ति अच्छे शास्त्रो का चिन्तन आनृशस्य तितिक्षा और आस्तिक्य आदि ये धर्म है। ये धर्म वर्णाश्रम धर्म से भिन्न सामान्य धर्म है जो सभी वर्णों तथा आश्रमो के लिये करणीय थे।[1] इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण मे आचार विचार दैनिक कर्मो तथा अनुष्ठानो का विशद एव विस्तृत वर्णन मिलता है। व्रत उपवास आदि का उल्लेख कई अध्यायो मे दृष्टव्य है। श्रीमदभागवतगीता मे धर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।।[2]

अर्थात अच्छी प्रकार से आचरण मे लाय हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म मे मृत्यु भी श्रेयस्कर है किन्तु अन्य वर्ण और अन्य आश्रम का धर्म भयदायक है।

महर्षि कणाद प्रणीत वैशेषिक दर्शन मे कहा गया है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्म [3]

अर्थात् जो व्यवहार मे सर्वप्रथम लौकिक अभ्युदय प्रदान करता है तत्पश्चात मोक्ष का भी निर्धारण करता है वह धर्म है। आश्वलायन गृहसूत्र मे धर्म के विषय मे कहा है कि

धारणात् श्रेय आदधात इति धर्म ।

अर्थात् जिसके अनुसार चलने पर मनुष्य का श्रेय (कल्याण) होता है यश उन्नति और मोक्ष होता है उसे धर्म कहते है। महर्षि जैमिनि प्रणीत पूर्व मीमासा मे धर्म के विषय म कहा गया है कि–

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्म[4]

अर्थात् उपदेश से आज्ञा से किवा विधि से ज्ञात होने वाला श्रेयस्कर अर्थ धर्म है। व्यक्ति और समाज की ऐहिक (लौकिक) पारमार्थिक (पारलौकिक) उन्नति के लिए प्राचीन महान् ऋषि मुनियो की आज्ञा ही धर्म है। सहिताये तथा मनु अत्रि विष्णु हारीत याज्ञवल्क्य व्यास शकर लिखित दक्ष गौतम शातातप वशिष्ठ प्रजापति लघुशकर औशनस वृहदयम, लघुयम अरूण अगिरस उत्तरागिरस कपिल लघ्वाश्वलायन वृद्ध हारीत लोहित दालभ्य कण्व वृहत्पाराशर और नारद ये स्मृतिया हैं। इन सब का नाम धर्मशास्त्र है–

1–अग्निपुराण 151/2–5
2–श्रीमद्भगवद्गीता 3/35
3–वैशेषिक दर्शन 1/2
4–पूर्वमीमासा 1/2

धर्मशास्त्र तु वै स्मृति [1]

वास्तव मे श्रुति–स्मृति आदि भगवान् की आज्ञा है किसी मनुष्य की नहीं–श्रुति स्मृति ममैवाज्ञा[2]। भगवान कहते हैं कि श्रुति अर्थात् वेद मेरी ही आज्ञा है। आज्ञा शब्द का पर्यायवाची शब्द शास्त्र है। शास्त्र शब्द की परिभाषा है– निदेश ग्रन्थयो शास्त्रम। निदेश अर्थात् आज्ञा[3] इसी को शास्त्र भी कहते हैं। महर्षि पाराशर के अनुसार भगवान् ने श्रुति और स्मृति के रूप मे सम्पूर्ण विश्व के हित के लिए आज्ञा दी। यही सम्पूर्ण विश्व का शासन विधान किया गया है– शासनाच्छसनाच्छास्त्रम्।

मनुस्मृति मे वेद के लिए विधान शब्द का भी उपयोग किया है–

त्वमेको हास्य सर्वस्य विधानस्य स्वयभुव।

अचिन्त्यास्याप्रमेयस्य कार्यतत्वार्थवित् प्रभो।।[4]

श्री मनु भगवान ने मनुसहिता के प्रथम अध्याय मे आत्मज्ञान को ही प्रकृष्ट धर्म बतलाया है। उसको प्राप्त करने के लिए उपनयन आदि सस्कार आवश्यक है। यह बतलाने के लिए पहले धर्म का लक्षण बतलाते है–

विद्वदभि सेवित सद्भिर्नित्यमद्वेष रागिभि।

हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्त निबोधत।।[5]

अर्थात् जो धर्म रागद्वेष विहीन साधुचरित विद्वानो के द्वारा अनुष्ठित होता है तथा जिसको हृदय अनुमोदित करता है (जिससे हृदय मे किसी प्रकार की विभति नहीं आती) वही धर्म है उसे समझो।

धारणाद् धर्म मित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा।

यत् स्याद् धारणसयुक्त स धर्म इति निश्चय।।[6]

अर्थात धारण करने के कारण धर्म कहा जाता है। धर्म समाज के लिए विभिन्न प्राणियो को उनके बलाबल के बावजूद धारण करता है। जो धारण सयुक्त है जिससे समाज सधा रहे समाज मे उच्छृखला न आने पाये वास्तव मे वही धर्म है।

1–मनुस्मृति 2/10
2–वाधुल स्मृति 189/3
3–रामाश्मी टीका अमरकोश 3/3/179
4–मनुस्मृति 1/3
5–मनुस्मृति 2/1
6–महाभारत कर्ण पर्व–69/58

विश्वामित्र स्मृति कहती है–

यमार्या क्रियमाण हि शसन्त्यागमवेदिन ।

स धर्मो य विगर्हन्ति तमधर्म प्रचक्षते।।[1]

अर्थात् आगमवेत्ता आर्यगण जिस कार्य की प्रशसा करते हैं वह तो धर्म है तथा जिसकी निन्दा करते है वह अधर्म है। देवगुरू बृहस्पति दानवाचार्य शुक्र और विदेहराज गुरू याज्ञवल्क्य आदि ऋषियो ने धर्म निर्णायक धर्म प्रतिपादक धर्मलक्षण–निरूपक तथा धर्मस्तोत्रो मे पुराणो को ही एक स्वर से सर्वप्रथम आद्य स्थान प्रदान किया है यथा–

पुराणन्यामीमासाधर्मशास्त्रागमिश्रिता।

वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश[2]

इस प्रकार पुराणो मे यद्यपि सभी धर्म प्रमापक निर्णायक और उनके स्रोत सिद्ध हैं तथापि भगवान वेद व्यास ने धर्म के नाम पर ही कई पुराणो की रचना की है। इनमे धर्मपुराण वृहद्धर्मपुराण शिवधर्मपुराण विष्णुधर्मपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण प्रमुख हैं।

अग्नि पुराण के विभिन्न अध्यायो मे विभिन्न धर्मों का सविस्तार वर्णन किया गया है। ये सामान्य आश्रमो तथा वर्णों के लिए करणीय है। धर्म के सामान्य लक्षण अहिसा क्षमा घृति आदि सभी मनुष्यो के लिए मान्य होते है। मनु के अनुसार घृति क्षमा दम अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह धी विद्या सत्य और अक्रोध ये दस धर्म लक्षण कहे गये है।[3] अग्निपुराण भी इस दस धर्म लक्षण[4] का उल्लेख करता है। इससे धर्मशास्त्रो का प्रभाव स्पष्ट प्राप्त होता है।

मनु और याज्ञवल्क्य के समान महाभारत मे भी धर्म के अनेक सामान्य लक्षणो का वर्णन मिलता है। जो सभी लोगो के लिए मान्य थे।

2–अग्निपुराण मे वर्णित प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ–

अग्निपुराण मे महाभारत का भी वर्णन किया है।[5] यही भीष्म द्वारा सभी शान्तिप्रद धर्मों का उल्लेख

1–विश्वामित्र स्मृति

2–याज्ञवल्क्य स्मृति 1/3 शिवपुराण वायवीय सहिता 1/25 विष्णु पुराण 3/6/28 शुक्रनीति 1/154 गरूण पुराण 1/93/3–4 भविष्य ब्रह्म 2/6 विष्णु धर्म 1/74/33 तथा वृहस्पति आदि अनेक स्थलो पर यह श्लोक प्राप्त होता है कहीं कही स्वल्प भिन्न पाठ है।

3–मनुस्मृति 6/66

4–अग्निपुराण–151/2–6 (1)

5–अग्निपुराण–14/2–6 (1) भीष्माच्छान्तनवाच्छुत्वाधर्मान्सर्वांश्चशान्तिदान्।

महाभारत के शान्तिपर्व का ही सकेत है जहा विविध श्रेयस्कर धर्मों का वर्णन किया गया है।[1]

रामायण राम के जीवन की धर्म कथा ही है और राम का उद्देश्य धर्म स्थापना करना ही था। रामायण का लक्ष्य भी यही है कि–

'रामादिवद् वर्तितत्य न रावणादिवत्।।

राम ने भी शासन करते हुए धर्म काम आदि पुरूषार्थों का पालन करते हुए दुष्टो (दुष्कर्म दुराचरण करने वाले लोगो) का निग्रह किया–

धर्मकामादीन दुष्ट निग्रहणे रत। [2]

उनके शासन काल मे सभी लोग धर्म परायण थे–

सर्वो धर्मपरोलोक।[3]

अग्निपुराण के प्रारम्भ मे रामायण के वर्णन का यही उद्देश्य था कि लोक मे सभी मानव धर्मों (मनुष्यो द्वारा पालनीय मान्य धर्म–कर्मों) का प्रचार हो। गृहस्थाश्रम मे प्रवृत्ति धर्म द्वारा त्रिवर्गसाधन होता है और वानप्रस्थ मे मोक्ष ज्ञान द्वारा चतुर्थ पुरूषार्थ की सिद्धि होती है।[4]

<u>रामायण</u>–

प्राचीन भारतीय समाज मे वाल्मीकीय रामायण के पाठ और श्रवण करने का विशेष महत्व था।[5] सीता कथामृत[6] तप्त जीवन को शाति देने वाला है। सती–पतिव्रता नारी का विशेष महत्व था। सुचरित श्रवण[7] से समाज मे सदाचार की वृद्धि होती है। इसीलिए कहा गया है कि वाल्मीकि रचित रामायण को विस्तार से सुनने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है।

सविस्तर च एतच्च श्रृणुयात् स दिव ब्रजेत्।[8]

अत आज भी रामायण के श्रवण का पुण्य माहात्म्य है।

<u>हरिवश माहात्म्य</u>

हरिवश माहात्म्य महाभारत का अग्रलिखित भाग कहा गया है। इस पावन ग्रन्थ मे कृष्ण चरित का

1–महा० शान्तिपर्व–109/12–13 के बीच
महा० शान्तिपर्व–12/17 152/7–8 उद्योग पर्व 35/561
2–अग्निपुराण – 10/33–34 (1)
3– अग्निपुराण – 10/34–(2)
4– अग्निपुराण – 162/3–9 (1)
5–अग्निपुराण– 5/1
6–अग्निपुराण–9/24
7–अग्निपुराण–11/10
8–अग्निपुराण–11/13(2)

विशेष विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। महाभारत मे कृष्णचरित का सम्पूर्ण चरित्र चित्रण नही हो सका। श्री रामावतार के समान ही भगवान कृष्ण भी भूभारहरण करने के लिए तथा कस आदि अधार्मिक राजाओ और कालयवन आदि (म्लेच्छो) के वध के लिए ही अवतीर्ण हुए थे।[1]

कृष्णचरित (हरिवश) मे हमे गोपी गोप–गोपालक समाज का दर्शन होता है। यह भक्तिभाव से परिपूर्ण साधु समाज ही था। यहा शिव और विष्णु (कृष्ण) के अभेद रूप का प्रतिपादन किया गया है।[2] तत्कालीन समाज मे शैवो और वैष्णवो के मध्य मे कलह हो रहा था। अत इस समाज के दोषो का निराकरण करना भी पौराणिक कवि को अभीष्ट था। अत हरिवश के भी पढने और सुनने का समाज मे महत्व था।[3]

महाभारत(भारत)–

महाभारत भी धार्मिक ग्रन्थ है। इसमे भी कृष्ण माहात्म्य का वर्णन है–

भारत कृष्णमाहात्म्यलक्षणम।[4]

पाण्डवो के चरित्रो का पठन–पाठन एव श्रवण दर्शन समाज मे भ्रातृभाव मातृभक्ति और सत्यपालन की शिक्षा देता है। द्रौपदी चरित्र नारी जाति के लिए बहुत ही बडी प्रेरणा स्त्रोत है। वह पच पाण्डवो की भार्या होते[5] हुए भी प्राचीन भारतीय समाज की परम्पराओ मे पतिव्रता सती नारी रूप मे प्रसिद्ध हैं। विदुर[6] के चरित्र मे भी शुद्ध मातृभाव तथा कृष्ण भक्ति अनुपमेय ही है। वे धर्म के ही मूर्त रूप थे। सभी धर्मो मे पारगत भीष्म भी परम कृष्ण भक्त थे।

भगवद्गीता

भगवद्गीता भी महाभारत का एक अश है जिसमे आत्मा की नित्यता के साथ साथ वर्ण आश्रमो के धर्मों तथा वर्ण सकरता की निन्दा तथा तर्पण श्राद्ध[7] की महिमा का वर्णन करते हुए स्त्री के सुचरित्र का भी गुणगान किया गया है। स्त्रियो के दुष्ट हो जाने से समाज मे वर्ण सकरता फैल जाती है। यह नरक गामी गति है। ससार अनित्य है और ईश्वर भजन ही नित्यसार[8] है। इस प्रकार महाभारत (भारत) का भी धार्मिक

1–अग्निपुराण–12/11
2–अग्निपुराण–12/52
3–अग्निपुराण–12/56 (2) हरिवश पठेद्यस्तु प्राप्तकामो हरिंव्रजेत्।
4–अग्निपुराण–13/1
5–अग्निपुराण–13/14
6–अग्निपुराण–15/2
1–अग्निपुराण–15/7 (1) दत्तोदक
2–अग्निपुराण–15/12

महत्व था। [1]

धर्म मुख्यत दो भागो मे विभक्त है– श्रौत एव स्मार्त। श्रौत धर्म मे उन कृत्यो एव सस्कारो का समावेश था जिनका प्रमुख सबध वैदिक सहिताओ एव ब्राह्मणो से था यथा तीन पवित्र अग्नियो का आधान पूर्णिमा एव प्रतिपदा के यज्ञ एव सोम कृत्य आदि। स्मार्त धर्मों मे वे विषय समाविष्ट थे जो विशेषत स्मृतियो मे वर्णित है तथा वर्णाश्रम से सम्बद्ध है–

दाराग्निहोत्र सम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षमण्।

स्मार्तो वर्णाश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युत ।।[2]

अग्न्याधानादि पूर्वकोऽघीप्रत्यक्षवेदमूलो दर्शपौर्णमासादि श्रौत ।

अनुमितपरोक्षशाखामूल शौचाचमनादि स्मार्त ।[3]

कुछ ग्रन्थो मे धर्म का विभाजन श्रौत स्मार्त एव शिष्टाचार के रूप में भी मिलता है–

वेदोक्त परमो धर्म स्मृतिशास्त्रगतोऽपर ।

शिष्टाचीर्णोऽपर प्रोक्तस्त्रयो धर्मा सनातना ।।[4]

अग्निपुराण मे धर्म के सबध मे बतलाते हुए कहा गया है कि जिसे पहले मनु, विष्णु हारीत अत्रि यम अगिरस वशिष्ठ सवर्त शातातप पाराशर आपस्तम्ब उशना व्यास कात्यायन वृहस्पति गौतम और शडखलिखित ने कहा था उसे सुनिये। तद्नुसार वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं–प्रवृत्त कर्म और निवृत्त कर्म–

तथा वक्ष्ये समरसेन भुक्तिमुक्तिप्रद शृणु।

प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविघ कर्म वैदिकम्।।[5]

काम्य कर्म प्रवृत्त स्यान्निवृत्त ज्ञानपूर्वकम्।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणा च सयम ।।

अहिसा गुरूसेवा च नि श्रेयस्कर परम्।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञान पर स्मृतम्।।[6]

1– अग्निपुराण–15/15

2–मत्स्य पुराण 145/30–31

3–परा० मा० 1 भाग 1 पृष्ठ 64

4–महाभारत अनु० प० 141/65

5–अग्निपुराण 162/1–3 श्रीमदभागवत 7/15/47– प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकम्।
आवर्तेत् प्रवृत्तेन निवृत्तैनाश्नुतेऽमृतम्।।

6–अग्निपुराण 161/4–5

काम्य कर्म को प्रवृत्त कर्म तथा ज्ञान पूर्वक किया गया निवृत्त कर्म कहलाता है। वेदाभ्यास तपस्या ज्ञान इन्द्रिय–सयम अहिसा और गुरू सेवा परम नि श्रेयस्कर कर्म है इन सबसे आत्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ है।

3–पञ्चधाधर्म

अग्निपुराण मे वेदो एव स्मृतियो के द्वारा कहे गये पञ्चधाधर्म का ही कई अध्यायो मे विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है–

वेद स्मार्त प्रवक्ष्यामि धर्म वै पञ्चधा स्मृतम्।

वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकार प्रवर्तते।।[1]

वर्णधर्म आश्रमधर्म वर्णाश्रमधर्म गुणधर्म और नैमित्तिक ये पाच प्रकार के धर्म कहे गये है जिसे क्रमश समस्त वर्ण के व्यक्तियो द्वारा सपन्न होना चाहिये। सर्वप्रथम वर्ण धर्म–ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो जातियो मे होने वाला उपनयन सस्कार उनका वर्ण धर्म है। अत वर्ण का आश्रय लेकर जो धर्म प्रवर्तित होता है उसको वर्णधर्म कहते हैं।[2]

आश्रम का आश्रय लेकर किया जाने वाला धर्म आश्रम धर्म कहलाता है जैसे भिक्षा तथा दण्डादिधारण। वर्णत्व और आश्रमत्व को अधिकार करके जो धर्म प्रवर्तित होता है उसे वर्णाश्रम धर्म कहते है जैसे मौञ्जी मेखलादिधारण करना। जो धर्म गण के द्वारा प्रवर्तित हो वह गुणधर्म है जैसे नियमपूर्वक प्रजापालन आदि। अथवा (लौकिक पारलौकिक) दोनो निमित्तो को आश्रय मानकर जो धर्म प्रवर्तित होता है उसको नैमित्तिक धर्म कहते है। जैसे प्रायश्चित विधि आदि[3]

वर्णधर्म

प्राचीन भारतीय सस्कृति मे चार वर्णों का ही उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आते है इन चारो वर्णों के अलग अलग धर्म और कर्मों का निर्धारण किया गया है। ब्राह्मण का धर्म बताते हुए अग्निपुराण मे कहा गया है–

यजन याजन दान वेदाद्यध्यापन क्रिया।

प्रतिग्रह चा (हऽचा) ध्ययन विप्रकर्मणि निर्दिशेत्।।[4]

अर्थात् यजन याजन दान वेदादि का अध्ययन अध्यापन और प्रतिग्रह ये ब्राहमणो के धर्म हैं।

क्षत्रिय धर्म के विषय मे कहा गया है कि–

1–अग्निपुराण 166/1
2–अग्निपुराण 166/2
3–अग्निपुराण 166/3–4
4–अग्निपुराण 151/6

क्षत्रियस्य विशेषेण पालन दुष्ट निग्रह ।[1]

अर्थात् प्रजापालन और दुष्ट निग्रह क्षत्रिय के विशेष धर्म है। तथा दान अध्ययन और यथाविधियजन क्षत्रिय और वैश्य दोनो के सामान्य कर्म है। वैश्य के कर्म निर्धारण इस प्रकार है–

कृषि गोरक्ष्य वाणिज्य वैश्यस्य परिकीर्तितम् ।[2]

कृषि गोरक्षा और वाणिज्य ये वैश्य के विशेष कर्म हैं।

शूद्रस्य द्विजसुश्रूषा सर्व शिल्पानि वाऽप्यथ।।[3]

शूद्र का कर्म है द्विजो अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यो की सेवा अथवा सभी प्रकार के शिल्प।

ब्राहमण आदि का मौञ्जी बधन से दूसरा जन्म होता है अत वे सब द्विज कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण मे वर्णेतर धर्मों का भी उल्लेख है। उत्तम और अधम जाति वालो मे परस्पर होने वाले अनुलोम विवाह से उत्पन्न होने वाली सन्तानो के अलग–अलग वर्ण और कर्म निर्धारित किये गये हैं। जैसे शूद्र पुरूष और ब्राहमणी स्त्री के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान चाण्डाल कहलाती है जिसका कर्म वध्यो का वध करना बताया गया है। इसी प्रकार शूद्र पुरूष और क्षत्रिय स्त्री के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र पुक्कस कहलाता है जिनका कर्म आखेट है। शूद्र पुरूष और वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्र मागध कहलाता है जिसका कर्म है स्तुति क्रिया।[4]

आश्रमधर्म–

आश्रम धर्म पाच प्रकार का होता है–जो ब्रहमचारी गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यासी तथा राजा के लिए कहा गया है–

ब्रहमचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ।

उक्त आश्रम धर्मस्तु धर्म स्यात्पञ्चधाऽपर ।।[5]

1–ब्रहमचारीधर्म–

इन पाचो आश्रम धर्मों के सर्वप्रथम ब्रहमचारी धर्म के विषय मे अग्निपुराण मे कहा गया है–

धर्म माश्रमिणा वक्ष्ये भुक्ति मुक्ति प्रद श्रणु ।[6]

साय प्रातश्च जुहुयान्नामेध्य व्यस्तहस्तकम्।

1–अग्निपुराण 151/8
2–अग्निपुराण 151/9
3–अग्निपुराण 151/9 (2)
4–अग्निपुराण 151/10–15
5–अग्निपुराण 166/4–5
6–अग्निपुराण 153/1

मधुमास जनै सार्धं गीत च वै त्यजेत्।।

हिसा परिवाद वा अश्लील च विशेषत।

दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वाऽन्यधारणम।।

वदस्वीकरण कृत्वा स्वायद्वै दत्तदक्षिण।

नैण्ठिको ब्रहमचारी वा देहान्त निवसेद्गुरौ।।[1]

अर्थात ब्रहमचारी को प्रात साय हवन करना चाहिये। अग्नि मे अपवित्र वस्तु को नही डालनी चाहिये। ब्रहमचारी को मधु मास नृत्य गीत तथा इन सबका उपभोग करने वाले मनुष्यो का साथ छोड देना चाहिये। उसे हिसा परापवाद और अश्लीलता का विशेष रूप से परित्याग कर देना चाहिये। किसी कारण वश नष्ट हुए दण्ड को जल मे फेककर दूसरा दण्ड धारण करना चाहिये। वेदाध्यन के पश्चात स्नान करके गुरूदक्षिण देनी चाहिये। इस प्रकार नैष्ठिक ब्रहमचारी शरीर त्याग पर्यन्त गुरू के समीप रहा करता है।

2—गृहस्थ धर्म—

अग्निपुराण के 152वे अध्याय मे गृहस्थ धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ऋत और अमृत के द्वारा ही जीवित रहना चाहिये। प्रमृत और अनृत के द्वारा भी जीविकोपार्जन किया जा सकता है किन्तु कुत्ते के समान कभी भी जीवन यापन नही करना चाहिये—

ऋतामृताभ्या जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा।

सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन।।[2]

ब्राह्मण के द्वारा कृषि वाणिज्य गोरक्षा और लेनदेन तो करना चाहिये किन्तु गोरस गुण लवण लक्षारस और मास का परित्याग कर देना चाहिये।

वानप्रस्थ धर्म—

वानप्रस्थयतीना च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु।

जटित्वमग्निहोत्रित्व भूशय्याऽजिनधारणम्।।[3]

वानप्रस्थी को जटाधारी अग्निहोत्र करने वाला भूमि पर सोने वाला तथा मृगचर्म धारण करने वाला

1—अग्निपुराण 153/14—16

2—अग्निपुराण 152/5

3—अग्निपुराण 160/1

होना चाहिये। उसे वन मे रहकर जल मूल नीवार और फलो के ऊपर जीवन यापन करना चाहिये। वह तीन बार स्नान करने वाला तथा ब्रहमचारी होता है। देवता और अतिथि की पूजा वानप्रस्थ का परम धर्म है।

गृहस्थ को पुत्र के पुत्र का मुख देखकर आयु के तीसरे भाग मे वानप्रस्थ अकेले अथवा सपत्नीक लेना चाहिये। उसे ग्रीष्म मे निरन्तर पञ्चाग्नि का सेवन करना चाहिये। वर्षा मे खुले आकाश के नीचे रहना चाहिये और हेमन्त मे गीले वस्त्र धारण करना चाहिये। इस प्रकार वानप्रस्थी को उक्त तपस्या करनी चाहिये।[1]

4—<u>सन्यास धर्म</u>

यतिधर्म प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शकम्।
चतुर्थमायुषो भाग प्राप्य सगात्परिव्रजेत्।।[2]

आयु के चतुर्थ भाग का प्राप्त कर आसक्ति को त्यागकर सन्यास ले लेना चाहिये जो ज्ञान और मोक्ष का दर्शन कराने वाला है। सन्यासी का लक्षण बताते हुए अग्निपुराण मे कहा गया है—

उपेक्षकोऽसचयि (य) को मुनिर्ज्ञानसमन्वित।
कपाल वृक्षमूल च कुचैलमसहायता।।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्।
नाभिनन्देत मरण नाभिनन्देत जीवनम्।।[3]

सन्यासी को ससार की उपेक्षा करने वाला असग्रही और ज्ञानवान कहा गया है। तथा सन्यासी के लक्षण बताते हुए कहा गया है—

उसे कपाल धारण करना वृक्षमूल का आश्रय लेना मोटे वस्त्र धारण करना एकाकीपन और सबमे समान दृष्टि रखना चाहिये। उसे न तो जीवन से मोह होता है और न मृत्यु से। सन्यासी को सरल नपुसक पगु अधे और बहरे की सेवा मे तत्पर रहना चाहिये। ये भिक्षु चार प्रकार के कहे गये हैं जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने जाते हैं—

चतुर्विधभैक्षवस्तु कुटीचकबहूदकौ।
हस परमहसश्च यो य पश्चात् स उत्तम।।

1—अग्निपुराण 160/3—5
2—अग्निपुराण 161/1
3—अग्निपुराण 161/4—5

एकदण्डी त्रिदण्डी वा योगी मुच्यते बन्धनात्।

अहिसा सत्यमस्तेय ब्रहमचर्यापरिग्रहौ।।

यमा पञ्चाथ नियमा शौच सन्तोषण तप ।

स्वध्यायेश्वरपूजा च पद्मकाद्यासन यते ।।[1]

एकदण्डी अथवा त्रिदण्डी योगी बधन से छुटकारा पा जाते हैं। सत्य अहिसा अस्तेय ब्रहमचर्य अपरिग्रह मे पाच यभ तथा शौच सतोष तप स्वाध्याय और ईश्वर पूजा ये पाच नियम कहे गये हैं तथा पद्मासन आदि सन्यासियो के आसन कहे गये हैं। किसी कारण वश अथवा अज्ञानवश दिन अथवा रात्रि मे सन्यासियो द्वारा हुए अपराध का प्रायश्चित ध्यान और प्राणायाम कहा गया है।

5–राजधर्म–

अग्निपुराण मे राजधर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है–

राजधर्म प्रवक्ष्यामि सर्वस्माद्राजधर्मत ।

राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापाल सुदण्डवान्।।

पालयिष्यामि व सर्वान्धर्मस्थान्व्रतमाचरेत्।

सवत्सर स वृणुयात्पुरोहितमथ द्विजम्।।[2]

अर्थात राजा को शत्रुनाशक प्रजापालक तथा अपराधियो को दण्ड देने वाला होना चाहिये। उसे यह सकल्प करना चाहिये–मै धर्म पर आसीन प्रजाओ का पालन करूगा उसे ज्योतिष–शास्त्र वेत्ता ब्राह्मण पुरोहित तथा नीतिनिपुण मत्रियो और धर्म को जानने वाली पतिव्रता स्त्री को ही रानी रूप मे वरण करना चाहिये।

श्रेष्ठ राजा मत्रियो के साथ शत्रुओ पर विजय प्राप्त करता है। राजा को ब्राहमण या क्षत्रिय को अपना सेनापति बनाना चाहिये। राजा को उत्तम माध्यम और अधम कार्यों की दृष्टि से उत्तम मध्यक और अधम कोटि के मनुष्यो को नियुक्त करना चाहिये–

जयेच्छु पृथ्वी राजा सहायानानयेद्धितान्।

धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सग्रामार्मसु।

निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथा शुचीन्।।[3]

1–अग्निपुराण 161/18–10

2–अग्निपुराण 218/2–3

3–अग्निपुराण 220/11–12

जो जिस कार्य मे निपुण हो उसे उसी कार्य मे लगाना चाहिये। शरण मे आये हुए को आश्रय अवश्य देना चाहिये। राजा को गुप्तचरो की दृष्टि से देखना चाहिये। राजा को सेवको के अनुराग विराग प्रजा के गुण—अवगुण तथा शुभ—अशुभ कर्मों का ज्ञान रखना चाहिये। राजा को ऐसा ही कार्य करना चाहिये जिससे लोगो का अनुराग बढे। ऐसा कर्म जिससे प्रजा मे विराग उत्पन्न हो छोड देना चाहिये। राज्यलक्ष्मी वहीं है जहाँ जनता का अनुरजन करती रहे और उसी से राजा राजा कहलाता है—

जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनरञ्जनात्।[1]

4—प्रायश्चित—

पञ्चधा धर्म के अन्तर्गत पाचवा नैमित्तिक धर्म है जो कि लौकिक तथा पारलौकिक दोनो निमित्तो का आश्रय लेकर प्रवर्तित होता है जैसे प्रायश्चित आदि। अग्निपुराण के कई अध्यायो मे प्रायश्चित विधि का बडे विस्तार से वर्णन किया गया है। यह प्रायश्चित विभिन्न प्रकार के बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है—

प्रायश्चित ब्राहम्णोक्त वक्ष्ये पापोपशान्तिदम।

स्यात्प्राणावियोगफलो व्यापारो हनन स्मृतम्।।[2]

ब्रह्मा के द्वारा कहे गये ये प्रायश्चित समस्त पापो को शान्त करने वाला है। देश काल अवस्था शक्ति और किये हुए पाप को ध्यान मे रखकर प्रयत्न पूर्वक प्रायश्चित करना चाहिये। क्योकि प्रायश्चित के बिना पापो से छुटकारा नही मिलता—

देश काल वय शक्ति पाप चावेक्ष्य यत्नत ।

प्रायश्चित प्रकल्प्य स्याद्यत्रचोक्ता न निष्कृति ।।[3]

अग्नि पुराण के 962वे अध्याय मे कहा गया है कि भगवान विष्णु की स्तुति समस्त पापो को नष्ट करने वाली है—

प्रवर्तते नृणा चित्त प्रायश्चित्त स्तुतिस्तदा [4]

नृसिहानत गोविन्द भूतभावन केशव।

दुरुक्त दुष्कृत ध्यात शमयाघ नमोऽस्तुते।।[5]

हे नरसिह भगवान अनन्त गोविन्द भूतभावन केशव मेरे जो भी दुरुक्त दुष्कृत और चिन्तित पाप है

1—अग्निपुराण 220/24
2—अग्निपुराण 173/1
3—अग्निपुराण 173/6
4—अग्निपुराण 172/1
5—अग्निपुराण 172/9

उन्हे आप शान्त करे। आपको नमस्कार है।

पर ब्रह्म पर धाम पवित्र परम च यत्।

तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पाप तत्प्रणश्यतु।।[1]

परमब्रह्म परमधाम परमपवित्र भगवान विष्णु के सकीर्तन से समस्त पापो का नाश हो जाय। इसके अतिरिक्त अग्निपुराण के 169वे और 160वे अध्याय मे पापो एव महापापो के प्रायश्चित का विस्तार से वर्णन किया गया है।

एतत्प्रभृतिपापाना प्रायश्चित वदामि ते।

ब्रह्महाद्वादशाब्दानि कुटी कृत्वा वने वसेत्।[2]

विभिन्न पापो का प्रायश्चित बतलाते हुए कहा गया है कि ब्रह्महत्या करने वाले को बारह वर्षो तक वन मे कुटी बनाकर रहना चाहिये।

भिक्षेताऽऽत्मशुविशुद्धयर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्।

प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्त्रिखानिशरा।।

यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसेवनेन वा।

जपन्वाऽन्यतम वेद योजनाना शत व्रजेत।।[3]

वह व्यक्ति आत्म शुद्धि के लिए कपाल लेकर भिक्षा मागे अथवा अग्नि मे कूद पडे अथवा उसे अश्वमेघ या मोमेध यज्ञ करना चाहिये और किसी एक वेद का जप करते हुए सौ योजन निकल जाना चाहिये।

सर्वस्व वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत्।

व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम्।।[4]

अथवा उसे वेद विद्वान ब्राहमण के लिए सर्वस्व दान करना चाहिये। इन व्रतो से महापातकियो के मल का नाश हो जाता है।

महापापानुपयुक्ताना प्रायश्चितानि वच्मिते।

सवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन्।।[5]

1–अग्निपुराण 172/17
2–अग्निपुराण 169/1
3–अग्निपुराण 169/2–3
4–अग्निपुराण 169/4
5–अग्निपुराण 170/1

महापापियो के प्रायश्चित को बतलाते हुए पहले कहा गया है कि जो व्यक्ति एक वर्ष तक किसी पतित व्यक्ति के सम्पर्क मे रहता है वह स्वय पतित हो जाता है। अत पतित व्यक्तियो का त्याग करना चाहिए।

कृमिदष्टाश्चाऽऽत्मघाती कृच्छाज्जप्याच्च होमत।
होमाद्यैश्चानुपातेन पूयन्ते पापिनोऽखिला।।[1]

आत्महत्या की चेष्टा करने वाले व्यक्ति की प्रजापत्यव्रत जप एव होम से शुद्धि होती है। होमादि के अनुष्ठान एव पश्चाताप से समस्त पापियो की शुद्धि हो जाती है।

प्रायश्चित रहस्यादि वक्ष्ये शुद्धिकर परम्।
पौरूषेण तु सूक्तेन मास जप्यादिनाऽघहा।।
मुच्यते पातकै सर्वेर्जप्त्वा त्रिरद्यमर्षणम्।
वेदजप्या द्वायुयमाद्गायत्रया व्रततोऽघहा।।[2]

अत्यन्त शुद्धिकारक रहस्य भूत प्रायश्चित के सबध मे बतलाते हुए कहा गया है कि एक मास तक पुरूष सूक्त का जप करने से मनुष्य समस्त पापो से मुक्त हो जाता है। किन्तु अघमर्षण मन्त्र का जप तीन बार करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। वेद मत्रो का जप करने से वायु मत्रो का जप करने से यम मत्रो का जप करने से और गायत्री मत्र का जप करने वाले लोग समस्त पापो से मुक्त हो जाते हैं।

देवाक्षमार्चनादीना प्रायश्चित तु लोपत।
पूजालोपे चाष्टशत जपेद्दिद्वगुरूपूजनम्।।[3]

अर्थात् किसी देवता आदि का पूजन छूट जाने पर प्रायश्चित स्वरूप उसी देवता के मत्र का 108 बार जप करना चाहिये और देवता का पूजन दो बार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि मनुष्य द्वारा किया गया पश्चाताप और हरि स्मरण समस्त पापो का श्रेष्ठ प्रायश्चित है—

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुस प्रजायते।
प्रायश्चित तु तस्यैक हरिसस्मरण परम्।।[4]

1—अग्निपुराण 170/46
2—अग्निपुराण 171/1—2
3—अग्निपुराण 174/1
4—अग्निपुराण 174/8

प्रवृत्तौ तु निवृत्तौ तु इज्यते भुक्तिमुक्तिद ।

अग्निरूपस्य विष्णोर्हि हवन ध्यानमर्चनम्।।

जप्य स्तुतिश्च प्रणति शरीरस्थाद्यघौधनुत्।।[1]

अग्नि रूप भगवान विष्णु का हवन ध्यान और अर्चन प्रवृत्ति कर्म और निवृत्ति कर्म मे भाग और मोक्ष को प्रदान करने वाला होता है। अग्नि मत्रो का जप करना उसकी स्तुति करना अथवा उसको प्रणाम करना समस्त शरीरस्थ पापो का नाश कर देता है।

5—व्रत—

अग्निपुराण के 165वे अध्याय मे व्रतो का वर्णन करते हुए कहा गया है—

शाश्त्रोदितो हि नियमो व्रत तच्च तपोमतम्।

नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादय ।।[2]

अर्थात शास्त्रो मे वर्णित नियम ही व्रत है। उसी को तप भी कहते हैं। दम आदि तो इसी व्रत के विशेष नियम कहे गये हैं।

व्रत हि कर्तृसतापात्तप इत्यभिधीयते।

इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते।।[3]

व्रत का अनुष्ठान करने मे कष्ट होने के कारण इन्हे तप कहा गया है और इनके द्वारा इन्द्रियो के समूहो का नियमन करने के कारण ये नियम भी कहलाते हैं। पापों से विमुख होकर धर्मों के ससर्ग मे रहने को ही उपवास कहा जाता है। जो ब्राहमण अग्न्याधान इत्यादि नही करते उनका कल्याण व्रत उपवास नियम तथा विविध प्रकार के दानो से होता है। ऐसे ब्राहमणो पर देवता भी प्रसन्न होकर भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं।

व्रत के दिन समस्त भोगो का परित्याग कर देना चाहिये। प्रात काल पचगव्य से मुख धोकर व्रत का आचरण करना चाहिये।

क्षमा सत्य दयादान शौच निन्द्रिय निग्रह ।

देवपूजाऽग्निहरण सन्तोषीऽस्तेयमेव च।।

सर्वव्रतेष्वय धर्म सामान्यो दशधा स्मृत ।।[4]

1—अग्निपुराण 174/14

2—अग्निपुराण 175/2

3—अग्निपुराण 175/3

4—अग्निपुराण 175/10

क्षमा सत्य दया दान शौच इन्द्रिय–निग्रह देवपूजा अग्न्याधान सन्तोष और अस्तेय इन दस धर्मों का समस्त व्रतो मे समान रूप से निर्वाह करना चाहिये। व्रत के दिन पवित्र मत्रो का जप तथा यथाशक्ति हवन लाभकारी होता है। नित्य–स्नान अल्पाहार तथा गुरूदेव द्विज का पूजन करना चाहिये। खारी वस्तुये शहद लवण मदिरा तथा मास का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये।

व्रत करने वाले को भगवान विष्णु की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये अये व्रतपते! मै कीर्ति सन्तति विद्या सौभाग्य आरोग्य नैर्मल्य तथा भुक्ति–मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्रत कर रहा हू। हे जगत्पते! मै आपके समक्ष यह उत्तम व्रत करने का सकल्प कर रहा हू, आपकी कृपा से यह निर्विघ्न समाप्त हो जाय। हे सत्पते! यदि मैं इस सकल्पित व्रत के पूर्ण किये बिना ही मर जाऊ तो भी यह आपकी प्रसन्नता से पूर्ण सम्पन्न समझा जाय।[1]

समस्त व्रतो के व्रती को चाहिये कि वह स्नान करके स्वर्ण निर्मित व्रत मूर्ति का पूजन करे भूमि पर शयन करे और व्रत के अन्त मे जप और होम करे। यथाशक्ति चौबीस बारह पाच तीन अथवा एक ही ब्राह्मण तथा गुरू की पूजा करे उन्हे भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे।

इस प्रकार अग्निपुराण मे व्रत की परिभाषा बताते हुए उसके अनुष्ठानादि का सविस्तार वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त तिथि दिन नक्षत्र मास ऋतु वर्ष तथा अपनो मे किये जाने वाले व्रतो का यहा सविस्तार वर्णन किया गया है।

<u>1–प्रतिपदा–</u>

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतान्यखिलदानिते।

कार्तिकाश्वयुजे चैत्रे प्रतिपद ब्रह्मणस्तिथि ।।[2]

आश्विन कार्तिक तथा चैत की प्रतिपदा ब्रह्मा की तिथि मानी गयी है। इसमे व्रत करने के लिए पचदशी को उपवास करके प्रतिपदा के दिन ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये।

<u>2–द्वितीया व्रतानि–</u>

द्वितीयाव्रतक वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिदायकम्।

पुष्पाहारो द्वितीयायामश्विनौ पूजयेत्सुरौ।।[3]

भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाले द्वितीय व्रत के विषय मे कहा गया है कि द्वितीया व्रत करने

1–अग्निपुराण 175/44–46

2–अग्निपुराण 176/1

3–अग्निपुराण 177/1

वाले को केवल पुष्पाहार करना चाहिये तथा अश्विनीकुमार नामक दो देवताओ की पूजा करनी चाहिये।

3—तृतीया—

ललिताया तृतीयाया मूलगौरी व्रत शृणु।।

तृतीयाया चैत्रशुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि।

तिलस्नातोऽर्चयेच्छभु गौर्या हैमफलादिभि ।।[1]

भोग और मोक्ष प्रदायिनी तृतीया व्रत मे मूल गौरी व्रत किया जाता है। चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया मे भगवान शिव ने गौरी से विवाह किया था। अत उस दिन तिल से स्नान करके सुवर्ण तथा फल आदि से गौरी शकर का पूजन करना चाहिये।

4—चतुर्थी—

चतुर्थी व्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्ति प्रदानि ते।

माघे शुक्ल चतुर्थ्यां तु उपवासी यजेद्गणम्।।[2]

भुक्ति मुक्ति दायक चतुर्थी मे गणेश जी की अराधना करनी चाहिये।

मासिभाद्रपदे चापि चतुर्थी कृच्छिव व्रजेत्।[3]

भादो की चतुर्थी मे गणपति की पूजा और व्रत करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है।

5—पचमी—

पचमीव्रतक वक्ष्ये आरोग्य स्वर्गमोक्षदम्।

नभोनभस्याश्विने च कार्तिके शुक्लपक्षके।।[4]

आरोग्य स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाला पचमी व्रत के विषय में कहा गया है कि श्रावण भाद्रपद अश्विन तथा कार्तिक के शुक्ल पक्ष की पचमी मे वासुकि तक्षक कालिय तथा धनजय नामक सर्पों की पूजा करनी चाहिये। ये सर्प अभय आयु विद्या और यश तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं।

6—षष्ठी—

षष्ठया फलाऽशनोऽर्घ्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।

1—अग्निपुराण 178/1—2
2—अग्निपुराण 179/1
3—अग्निपुराण 179/4
4—अग्निपुराण 180/1—3

कार्तिक आदि मास की षष्ठी मे फलाहार करके सूर्य को अर्घ्य आदि समर्पण करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।[1]

7—सप्तमी—

सप्तमी व्रतक वक्ष्ये सर्वेषा भुक्तिमुक्तिदम।
माघमासेब्जके शुक्ले सूर्यं प्राच्र्य विशोकभाक।।
मार्गशीर्षेऽसिते प्राच्र्य सप्तमी चापराजिता।
मार्गशीर्ष सिते चाब्द पुत्रीया सप्तमी स्त्रिया।।[2]

माघ शुक्ल की सप्तमी मे कमल से सूर्य की पूजा करने से मनुष्य शोक रहित हो जाता है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की सप्तमी का नाम अपराजिता है। उसमे सूर्य पूजा करने से पराजय नही होती तथा इस सप्तमी मे सूर्य का पूजन करने से स्त्रिया पुत्रवती हुआ करती हैं।

8—अष्टमी—

मसि भाद्रपदेष्टम्या रोहिण्यामर्धरात्रके।।
कृष्णो जातो यतस्तस्या जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी।
सप्तजन्म कृतात्पापान्मुच्यते चोपवासत।।[3]

भाद्रपद की अष्टमी मे रोहिणी नक्षत्र मे अर्धरात्रि के समय भगवान कृष्ण जयन्ती मनायी जाती है। उसमे उपवास करने से सात जन्मो के पापो का नाश होता है।

जन्माष्टमी व्रत कर पुत्रवान्विष्णुलोक भाक।
वर्षे वर्षे तु य कुर्यात्पुत्रार्थी वेत्तिनो भयम्।।[4]

जन्माष्टमी का व्रत करने वाला पुत्रवान और वैकुण्ठगामी होता है। जो पुत्रार्थी प्रतिवर्ष अष्टमी का व्रत करता है उसे किसी प्रकार का भय नही रहता।

9—नवमी—

देवी पूज्याऽऽश्विने शुक्ले गौर्याख्यानवमीव्रतम्।।

1—अग्निपुराण 181/1
2—अग्निपुराण 182/14
3—अग्निपुराण 183/1—2
4—अग्निपुराण 183/16

अधार्दना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता।

दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिताऽथवा।।[1]

आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी का नाम गौरी है उस दिन देवी की पूजा करनी चाहिये। सबसे श्रेष्ठ नवमी अघार्दना है उस दिन नवग्रहो मे स्थित या एक ग्रह मे स्थित देवी पूजा करनी चाहिये। चैत्र मास की नवमी तिथि मे रामनवमी मनायी जाती है।

10—दशमी—

दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुद ।।

दिशश्च कान्चनीर्दद्याद् ब्राहमणाधिपतिर्भवेत्।।[2]

धर्म कामादि प्रदायिनी दशमी के दिन व्रती एक बार भोजन कर व्रत समाप्ति पर दस गायो का दान करना चाहिये। ब्राहमणो को दक्षिणा मे स्वर्ण देना चाहिये। इस प्रकार व्रत करने वाला ब्राह्मणाधिपति हो जाता है। अश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी विजयदशमी के रूप मे प्रसिद्ध है।

11—एकादशी—

एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।

द्वादश्येकादशी यत्र तत्र सनिहितो हरि ।।

एकादश्या विष्णुपूजा कार्या सर्वोपकारिणी

धनवान्पुत्रवाल्लोके विष्णुलोके महीयते।।[3]

शुक्ल और कृष्ण दोनो पक्ष की एकादशी मे भोजन नहीं करना चाहिये। एकादशी मे द्वादशी का योग हो जाने से भगवान विष्णु का सामीप्य प्राप्त होता है। एकादशी के दिन भगवान विष्णु की पूजा सभी लोगो के लिए उपकारी है। इससे मनुष्य को इस लोक मे धन पुत्र तथा बैकुण्ठ मे महानता की प्राप्ति होती है।

12—द्वादशी—

द्वादशी व्रतक वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।

एकभुक्तेन नक्तेन तथेवायाचितेन च।।[4]

भुक्ति मुक्ति प्रदायक द्वादशी व्रत के सबध मे कहा गया है कि द्वादशी को दिन या केवल रात मे ही

1—अग्निपुराण 185/1 3

2—अग्निपुराण 186/1

3—अग्निपुराण 187/2 9

4—अग्निपुराण 188/1

बिना मागा हुआ भोजन करना चाहिये या उपवास करना चाहिये या भिक्षान्न गृहण करना चाहिये।

श्रवणेन युता श्रेष्ठा महती साह्युपोषिता।।[1]

भाद्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है तो वह अत्यन्त पुण्य मानी जाती है। उसमे उपवास करना चाहिये।

मार्गशीर्षे सति विष्णु द्वादश्या समुपोषित ।[2]

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की द्वादशी मे उपवास करके विष्णु का पूजन करना चाहिये।

13–त्रयोदशी–

त्रयोदशी व्रतानीह सर्वदानि वदामिते।

अनगेन कृतमादौ वक्ष्येऽनगत्रयोदशीम्।।

त्रयोदश्या मार्गशीर्षे शुक्लेऽनगहर यजेत्।

मधु सम्प्राशयेद्रात्रौ धृत होमतिलाक्षतै।।[3]

कामदेव द्वारा सर्वप्रथम अनुष्ठान किया जाने के कारण अनगत्रयोदशी के नाम से विख्यात यह व्रत समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाला है। मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की त्रयोदशी मे भगवान शकर का पूजन करना चाहिये। उस दिन रात्रि मे शहद खाकर धी तिल और अक्षत से हवन करना चाहिये।

14–चतुर्दशी–

कार्तिके तु चतुर्दश्या निराहारो यजेच्छिवम्।।

तत शुक्लचतुर्दश्यामनन्त पूजयेद्धरिम्।

कृत्वा दर्भमय चैव वारिधानी समन्वितम्।।[4]

कार्तिक की चतुर्दशी मे निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिये। भाद्रपद शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी मे अनन्त भगवान की पूजा करनी चाहिये। उस दिन कुश की अनन्त प्रतिमा बनाकर उसे कलश पर स्थापित करके पूजा करनी चाहिये।

शिवरात्रिव्रतम–

माघ फाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी।

1–अग्निपुराण 189/1
2–अग्निपुराण 190/1
3–अग्निपुराण 191/1–2
4–अग्निपुराण 192/17

कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरण व्रती।।[1]

शिवरात्रि का व्रत माघ और फाल्गुन के बीच पडने वाली कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी मे उपवास तथा जागरण करना चाहिये जिससे व्रती की समस्त कामनाये पूर्ण होती हैं।

<u>अशोक पूर्णिमादिव्रत</u>--

अशोकपूर्णिमावक्ष्ये भूधर च भुवयजेत्।

फाल्गुन्या सितपक्षाया वर्ष स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक।।[2]

अशोक पूर्णिमा व्रत मे पर्वत तथा पृथ्वी की पूजा करनी चाहिये। फाल्गुन की पूर्णिमा मे एक वर्ष तक यह व्रत करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पित्र्या याऽमावसी (स्या) तस्या पितृणा दक्तयक्षयम्।

उपोष्याल्द पितृनिष्टवा निष्पाप स्वर्गमाप्नुयात्।।[3]

आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की पितृविसर्जनी अमावस्या मे पितरो का यजन करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग चला जाता है।

<u>वारव्रत</u>--

कृत्वाहस्ते सूर्यवार नक्तेभाब्द स सर्वभाक।

चित्राम सोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत्।।[4]

हस्त नक्षत्र के रविवार को रात्रिव्रत करने से मनुष्य की समस्त अभिलाषाये पूर्ण हो जाती है। चित्रा नक्षत्र के सात सोमवारो को व्रत करने से सुख की प्राप्ति होती है।

<u>नक्षत्रव्रत</u>--

नक्षत्र पुरूष चाऽऽदौ चैत्रमासे हरिं यजेत्।।

नक्षत्रपुरूषो विष्णु पूजनीय शिवात्मक।

शाभवनीय व्रतकृन्मानभे पूजयेद्वरिम।।[5]

किसी भी नक्षत्र मे भगवान विष्णु की पूजा समस्त मनोकामनाओ को पूर्ण करने वाली है। चैत्रमास मे पहले नक्षत्र पुरुष भगवान विष्णु की पूजा करनी चाहिये। नक्षत्र पुरूष विष्णु का पूजन शिवरूप समझकर

1--अग्निपुराण 193/1--2
2--अग्निपुराण 194/1
3--अग्निपुराण 194/3
4--अग्निपुराण 195/3
5--अग्निपुराण 196/18

करनी चाहिये। शाभवनीय व्रत करने वाले पुरूष को मास नक्षत्र मे हरि का पूजन करना चाहिये।

दिवसव्रत–

यश्चोभयमुखी दद्यात्प्रभूत कनकान्विताम्।।

दिने पयोव्रतस्तिष्ठत्स याति परम पदम्।[1]

जो व्यक्ति एक दिन केवल दुग्धाहार रहकर मुख तथा पूछ दोनो ओर बहुस्वर्ण युक्त गाय का दान करता है उसे परमपद की प्राप्ति होती है। तीन दिन केवल दुग्धपान कर स्वर्ण निर्मित कल्पवृक्ष दान करने वाला व्यक्ति ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है।

मासव्रत–

धर्मकामार्थमोक्षाश्च प्राप्नुयात्कौमुदव्रती।

सर्वलभेद्धरिं प्राच्य मासोपवासकव्रती।।[2]

कौमुदी व्रत मे अखिल मास की द्वादशी मे अक्षत पुष्प आदि से भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये। घृत अथवा तिल के तेल मे दीपक जलाकर नैवेद्य चढाना चाहिये। तत्पश्चात मालती माला 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मन्त्र का जप करना चाहिये इस प्रकार किया गया कौमुदी व्रत धर्म अर्थकाम और मोक्ष प्रदान करने वाला है। एक मास तक व्रत रहकर भगवान विष्णु की पूजा सभी मनोरथो को पूर्ण करने वाली है।

नानाव्रत–

गौरी माहेश्वर चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात्।

सूर्य भक्तातु या नारी ध्रुव सा पुरूषो भवेत।।[3]

गौरी–शकर की पूजा से सौभाग्य की प्राप्ति होती है जो स्त्री सूर्य की भक्ति करती है वह नि सन्देह अगले जन्म मे पुरूष होती है।

दीपदानव्रत–

चातुर्मासे विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि।

दीपदानात्पर नास्ति न भूत न भविष्यति।।

1–अग्निपुराण 197/1–2

2–अग्निपुराण 198/16

3–अग्निपुराण 199/9 11

द्वीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम्।

सौभाग्य दीपद प्राप्य स्वर्गलोके महीयते।।[1]

चातुर्मास्य तथा विशेषत कार्तिक मे दीपदान करने से विष्णुलोक एव स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। दीपदान से मनुष्य आयु नेत्र लक्ष्मी पुत्र तथा सौभाग्यादि प्राप्त करके स्वर्गलोक मे भी पूज्य हो जाता है।

नवव्यूहार्चनम्–

मण्डलेऽब्जेऽर्चयेन्मध्ये अबीज वासुदेवकम्।।

आबीज च सकर्षणम प्रद्युम्न च दक्षिणे।

अ अनिरूद्ध नैर्ऋते ओ नारायणमप्सुच।।[2]

कमलाकार चक्र के बीच मे वासुदेव कृष्ण और सकर्षण (बलराम) का पूजन क्रमश अ और आ बीज मत्रो से करना चाहिये। दक्षिण मे प्रद्युम्न दक्षिण पश्चिम मे अ बीजमत्र से अनिरूद्ध पश्चिम में ॐ मत्र से नारायण का पूजन करना चाहिये। पश्चिमोत्तर मे तत् सत् मत्र से ब्रह्मा उत्तर मे ह रू मत्र से विष्णु और क्ष्रौ मत्र से नृसिह तथा पूर्वोत्तर मे भू मत्र से वराह भगवान का पूजन करना चाहिये। चक्र के पश्चिम द्वार प्रान्त मे क ट श मत्र से पूर्वाभिमुख करूण दक्षिण मे गदा पूर्व मे लक्ष्मी और दक्षिणोत्तर मे पुष्टि का पूजन करना चाहिये।

भीष्मपचक व्रत–

भीष्म कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव भीष्मपञ्चकम्।

ब्राहमण पूजनात्पञ्चउ कोपवासादि (त्म) कव्रतम्।[3]

महारथी भीष्म ने इस व्रत का अनुष्ठान करके हरिपद को प्राप्त किया था। अत इसको भीष्मपञ्चक व्रत कहते हैं। ब्रह्मा विष्णु का पूजन और पाच दिनो तक का उपवास ही इस व्रत का नियम है।

अगस्त्यर्घ्यदानकथनम्–

अगस्त्यो भगवान्विष्णुस्तमभ्यचाऽऽप्नुयाद्धरिम्।

अप्राप्ते भास्करे कन्या सत्रिभागैस्त्रिभिर्दिनै।।[4]

साक्षात् विष्णु रूप भगवान अगस्त जी की उपासना से बैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। सूर्य के कन्या राशि मे प्रवेश के पूर्व तीन दिनो तक उपवास रखकर तीनो कालों को अगस्त्य की पूजा करके उन्हे अर्घ्य

1–अग्निपुराण 200/2–3

2–अग्निपुराण 201/1–2

3–अग्निपुराण 205/9

4–अग्निपुराण 206/1

प्रदान करना चाहिये।

व्रतदानादिसमुच्चय–

रवीशब्रह्मालक्ष्म्याद्या सर्वे विष्णोर्विभूतय ।।

तमुद्दिश्य व्रत दान पूजादि स्यात्तु सर्वदम्।[1]

सूर्य शिव ब्रह्मा तथा लक्ष्मी आदि सभी देव–देविया विष्णु की ही विभूतिया हैं अत उनके उद्देश्य से किया गया व्रत दान तथा पूजन सबकुछ प्रदान करने वाला होता है।

6–दानधर्म–

दानधर्मान्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदाञ्शृणु।

दानमिष्ट तथा पूर्तं धर्म्मं कुर्वन्हि सर्वभाक।।[2]

भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले दान धर्मों के विषय मे कहा गया है कि इष्ट और पूर्त आदि दान करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त कर लेता है।

वावली कूप तथा तालाब खोदवाना देवालय बनवाना दान करना तथा सार्वजनिक बगीचा लगवाना–यह पूर्त धर्म कहलाता है जो मुक्तिदाता हुआ करता है। अग्निहोत्र तप सत्य वेदानुसरण आतिथ्य तथा वैश्वदेव–यह इष्ट धर्म कहलाता है जो स्वर्गदायक होता है। ग्रहणकाल सूर्यसक्रमण काल तथा द्वादशी आदि मे दिया गया दान पूर्त धर्म कहलाता है। उचित देशकाल तथा पात्र मे दिया हुआ दान करोडो गुना अधिक फल देने वाला होता है। दान तो अयन विषुव पुण्य पर्व व्यतीपात दिनक्षय युगादिसक्रान्ति चतुर्दशी अष्टमी शुक्लपचदशी (पूर्णिमा) सर्वद्वादशी अष्टकाकृत्य यज्ञ उत्सव विवाह मन्वन्तर तथा वैधृत योग मे दु स्वप्न देखने पर करना चाहिये अथवा जिस दिन श्रद्धा हो उसी दिन या सदा करना चाहिये।[3]

श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदावादानमिष्यते।

नामगोत्र समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चाऽऽत्मन ।

सम्प्रदेय प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयम्।।[4]

अर्थात् दान लेने वाले को स्वय का तथा दान देने वाले का नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके दान देना चाहिये। कन्यादान मे दाता देय तथा सम्प्रदान तीनो के नाम और गोत्र का उच्चारण करना चाहिये। स्वर्ण अश्व तिल हाथी दासी रथ पृथ्वी गृह कन्या तथा कपिला गौर ये दस महादान कहलाते हैं। दान

1–अग्निपुराण 208/3–4
2–अग्निपुराण 209/1
3–अग्निपुराण 209/2–7
4–अग्निपुराण 209/22

की प्रतिज्ञा करे न देने वाले को सौ कुलो का नाश करने का पाप लगता है। बदले मे लाभ की इच्छा से किया गया दान व्यर्थ हो जाता है। श्रद्धापूर्वक दान तथा यज्ञ करने वाले को दिया गया दान अनन्तफलदायी होता है। बिना श्रद्धा के तथा कुपात्र को दिया गया दान व्यर्थ जाता है। दान धर्म कल्याणकारक तथा मुक्ति भुक्तिदायक हुआ करता है।[1]

7--श्राद्धकल्पनिरूपण--

श्रद्धा पूर्वक किये जाने के कारण ही मुख्यत इसका नाम श्राद्ध है। इस विषय मे अग्निपुराण के 163वे अध्याय मे कहा गया है--

श्राद्धकल्प प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रद शृणु।

निमन्त्र्य विप्रान्पूर्वेद्यु स्वागतेनापराह्णत ।।[2]

अर्थात भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले श्राद्ध कल्प मे श्राद्ध के एक दिन पूर्व ही ब्राह्मणो को आमत्रित करना चाहिये। दूसरे दिन उनका स्वागत और पूजन करके आसन पर बैठाना चाहिये। दैव श्राद्ध कल्प मे युग्म सख्या मे तथा पितृ श्राद्ध कल्प मे अयुग्म सख्या मे ब्राहमणो को बैठाना चाहिये। इसी मत की पुष्टि मनु स्मृति तथा विष्णु पद्म आदि पुराणो मे भी होता है--

द्वौ दैवै पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।

भोजयते सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत् विस्तरे।।

सत्क्रिया देशकालौ च शौच ब्राह्मणसम्पद ।।

पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्।।[3]

ब्राहमणो का विस्तार उचित सत्कार आदि में बाधक बन जाता है। जिससे नि सन्देह महान् अकल्याण होता है।

ब्राहमणो के हाथो को धुलाने के पश्चात् आसन के लिए कुशो को बिछाकर विश्वेदेवास इत्यादि ऋचा से पितरो का आवाहन करना चाहिये। जलगन्ध माल्य धूप दीप का दान करके श्राद्धकर्म करने वाले को बायी से दायी ओर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। पितरो के लिए दूनी सख्या मे कुशों को बिछाकर 'उशन्तस्त्वा इत्यादि ऋचा से पितरो का आवाहन करना चाहिये। आयन्तु न इत्यादि मत्र का जप करना चाहिये। तिल के साथ सभी अन्न को लेकर दक्षिणाभिमुख होकर पितृयज्ञ के समान पहले के स्थान मे पिण्ड

1--अग्निपुराण--209/23--29 31 36 37

2--अग्निपुराण--163/1

3--मनुस्मृति--3/125--126 विष्णुपुराण 3/15/15 पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 9

दान करना चाहिये तथा यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणो को प्रणाम करके विसर्जन करना चाहिये। यह श्राद्ध प्रत्येक वर्ष उसी महीने उसी दिन करना चाहिये जिस दिन मृत्यु होती है। (श्राद्ध कमलाकर मे श्राद्ध के 72 अवसर बताये गये है) मासिक श्राद्ध हविष्यान्न सेतथा वार्षिक श्राद्ध खीर से किया जाता है।[1]

वसु रूद्र आदित्य और पितर ये श्राद्ध देवता मनुष्यो द्वारा किये गये श्राद्ध से प्रसन्न हो जाते है। तथा पितर गण श्राद्ध करने वाले को आयु प्रजा धन विद्या स्वर्ग मोक्ष सुख और राज्य प्रदान करते हैं।[2] श्राद्ध चन्द्रिका मे तो कूर्म पुराण के वचन से यहा तक कहा गया है कि श्राद्ध से बढकर कोई कल्याणकर वस्तु है ही नही। इसलिए चतुर मनुष्य को प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिये।[3]

विष्णु पुराण मे कहा गया है कि श्रद्धालु को सभी वस्तुओ के अभाव मे वन मे जाकर अपनी दोनो भुजाओ को उठाकर कह देना चाहिये कि मेरे पास श्राद्ध के योग्न न धन है न दूसरी वस्तु। अत मैं अपने पितरो को प्रणाम करता हू। वे मेरी भीक्ति से ही तृप्ति–लाभ करे।[4] जो यह समझकर कि पितर हैं ही कहा श्राद्ध नहीं करता पितर लोग लाचार होकर उसका रक्तपान करते हैं।[5] जो उचित तिथि पर जल अथवा शाक से भी श्राद्ध नही करता पितर उसे शाप देकर लौट जाते हैं।[6] जिस देश अथवा कुल मे श्राद्ध नही होता वहा वीर निरोग और शतायु पुरूष नही उत्पन्न होते। जहा श्राद्ध नही होती वहा कल्याण नहीं होता।

पिता का श्राद्ध पुत्र को ही करना चाहिये। पुत्र न हो तो स्त्री श्राद्ध करे। पत्नी के अभाव मे सहोदर भाई तथा उसके भी अभाव मे सपिण्डो को श्राद्ध करना चाहिये। जमाता और दौहित्र भी श्राद्ध के अधिकारी हैं। सभी के अभाव मे राजा को मृत व्यक्ति के धन से उसका श्राद्ध करना चाहिये क्योकि वह सबका बान्धव कहा जाता है।[7]

कुश तिल तथा दौहित्र–इन तीन वस्तुओ को मनु ने श्राद्ध मे अत्यन्त पवित्र कहा है। तथा पवित्रता अक्रोध और अचापल्य ये तीन श्राद्ध मे प्रशसनीय गुण हैं।[8]

8–नरकनिरूपण–

दुष्कर्म फलरूप मे नरक का चित्रण अग्निपुराण मे मिलता है किन्तु नरक के स्वरूप का वर्णन करने

1–अग्निपुराण 163/2–40

2–अग्निपुराण 163/40–42 याज्ञवल्क्य स्मृति–1/270

3–श्राद्धचन्द्रिका (कूर्मपुराण)

4–विष्णु पुराण 3/14/30

5–श्राद्ध कल्पलता श्राद्धप्रकाश श्राद्धविवेक–आदित्य पुराणानुसार

6–श्राद्ध कल्प (कूर्म पुराण)

7–मार्कण्डेय पुराण श्राद्धकल्पलता

8–मनुस्मृति 3/235

से पूर्व अग्निपुराण मे कहा गया है कि–

पुष्पाद्यै पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे।

आयुषोऽन्ते नर प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते।।[1]

भगवान विष्णु की पुण्यादि से पूजा करने से नरको की प्राप्ति नहीं होती और आयु समाप्त होने पर मनुष्य न चाहते हुए भी प्राणो मे मुक्त हो जाता है। नरक स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जल अग्नि विष शस्त्र क्षुधा व्याधि तथा पर्वतो से गिरकर इनमे से किसी भी प्रकार से मृत्यु हो प्राप्त करने वाला मृत्यु के अनन्तर दूसरे शरीर को प्राप्त करता है और कर्मानुसार यातनाओ को भोगता है। उनमे से पापी दु ख भोगता है किन्तु धार्मिक व्यक्ति सुख प्राप्त करता है। पापियो को यमराज की आज्ञा से यमदूतो द्वारा नरको मे डाल दिया जाता है जबकि सत्कर्मी को वशिष्ठ की आज्ञा से स्वर्ग मे पहुचा दिया जाता है।

गोघाती तु महावीच्या वर्षलक्ष तुपीडयते।

ताम्रकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा भूमिहारक ।।

अर्थात् गोहत्या करने वाला एक लाख वर्ष तक महावीथी नामक नरक मे घोर दु ख भोगता है। ब्रह्मघाती तथा भूमि का अपहरण करने वाला अत्यन्त दहकते हुए ताम्रकुम्भ नामक नरक मे जाता है। इसी प्रकार विभिन्न पाप कर्मों के अनुसार विभिन्न नरको की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। अन्तत यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति मासोपवास एकादशी व्रत तथा भीष्मपचक व्रत करता है उसे नरक नहीं जाना पडता।[2] यहा तामिश्र आदि 28 नरको का उल्लेख है तथा सयमनी पुरी मे पापियो की विविध यातनाओ के भोग का भी वर्णन किया गया है।

<u>9–पूजा</u>–

विभिन्न व्रतोपवास तथा दान धर्मों के अतिरिक्त अग्निपुराण मे अनेक देवी देवताओ की पूजा का बडे विस्तार से कई अध्यायो मे वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है–

1–<u>शालग्रामादि पूजा</u>–

शालग्रामादिचक्राङ्क पूजा सिद्धयै वदामि ते।

त्रिविधा स्याद्धरे पूजा काम्याकाम्योभयात्मिका।।[3]

सिद्धिप्रदायिनी चक्रांकित शालग्राम विग्रहो की पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान

1–अग्निपुराण 203/1

2–अग्निपुराण 203/2–23

3–अग्निपुराण 47/1

श्री हरि की पूजा तीन प्रकार की होती है। काम्या अकाम्या और उमयात्मिका। शालग्राम पूजा तीन प्रकार की होती है जिसमे निष्कला पूजा उत्त्म सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजा मध्यम मानी गयी है।[1]

दशदिक्पालपूजन–

अग्निपुराण के 56वे अध्याय मे दश दिक्पालादि की पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

कुम्भेष्वाह्य शक्रादीन्पूर्वादौ पूजयेत्क्रमात्।
इन्द्राऽऽवागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित।।
पूर्वद्धार च मे रक्ष देवै सह नमोऽस्तुते।
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद् बुध ।।

इस प्रकार पूर्व आदि दिशाओ मे स्थापित कलशो पर इन्द्रादि देवताओ का क्रमश आवाहन करके क्रमश उनकी पूजा करनी चाहिये।[2]

गणपूजा–

गणपूजा प्रवक्ष्यामि निर्विघ्नायाखिलार्थदाम्।
गणाय स्वाहा हृदयमेकदष्ट्रायवैशिर ।।[3]

सम्पूर्ण मनोरथो को प्रदान करने वाली गणेश पूजा का वर्णन करते हुए अग्निपुराण मे कहा गया है कि इसके अनुष्ठान से विघ्न का नाश होता है। गणाय स्वाहा कहकर हृदय तथा एक 'दष्ट्राय स्वाहा' कहकर शिर 'गजकर्णिने स्वाहा' कहकर शिखा 'गजबक्त्राय स्वाहा' से कवच 'महोदराय स्वाहा' से नेत्र और सुदण्डहस्ताय स्वाहा कहकर अस्त्राय फट कहे। इस प्रकार शडग्न्यास करके गणेश गुरू शक्ति अनन्त और धर्मक ये पार्श्वक है। नीचे के मुख्य अस्थिमण्डल और ऊपर के आवरण की भी पूजा करनी चाहिये।[4]

सूर्यपूजा–

वक्ष्ये सूर्यार्चन स्कन्द करागन्यासपूर्वकम।
अह तेजोमय सूर्य इति ध्यात्वा ऽर्ध्यमर्चयेत्।।

अग्निपुराण मे करन्यास और अगन्यास पूर्वक सूर्य की पूजा विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मै तेजोमय सूर्य हू ऐसा ध्यान करते हुए अर्ध्य प्रदान करना चाहिये और यह कल्पना करनी चाहिये कि

1–अग्निपुराण 47/1
2–अग्निपुराण 56/17/18
3–अग्निपुराण 71/1
4–अग्निपुराण 71/2–3

वह अर्घ्य देवता के मस्तक पर छिडके हुए जल से रक्त वर्ण का हो गया है। मन्त्रो से सूर्य की पूजा करके रक्षार्थ चारो ओर आवरण वृत्त घेर देना चाहिये।[1]

<u>शिवपूजा</u>–

शिवपूजा प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान्।

द्वारमस्त्राम्मबुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपाल्यजेत्।।[2]

शिव पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम आचमन करके मन मे प्रणव का जाप करके अस्त्रमन्त्रो से पवित्र रत्न के द्वारा मदिर के द्वार का प्रोक्षण करे। तत्पश्चात होम एव अन्य द्वारपालो का पूजन करे।

<u>चण्डपूजा</u>–

स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्र सहारमात्मनि।

नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम्।।

ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये।

ॐ धूलिचण्डेश्वराय हू फट श्वाहा तमाह्वायेत्।।[3]

अर्थात् देवार्चना के पश्चात् अपने अन्त करण मे मन्त्र समूह का विनियोजन करके विधिपूर्वक चण्ड का पूजन करना चाहिये। उस समय ॐ चण्डेशाय नम से चण्डदेवता को नमस्तार करके मण्डप के मध्य मे चण्डमूर्तये से चण्ड की पूजा करनी चाहिये। ॐ धूलिचण्डेश्वरा हू फट स्वाहा इस मत्र से आवाहन करना चाहिये।

<u>कपिलापूजा</u>–

कपिलापूजन वक्ष्य एभिर्मन्त्रैर्यजेच्च गाम्।

ॐ कपिले नन्दे नम कपिले भद्रिके नम।।

कपिला पूजा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि –ॐ कपिलेद नन्दे नम कमिलेभद्रिके मन इत्यादि मत्रो से गाय की पूजा करनी चाहिये।[4]

<u>कुब्जिका पूजा</u>–

1–अग्निपुराण 73/1–2
2–अग्निपुराण 74/1
3–अग्निपुराण 76/5–6
4–अग्निपुराण 77/1

कुब्जिका क्रम पूजा च वक्ष्ये सर्वार्थसाधनीम।

ययाऽसुरा जिता देवै शस्त्राद्यै राज्यसयुतै ।।

समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाली कुब्जिका की पूजा के प्रभाव से देवताओ ने आज्य लगे हुए शास्त्रास्त्रो द्वारा असुरो को जीत लिया था।[1]

त्वरितापूजा–

नवेय त्वरिता (प्रोक्ता) पुनर्ज्ञेयाऽर्चिताजपे।

ह्रौ सिहायेत्यासन स्याद्घ्री क्षे हृदयमीरितम्।।

नव त्वरिता शक्तिया कही गयी है जिनका ज्ञान और अर्चन विजय काल मे होना चाहिये। ॐ ह्रौं सिहाय इस मत्र से आसन तथा घ्री क्षे इत्यादि मन्त्र से हृदय का पूजन करना चाहिये।[2]

सग्राम विजय पूजा–

(ॐ डे ख ख्या सूर्याय) सङग्रामविजयायनम ।

ह्रा ह्रीं ह्रू ह्री ह्र ।

षडङ्गानि तु सूर्यस्य सङग्रामे जपदस्यहि।[3]

सूर्य के छ अग हैं जो सग्राम मे विजय प्रदान करने वाले हैं। सिन्धु से युक्त सभी पदार्थ माया और वायु से सम्बद्ध सभी पदार्थ उषा प्रभा सन्ध्या साया क्लाविन्ता बिन्दु और विष्णु से युक्त सभी पदार्थ द्वारपाल सूर्य चण्ड और प्रचण्ड का पूजन सुगन्धित पदार्थ इत्यादि से करना चाहिये। इस प्रकार की पूजा जप तप और होम इत्यादि से युद्ध मे विजय होती है।[4]

अङ्गाक्षरार्चनम्–

शख चक्र गदा पद्म मुसल खडगशार्ङ्गके।

वनमालान्वित दिक्षु विदिक्षु च यजेत्क्रमात्।।

शख चक्र गदा पद्म और मुसल खडग धनुष वनमाला की पूजा दिशाओ तथा विदिशाओ मे क्रम से करनी चाहिये।[5]

पञ्चाक्षरादिपूजा–

1– अग्निपुराण 143/1
2– अग्निपुराण 47/5
3– अग्निपुराण 148/1
4– अग्निपुराण 148/9
5– अग्निपुराण 303/15

मेष सज्ञा विष साज्यमस्ति दीर्घोदक रस ।

एतत्पन्चारक्षर मन्त्र शिवद च शिवात्मकम ।[1]

ॐ नम शिवाय पचाक्षर युक्त यह शिवमत्र कल्याणप्रद और कल्याणस्वरूप माना गया है। शिव मत्र के पाच अक्षरो से पचमहाभारत पचतन्मात्राये पाच विषय प्राणादिपाच वायु पाच ज्ञानेन्द्रिया और पाच कर्मोन्द्रिया उत्पन्न हुई है। यह मत्र तथा आठ अक्षरो से युक्त ॐ नमो नारायणाय मन्त्र साक्षात् ब्रह्म ही है ।[2]

<u>त्रैलोक्यमोहिनी लक्ष्म्यादिपूजा</u>--

वक्ष सवह्निर्वामाक्षौदण्डीश्री सर्वसिद्धिदा।

महाश्रिये महासिद्धे महाविद्युत्प्रभेनम ।।

वक्ष वह्निन वामाक्ष और दण्डी शब्दों से श्री बीज का उद्धार होता है। भगवती लक्ष्मी का यह बीज मत्र समस्त सिद्धियो को प्रदान करने वाला है। श्री भवन अथवा विष्णु भवन मे धनप्राप्ति के लिए श्री की पूजा करनी चाहिये ।[3]

<u>बागीश्वरी पूजा</u>--

वागीश्वरीपूजन च प्रवदामि समण्डलम्।

ईश्वरकाल सयुक्त मनु वर्णसमायुतम्।।

अग्निपुराण 319वे अध्याय मे वागीश्वरी पूजन के वर्णन के साथ कालयुक्त ईश्वर तथा वर्णयुक्त मन्त्र का भी वर्णन किया गया है। चन्द्र और सूर्य के समान मत्र से ईश्वर का ध्यान करना चाहिये किन्तु उस मत्र के किसी भी अक्षर को छोडना नही चाहिये। कुन्दपुष्प धारण करने वाली और चन्द्रमा के समान कान्ति वाली वागीश्वरी देवी वर्णमाला के पचास अक्षरो से समन्वित है मोतियो की माला की लडी से विभूषित है वर तथा अभय प्रदान करने वाली है इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये ।[4]

<u>गौर्यादिपूजा</u>--

सौभाग्यादेरुमा पूजा वक्ष्येऽह भुक्तिमुक्तिदान।

मत्र ध्यान मण्डल च मुद्रा होमादिसाधनम्।।

1--अग्निपुराण 304/1
2--अग्निपुराण 304/2--4
3--अग्निपुराण 308/1--4
4--अग्निपुराण 319/1--3

मत्र ध्यान मण्डल मुद्रा और होम आदि साधनो से युक्त भगवती उमा की पूजा सौभाग्य तथा भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। इसके अतिरिक्त अनेक अध्यायो मे विभिन्न देवी देवताओ की प्रतिष्ठा विधि तथा उनके सबधित मत्रो का विस्तृत वर्णन किया गया है। अग्निपुराण के 202वे अध्याय मे देवताओ की पूजा के लिए उनके अनुकूल पुष्पो के बारे मे बताया गया है जो भिन्न प्रकार के फलो को प्रदान करने वाले है। इसमे मालती पुष्प को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए तमाल को भुक्ति–मुक्ति प्रदाता कहा गया है। पावन्ती क्रुब्जक तगर तथा कनेर आदि से वैकुण्ठ मिलता है। इसी सदर्भ मे आठ भाव पुष्पो का भी उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है–

अहिसा इन्द्रिय जय क्षन्ति र्ज्ञान दया श्रुतम्।
भावाष्टपुष्पै सम्पूज्य देवान्स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक।।[1]

अहिसा इन्द्रियनिग्रह क्षमा ज्ञान दया वेदाध्ययन तथा भाव इन आठो पुष्पो से देवताओ की पूजा करके मनुष्य भोग और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अहिसा प्रथम पुष्प पुष्पमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वपुष्प दयाभूते पुष्प शान्तिर्विशिष्यते।।
शम पुष्प तप पुष्प ध्यान पुष्प च सप्तमम्।
सत्य चैवाष्टम पुष्पमेतैस्तुष्यति केशव ।।[2]

प्रथम पुष्प अहिसा द्वितीय पुष्प इन्द्रिय निग्रह तृतीय पुष्प समस्त प्राणियो पर दया चतुर्थ पुष्प शन्ति पाचवा शम छठा तप सातवा पुष्प ध्यान और आठवा पुष्प सत्य है। इन्ही आठ पुष्पो से पूजा करने से भगवान सन्तुष्ट एव प्रसन्न होते है।

10–गायत्रीमाहात्म्य वर्णन–

अग्निपुराण के कई अध्यायो मे गायत्री माहात्म्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। जिसमें सर्वप्रथम गायत्री मत्र मे प्रयुक्त ऊँकार तथा तीनो महाव्याहृतियो का उल्लेख किया गया है–

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु प्रणव प्रथम स्मृत ।
तेन सपरिपूर्ण यन्त्र पूर्ण कर्म नेतरेत।।
ओकारपूर्विकारस्त्रिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्यया ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेय ब्राह्मणोमुखम्।।[3]

1–अग्निपुराण 202/16
2–अग्निपुराण 202/17
3–अग्निपुराण 215/2–3

समस्त मत्रो के प्रयोग मे प्रणव (ओ) पहले आता है जो कर्म ओकार से युक्त रहता है वही पूर्ण होता है दूसरा नहीं। ओकार पूर्वक तीनो महाव्याहृतिया (भू र्भूव स्व) अव्यय है। त्रिपदा (गायत्री) सावित्री ब्रह्मा का मुख है। जो मनुष्य तीन वर्षो तक आलस्य रहित होकर प्रतिदिन गायत्री का जप करता है वह वायु तथा आकाश होकर परम ब्रह्म मे लीन हो जाता है। सावित्री से बढकर कोई मत्र नहीं है।[1]

गायन्शिष्यान्यतस्त्रायेत्काय (य) प्राणास्तथैव च।।

तत स्मृतेय गायत्री सावित्राय ततोयत।

प्रकाशनात्मा सवितुर्वाग्रूवत्वात्सरस्वती।।[2]

गायत्री का जाप करते हुए मनुष्य अपने शरीर की तथा अपने प्राणो की रक्षा करता है इसलिए उसे गायत्री कहा गया है। यह सविता का प्रकाश रूप होने से सरस्वती भी कही जाती है।

साधक मन मे यह चिन्तन करता रहे कि जो तत् सत् चित् विष्णु का परमपद तथा सविता देव का तुरीय श्रेष्ठ तेज है वही मैं हू और उसी ब्रहमा का मैं ध्यान करता हू। आदित्य मण्डल मे जो ज्ञान तथा शुभकर्मों का सदा प्रवर्तक है वही अनन्त ओकार मै हू--

योऽसावादित्ये पुरूष सोऽसावहमनन्त ओम।

ज्ञानानि शुभकर्मादीन्प्रवर्तयति य सदा।।[3]

11--दर्शन

दर्शन शब्द सस्कृत की दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय लगने से बनता है। ल्युट् प्रत्यय भाव' तथा करण दोनो ही अर्थो मे लगता है अत दर्शन शब्द का साक्षात्कार या ज्ञान एव उसका साधन दोनो ही अर्थों मे प्रयोग होता है। समग्र जीवन या सारी सृष्टि के स्वरूप या तत्व पर विचार और फलत उसका ज्ञान या साक्षात्कार ही दर्शन है। अध्यात्मप्रधान इस देश मे दर्शन के बिना जीवन अधूरा प्रतीत होता है क्योकि यह यथा पिण्डे तथा ब्रहमाण्डे की भाव भूमि पर मानव जीवन की विराट सत्ता के साथ सामन्जस्य स्थापित करता है।[4] वैदिक साहित्य मे दर्शन शब्द का प्रयोग आत्मदर्शन के लिए किया गया है।[5]

यथा सत्य धर्माय दृश्टये आत्मा वाऽरे दृष्टव्य।

यहा आत्मसाक्षात्कार के साधन स्वरूप दर्शन का सकेत है जिसमे श्रवण मनन और निदिध्यासन

1--अग्निपुराण 215/2--3
2--अग्निपुराण 216/1--2
3--अग्निपुराण 216/17 18
4-- 'वेदान्तसार' भूमिका--सदानन्द योगीन्द्र--पृष्ठ--1
5--वृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/5

द्वारा आत्म दर्शन का विधान है। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र मे आन्वीक्षिकी शब्द का प्रयाग चतुर्विध विद्याओ के रूप मे किया गया है जिसमे आन्वीक्षिकी के अन्तर्गत साख्य योग और लोकायत को परिगणित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य के समय तक दर्शन के पर्याय के रूप मे आन्वीक्षिकी शब्द प्रचलित हो चुका रहा होगा। मनुस्मृति मे दर्शन अथवा आन्वीक्षिकी को आत्मविद्या कहा गया है।[1] कामन्दकीयनीतिसार मे इसे आत्मविज्ञान कहा गया है।[2] वात्स्यायन के महाभाष्य मे दर्शन का प्रयोग अध्यात्मविद्या के लिए किया गया है।[3]

भारतीय सास्कृतिक परम्परा मे जीवन की प्रयोगशाला मे अनुभव किये गये सत्य को दर्शन कहा गया है चाहे वह साध्य विषयक हो और चाहे साधन विषयक। विभिन्न युगो विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न मनीषियो द्वारा किये गये सत्य के अनुसधान और अनुभव यद्यपि सर्वथा अनुरूप या एक से नहीं है अथवा वैयक्तिक एव अन्य प्रकार की विशेषताओ के कारण एक से हो भी नही सकते थे तथापि वे सब सत्य की ही खोज के विभिन्न प्रयत्न और अनुभव है। इसीलिए उनकी दर्शन सज्ञा तथा उनके द्रष्टाओ की ऋषि सज्ञा सर्वथा सार्थक है। दर्शन को इस व्यापक दृष्टि से देखने पर हमारा समस्त आर्ष साहित्य–वैदिक सहिताये ब्राहमण आरण्यक तथा उपनिषद् ही दर्शन है। क्योकि समस्त वैदिक वाङमय प्राचीन तपस्वी मनीषियो एव चिन्तको द्वारा दृष्ट अथवा साक्षत्कृत तत्वो या धर्मों की अभिव्यक्ति मात्र ही उनका दर्शन है।[4]

दर्शन शब्द की व्याख्या का आधार प्राणियो का जीवन है। सभी प्राणियो को दुख है यह चिन्तन सत्य है। इसी के साथ यह भी सत्य है कि दुख किसी को प्रिय नहीं है। सभी प्राणी दुख से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील है और सुख पाना चाहते है। लोक मे ऐसे साधन प्राप्त हैं जिनसे दुख की निवृत्ति हो जाती है। कुछ साधन ऐसे भी हैं जिनसे सुख की प्राप्ति भी होती है। किन्तु न तो दुख की निवृत्ति ही स्थायी है और न सुख की प्राप्ति ही।

हर प्राणी को भूख लगती है और वह अपना इष्ट पदार्थ खाकर भूख की शान्ति कर लेता है किन्तु कुछ समय व्यतीत होने पर उसे पुन भूख पीडित करने लगती है। इसी प्रकार उसका सुख भी स्थायी नही है। कोई व्यक्ति मिष्ठान्न खाकर सुख का अनुभव करता है किन्तु उसके खाने की एक सीमा है। वह एक मात्रा तक ही उसका भोग लगा सकता है और कुछ समय तक ही खाना इष्ट है। इसके पश्चात वह इसकी ओर आख उठाकर देखना भी पसन्द नहीं करेगा। मार्ग चलने से थका हारा मनुष्य बिस्तर पर लेट कर सुख

1–मनुस्मृति 7/43
2–कामन्दकीयनीतिसार 7/7
3–वात्स्यायन भाष्य 1/1/1
4–अन्नमट्ट कृत तर्कसग्रह–डा0 आद्या प्रसाद मिश्र–भूमिका पृष्ठ 3–4

का अनुभव करता है किन्तु कुछ समय बाद वह करवट बदलने के लिए बाध्य हो जाता है। अब तक वह ऐसा आसन नही ढूढ सका है जो उस स्थायी रूप से सुख दे सके।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लौकिक सुख साधनो से न तो पूरी तरह दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति हो सकती है और न सदा के लिए ही उसे पाया जा सकता है। प्राणिमात्र को आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक दुख प्राप्त है और वह उससे मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील है किन्तु लौकिक उपायो से उसकी कामनाए सिद्ध नही हो सकती। इसीलिए कहा गया है--

दुखत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।

दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्तोऽभावात्।।[1]

भारत के विविध दर्शन इस दुख से पूर्णरूपेण और सदा की निवृत्ति के लिए प्रयास है। दार्शनिक ने जिस रूप से दुख से मुक्ति का उपाय देखा था उसने उसी का प्रतिपादन किया था। चार्वाक दर्शन से लेकर वेदान्त एव शैव दर्शन तक इसी प्रयास के विविध प्रतिपादन है। सभी की अपनी दृष्टि थी और सबने उसी के अनुसार अपने मत का प्रतिपादन किया है। इन सभी दर्शनो को मानने वालो का कभी भी अभाव नहीं रहा हे। ये सभी दर्शन पोषित और पल्लवित होते रहे हैं। आज भी यह स्थिति इसी रूप मे विद्यमान है।

यद्यपि वेदो का उद्देश्य दार्शनिक विचारो का प्रतिपादन करना नहीं था तथापि दर्शन के उद्भव की प्रक्रिया के सकेत हमे वैदिक साहित्य मे प्राप्त होते हैं। वेद ज्ञानमय है और दर्शन उस ज्ञान को साक्षात् करवाते हैं। अत उन्हे भारतीय दर्शन का मूल कहा गया है। वेदों का सहिता--साहित्य विभिन्न देवताओ--देवतातत्त्वो का दर्शन है। उनकी अभिव्यक्ति तथा स्तुति रूप अराधना है। ब्राहमण साहित्य उन्हीं देवताओ की आराधना का एक विशिष्ट प्रकार या यज्ञ अर्थात वैदिक कर्म विशेष का दर्शन है। आरण्यक साहित्य आराधना के दूसरे प्रकार की उपासना (वैदिक भक्ति) का दर्शन है। उपनिषद् साहित्य मुख्यत विभिन्न देवो मे अनुस्यूत एक ही मूल तत्त्व परमपुरूष पुरूषोत्तम या परमब्रह्म एव उसकी आराधना के तीसरे विशिष्ट प्रकार (ज्ञान) का दर्शन है। परवर्ती काल मे जब दर्शन शब्द से सर्वप्रमुख प्रमेय आत्मा या ब्रह्म का ही ग्रहण किया जाने लगा होगा तब धीरे--धीरे अध्यात्मज्ञान प्रधान उपनिषद् तथा उनके आधार पर रचित न्याय साख्य योग मीमासा इत्यादि शास्त्रो के लिए विशेष रूप से दर्शन का प्रयोग होने लगा होगा ऐसी सभावना है।[2]

अत युक्तिपूर्वक तत्व ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को दर्शन कहते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार हमे तत्त्व का साक्षात्कार हो सकता है इसी को सम्यक दर्शन या दर्शन कहते हैं। इस विषय मे मनु का कथन है--

1--साख्य तत्व कौमुदी प्रभा (1) आद्या प्रसाद मिश्र--(1)

2--साख्य दर्शन की ऐतिहासिक परम्परा--आ० प्र०मि०--पृ०--2

सम्यक दर्शन सम्पन्न कर्मभिर्न निबद्धयते।

दर्शनेन विहीनस्तु ससार प्रतिपाद्यते।।[1]

अर्थात सम्यक दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बधन मे नही डाल सकते जिनको यह सम्यक दृष्टि नही है वे ही ससार के जाल मे फस जाते है।

12–भारतीय दर्शन के भेद–

भारतीय दर्शन के आस्तिक और नास्तिक के दो भेद कहे गये है। वेदो की प्रामाणिकता को स्वीकार करने वाले आस्तिक तथा उनकी उपेक्षा करने वाले नास्तिक दर्शन कहे गये हैं।[2] साख्य योग न्याय वैशेषिक पूर्व मीमासा तथा उत्तर मीमासा (वेदान्त) ये छ आस्तिक दर्शन कहे गये हैं।[3]

कुछ विद्वान तीन अवैदिक–चार्वाक बौद्ध तथा जैन दर्शन साख्य वैशेषिक वेदान्त या शारीरिक मीमासा–तीन वैदिक दर्शनो को मिलाकर शडदर्शन मानते हैं। ये वैशेषिक मे न्याय का साख्य मे योग का अन्तर्भाव मानकर पूर्व तथा उत्तर मीमासा को एक शास्त्रत्व स्वीकार करते हैं। सम्प्रति अधिकतर विद्वान छ आस्तिक दर्शनो को ही षडदर्शन मानते है।[4]

(1)–चार्वाक दर्शन–

वेदप्रमाण्य को उपेक्षित करने वाले नास्तिक दर्शन मे सर्वप्रथम चार्वाक (लोकायत) नामक भौतिकतावादी और जडवादी दर्शन है। जिसके आचार्य बृहस्पति और चार्वाक कहे जाते हैं। ये प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते है और यावज्जीवेत् सुख जीवेत् इनका लक्ष्य है। यहा चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है–चैतन्य विशिष्ट कायपुरूष और उसका नाश ही मोक्ष है। ये चतुर्भूतो (पृथ्वी जल तेज वायु) से सृष्टि का निर्माण स्वीकार करते है। आकाश तत्व को नही मानते।[5]

(2)–बौद्ध दर्शन–

महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध दर्शन मे चार आर्य सत्य को ही भूल माना गया है–

1–सर्व दु खम् (ससार दुखमय है)

2–दु खमुदद (दु ख का निदान है)

3–दु ख निरोध (दु ख का नाश)

1–मनु सहिता 6/74

2–नास्तिको वेदनिन्दक–मनुस्मृति

3–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शन की शाखायें–पृ० 3–(श्री सतीश चन्द्र चटर्टोपाध्याय श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त)

4–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शन की शाखाये–पृ० 3–(श्री सतीश चन्द्र चटर्टोपाध्याय श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त)

5–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शनों का सिहावलोकन–चार्वाक दर्शन पृ० 20

4–दुख निरोधगामिनी प्रतिपत (दुख से पूर्णत छुटकारा दिलाने वाला मार्ग–निर्वाण है)।

यही मोक्ष है जहा तृष्णा और वाञ्छा से हटकर पुनर्जन्म के दुख से मुक्ति मिल जाती है। इस दर्शन के चार सम्प्रदाय है–वैभाषिक सौत्रान्तिक विज्ञानवादी (योगाचार) तथा शून्यवादी (माध्यमिक)। प्राचीन दार्शनिको मे नागार्जुन स्मरणीय है।[1]

(3)–जैनदर्शन–

इसके दो प्रमुख सम्प्रदाय है–श्वेताम्बर और दिगम्बर यह स्वय को जडवादी या नास्तिक नहीं मानता क्योकि वहा भगवान् अर्हन्त को ईश्वर मानकर पूजा करते हैं पर उसे कर्ता धर्ता सहर्ता नहीं मानते। इसकी महती परम्परा है। यहा तपस्त्याग के समुज्जवल उदाहरण मिलते हैं। इनका अनेकान्तवाद या स्याद्वाद एक मौलिक सिद्धान्त है जो वस्तु के विविध रूपो को विविध दृष्टियो से सत्य मानता है। इसमे छ द्रव्यो की विवेचना की गयी है। ये द्रव्य है– धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय कालास्तिकाय और जीवास्तिकाय। यहा कर्मों के बधन से मुक्त होकर और सम्यक दृष्टि का अर्जन कर जीव मोक्ष को प्राप्त करता है और आवागमन से मुक्त हो जाता है। यही निर्वाण है।[2]

(4)–न्याय दर्शन–

न्याय शास्त्र को आन्वीक्षिकी भी कहा जाता था। भारतीय तकपद्धति का स्वस्थ स्रोत होने के कारण हम इसे तर्कशास्त्र या तर्कविद्या भी कहते है। इसके प्रवर्तक गौतम का एक नाम अक्षपाद भी था। इसमे 16 पदार्थ माने जाते है। प्रमाण प्रमेय सशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त अवयव तर्क निर्णय वाद जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति और निग्रहस्थान। इनके तत्वज्ञान से निश्रेयस की प्राप्ति होती है।

न्याय मे प्रमाणो से ही अर्थ की परीक्षा की जाती है–प्रमाणैरर्थपरीक्षणन्याय। इन प्रमाणो मे अनुमान को तत्त्वज्ञान का प्रमुख कारण कहा गया है जो तीन प्रकार का होता है–1– पूर्ववत् (मेघो को देखकर वृष्टि का अनुमान) (2) शेषवत् (नदी के पाट को देखकर वर्षा का अनुमान) (3) सामान्यतो दृष्ट (ऐन्द्रिक ज्ञान से इन्द्रियो के अस्तित्व का अनुमान) इस अनुमान के पाच अग हैं–

प्रतिज्ञा–पर्वतो बहिनमान्

हेतु–धूमवत्वात्

दृष्टान्त–यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र बह्निन यथा महानस।

1–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शनो का सिहावलोकन बौद्ध दर्शन–पृ० 24

2–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शनो का सिहावलोकन जैन दर्शन पृ० 21

उपनय—तथा चाय पर्वत

निगमन—तस्मादय पर्वतो बह्निमान्।

न्यायशास्त्र मे तीन सनातन सत्य है—जीव जगत् और ईश्वर और तीन ही कारण है—समवायि असमवायि और नैमित्तिक। अन्य दर्शनो मे समवायि कारण को ही उपादान कारण भी कहा गया है। अन्तिम लक्ष्य अपवर्ग या मोक्ष है जहा सुखात्मक और दु खात्मक वृत्तिया नष्ट हो जाती है और मन साम्यावस्था को प्राप्त हो जाता है।[1]

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन को कणाद दर्शन कहते हैं क्योकि इसके प्रवर्तक कणाद महर्षि हैं। इसे औलूक्य दर्शन भी कहते है। क्योकि इनकी भक्ति भावना से प्रसन्न शिव ने उलूक के रूप मे द्रव्यो का उपदेश दिया था। साख्य की अपेक्षा विशिष्ट होने के कारण इसे वैशेषिक कहते हैं—इस विचार की अपेक्षा यह तथ्य अधिक स्वीकार्य है कि प्रमा नामक पदार्थ को मानने के कारण इसे वैशेषिक कहा गया है। सृष्टि के मूल कारण छ द्रव्य हैं— द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय। इनके अवान्तर भेद भी किये गये हैं जैसे—द्रव्य के पृथ्वी आपस् तेज वायु आकाश काल दिग् मन और आत्मा। इसी प्रकार गुण के 24 कर्म के 5 सामान्य के 2 विशेष के अगणित और समवाय का एक। अभाव भी चार प्रकार के कहे गये हैं— प्रागभाव प्रध्वसाभाव अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव। परमाणुवाद इस दर्शन की विशेष देन है। तदनुसार प्रत्येक द्रव्य के परमाणु या पीलु होते है।[2]

दो परमाणुओ का द्वयणुक तीन द्वयणुको का एक त्रयणुक— इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है। वैशेषिक मे मन को भी अणुरूप मानते हैं। वस्तुवादी और असत्कार्यवादी वैशेषिक दर्शन का लक्ष्य वाह्य जगत की समीक्षा है। अत आत्मा ईश्वर जड जगत बन्ध आदि के विषय मे न्यायसम्मत विचार है।

साख्य दर्शन—

इस द्वैतवादी दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल है। इसमे प्रकृति और पुरूष दो मूल तत्वो को माना गया है। अपने अपने अस्तित्व के लिए पुरूष और प्रकृति परस्पर निरपेक्ष है। महर्षि कपिल का नामोल्लेख उपनिषदो मे भी प्राप्त होते हैं इसके अतिरिक्त इस दर्शन का उल्लेख स्मृतियो और इतिहास पुराण ग्रन्थो मे भी प्राप्त होता है। यहा साख्य को विशाल प्राचीन अगाध निर्मल उदार भावयुक्त और सुन्दर महासागर

1— भारतीय दर्शन—न्याय दर्शन—पृष्ट—27—29 (एस० सी० चट्टोपाध्याय एव डी० एम० दत्त)

2— भारतीय दर्शन—वैशेषिक दर्शन—पृष्ठ स0—29—31 (एस० सी० चटटोपाध्याय एव डी० एम० दत्त)

कहा गया है। इसके ज्ञान से प्राज्ञ परमगति को प्राप्त करते है। इसके समान दूसरा कोई ज्ञान नही–

साख्य विशाल परम पुराण।

महार्णव विमलमुदारकान्तम्।।[1]

साख्या राजन् महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमागतिम।

ज्ञानेनानेन कौन्तय तुल्य ज्ञान न विद्यते।।[2]

अत पौराणिक साख्य के विषय मे पृथक विचार किया गया है। जहा ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया प्रतीत होता है जबकि साख्य निरीश्वरवादी है पर नास्तिक नही क्योकि यह वेदो की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है। वस्तुत प्रकृति (जड व एक) और पुरूष (चेतन व अनेक) से सारी सृष्टि की उत्पत्ति सभव हो जाने से इन्हे ईश्वर तत्व को मानने की आवश्यकता ही नही हुई। इसमे सख्यात्मक निरूपण विशेष है जैसे मूल तत्व 25 अविद्या 5 अशक्ति 28 तुष्टि 9 सिद्धि 8 आदि। सम्भवत इसीलिए इसे साख्य कहते है। साख्य के आधारभूत 25 तत्त्व महत् अहकार मन पचतन्मात्रा (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध) पच कर्मेन्द्रिया (वाक याणि पाद पायु उपस्थ) पच ज्ञानेन्द्रिया (चक्षु घ्राण रसना त्वचा श्रोत्र पच महाभूत पृथ्वी जल तेज वायु आकाश) मूल प्रकृति और पुरूष है।[3]

योगदर्शन–

महर्षि पतजलि को योग दर्शन का प्रणेता कहा गया है। योग तथा साख्य मे बहुत अधिक साम्य है। याग मे साख्य के 25 तत्व स्वीकार करके भी 26वा तत्व ईश्वर को जोडा गया है। अत इसे सेश्वर साख्य भी कहते हैं। योगदर्शन का प्रमुख विषय योगाभ्यास है। चित्रवृत्ति के निरोध को योग कहते है। योग दो प्रकार का होता है–सप्रज्ञात तथा असप्रज्ञात। योग दर्शन के प्रथम समाधिपाद मे समाधि का द्वितीय पाद मे क्रियायोग का तथा अष्टागयोग मे यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार का तृतीय विभूतिपाद मे धारणा ध्यान समाधि का और चतुर्थ मे जन्म औषधि मत्र तप मोक्ष तथा अणिमामहिमादि अष्ट सिद्धियो का चित्रण है। अष्टाग योगाभ्यास से त्रिविध दुख की निवृत्ति और फिर चित्त की एकाग्रता से समाधि अवस्था मे कैवल्य की प्राप्ति होती है।[4]

मीमासा–

मीमासा दर्शन के प्रवर्तक आचार्य जैमिनि है। मीमासा को पूर्व मीमासा भी कहते हैं। इसमे वैदिक

1–महाभारत शान्ति पर्व 301/114

2–महाभारत शान्तिपर्व 301/100

3–भारतीय दर्शन–साख्य दर्शन–पृष्ठ स–31–34

4–भारतीय दर्शन भारतीय दर्शनों का सिहावलोकन योगदर्शन पृ० 34

विचारो की मीमासा या विवेचना हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्ड को युक्तिपूर्वक प्रतिपादन करना है। कर्मकाण्ड का आधार वेद है। मीमासको ने वेदो को अपौरूषेय मानकर उनका नित्यत्व और अदुष्टत्व प्रमाणित किया है। वेद सर्वोपरि सत्य है अत वही प्रमाण है। ऋषि मत्र–लेखक नहीं द्रष्टा है–ऋषयो मन्त्रद्रष्टार। वैदिक दर्शन होते हुए भी मीमासको को ईश्वर की सत्ता मे विश्वास नही क्योकि इसमे सृष्टि को अनादि एक और प्रवर्त्तमान क्रम के रूप मे नित्य माना गया है उसके कर्ता के रूप मे ईश्वर की आवश्यकता ही नही समझी गयी। इनके अनुसार सृष्टि और प्रलय दोनो ही कालिक घटनाये नहीं हैं। आत्मा के सबध मे अन्य दर्शनो से मतभेद नहीं है। जगत स्वर्ग नरक पाप पुण्य देवतात्व मन्त्र यागादि का विधान और उससे फलाकाक्षा आदि सब मीमासको को मान्य है। विधि मन्त्र नामधेय निषेध और अर्थवाद इन पाच प्रकार के वेद वचनो को स्वीकार किया गया हे। इसमे शब्दो और वाक्यो का परस्पर सबध स्पष्ट करके श्रौत कर्मों के शास्त्र शुद्ध अर्थ के प्रतिपादन मे अपना योग दिया गया है। मीमासा दर्शन मे शब्द स्वरूप वेद को स्वत प्रामाण्य माना गया है। अर्थात् शब्द प्रमाण या वेद ही प्रमाण है क्योकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता। फिर भी प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति और अनुपलब्धि इन छ प्रमाणो को स्वीकार किया गया है। यहा शब्द अर्थ और शब्दार्थों के सम्बन्ध को नित्य माना है परन्तु शब्द यहा एक ध्वनि हीन तत्त्व है। ध्वनि के रूप मे मात्र उसकी वाह्य अभिव्यक्ति होती है। इसे स्फोट कहते है। अत यह भाषा शास्त्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।[1]

<u>वेदान्त दर्शन या उत्तर मीमासा</u>–

वेदान्त दर्शन की उत्पत्ति उपनिषदो से हुई है। उपनिषदो मे वैदिक विचार धारा विकास के शिखर पर पहुच गयी है। अत उपनिषदो को वेदान्त अर्थात वेदो का अन्त कहना यथार्थ ही है। वैदिकीय ज्ञानकाण्ड का पल्लवन अथवा जीव–ब्रहम की एकता का प्रतिपादन इस दर्शन मे हुआ है। वेदान्त दर्शन के प्रवर्त्तक भगवान् वादनारायण व्यास है। जो परम्परया वेदव्यास से अभिन्न है। ब्रह्मसूत्र (वादरायण सूत्र या वेदान्त सूत्र) इसका आकर ग्रन्थ माना जाता है जिसके शारीरिक सूत्रो के आधार पर इसे शरीरमीमासा या ब्रह्म मीमासा अथवा वैयासिकी मीमासा भी कहते है। इन सूत्रो के आधार पर भाष्यो की रचना हुई जिसमे शकर तथा रामानुज के भाष्य अधिक विख्यात है। अन्य दर्शनो की अपेक्षा वेदान्त दर्शन से विशेषत शाकर वेदान्त से भारतीयो का जीवन अधिक प्रभावित है। आचार्य शकर का नाम अद्वैत वाद और मायावाद का

1–भारतीय दर्शन–भारतीय दर्शनो का सिहावलोकन – मीमासादर्शन पृ० 35

पर्याय बन गया। इसी अस्त्र से उन्होने जैन बौद्धादि नास्तिक दर्शनो को और पूर्व मीमासको के वैदिक कर्मकाण्ड के वितण्डावाद को परास्त कर ज्ञानकाण्डानुशिष्ट वैदिक सनातन धर्म का पुष्ट प्रचार किया।

आचार्य शकर का अद्वैत वेदान्तभवन वेदोपनिषद् की सुदृढ भित्तियो पर आधारित है। वह परात्पर ब्रह्म को ही सत्य और सृष्टि का आदि कारण मानते है। अन्य सबकुछ मिथ्या है—ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर । इसे ही अविद्या अज्ञान भ्रान्ति विवर्त आदि शब्दो से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया हैं। इसमे सत्कार्य बाद के साथ साथ प्रत्यक्ष अनुमान उपमान अर्थापत्ति आप्तवाक्य और अभाव ये छ प्रमाण स्वीकृत है। अहब्रह्मास्मि तत्वमसि आदि महावाक्यो का सम्यक ज्ञान आत्यान्तिक दु खनिवृत्ति करके आत्यन्तिक सुख प्रदान करता है।

रामानुजीय दर्शन को विशुद्ध अद्वैत नही अपितु विशिष्टाद्वैत दर्शन कहते हैं। यह ईश्वर को ही एकमात्र सर्वव्यापी स्वतत्र सत्ता मानता है किन्तु ईश्वर अन्य सत्ताओ अर्थात चिन्मय आत्माओ से तथा अचित् पदार्थो से विशिष्ट या समन्वित है। इनके अनुसार ससार की सृष्टि सत्य है। आत्मा अणु तथा ईश्वर विभु है। आत्मा का शरीर से पूरा पूरा सबध विच्छेद मोक्ष कहलाता है।[1]

पुराणो मे सर्व दर्शन सग्रह के समस्त दर्शनो के मूलभूत सिद्धान्तो का समावेश हो गया है। इसमें सबसे प्राचीनतम दर्शन साख्य दर्शन को माना जाता है। जिसका सागोपाग वर्णन ब्रहमपुराण के 235वे अध्याय से 244 तक के अध्यायो मे हुआ है। अग्निपुराण के विभिन्न अध्यायो मे अष्टागयोग ब्रह्मज्ञान अद्वैत ब्रह्मविज्ञान का वर्णन किया गया है इसके अतिरिक्त इसमे प्रतिपादित गीता सार यमगीता विशेष उल्लेखनीय है।

13—अग्निपुराणोक्त अष्टाङ्ग योग—

अग्निपुराण मे अष्टाङ्ग योग का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ससारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्ग योगकम्।
ब्रहमप्रकाशक ज्ञान योगस्तत्रैकचित्तता।।[2]

सासारिक तापो से मुक्ति प्रदान करने के लिए एव ब्रह्म को प्रकाशित करने वाले ज्ञान अष्टाङ्ग योग का कथन किया गया है जिसमे चित्त की एकाग्रता को योग कहते हैं। चित्तवृत्ति का निरोध ही योग कहा गया है जो जीवात्मा तथा परमात्मा से परे रहा करता है। यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा तथा समाधि ये ही योग के आठ अग कहे गये हैं। जिसमे से पाच यम और पाच नियम का उल्लेख

1—भारतीय दर्शन—भारतीय दर्शनों का सिहावलोकन — वेदान्त दर्शन पृ०—38—42
2—अग्निपुराण 372/1

किया गया है। पाच यम इस प्रकार है[1]–

1–अहिसा

2–सत्य

3–अस्तेय

4–ब्रहमचर्य

5–अपरिग्रह

अहिसा–

अहिसा के दस प्रकार होते है। किसी को उद्विग्न न करना सतप्त न करना रोगी न बनाना रक्त न निकालना चुगली न करना हित का विरोध न करना मर्म भेदन न करना सुख को न छिपाना अवरोध न उत्पन्न करना और वध न करना। प्राणियो का कष्ट न देना ही अहिसा है। यही उत्तम धर्म है। अहिसा के विषय मे अग्निपुराण मे कहा गया है कि–

यथा गजपदेऽन्यानिपदानि पथगामिनाम्।

एव सर्वमहिसाया धर्मार्थमभिधीयते।।[2]

अर्थात् जिस प्रकार पथिको के समस्त पद हाथी के पद मे समाहित हो जाते हैं उसी प्रकार अहिसा मे समस्त धर्मों का अन्तर्भाव हो जाता है।

सत्य–

प्राणियो का हित करने वाला वचन सत्य वचन कहा गया है। सत्य के लिए कहा गया है कि–

सत्य ब्रूयात्प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रिय्र च नानृत ब्रूयादेष धर्म सनातन ।।[3]

अर्थात सत्य बोलना चाहिये प्रिय बोलना चाहिये अप्रिय सत्य नही बोलना चाहिये। प्रिय असत्य नही बोलना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

अस्तेय–

किसी की कोई वस्तु न चुराना अस्तेय कहलाता है।

1–अग्निपुराण 372/2–3

2–अग्निपुराण 372/4

3–अग्निपुराण 372/8

ब्रह्मचर्य–

मैथुनस्य परित्यागो ब्रहमचर्यं तदष्टधा।[1]

अर्थात् मैथुन का परित्याग ब्रहमचर्य कहलाता है। स्मरण कीर्तन क्रीडा दर्शन गुप्तभाषण सकल्प अध्यवसाय और कर्मरूप विद्वानो ने आठ प्रकार के मैथुन बताया है–

स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम्।

सकल्पोध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।।

एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिण।

विपरीत येतदेवास्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्।।

ब्रह्मचर्य ही समस्त कर्मों का मूल है। ब्रहमचर्य का अभाव समस्त कर्मों को विफल कर देता है।

अपरिग्रह–

लोभवश अनावश्यक वस्तु का ग्रहण करना अपरिग्रह है। यह भी कहा जा सकता है कि बलपूर्वक दूसरे के धन का अपहरण न करना अपरिग्रह है। इसके विषय मे कहा गया है–

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहत्य बलान्नर।।

अवश्य याति तिर्यक्त्व जग्ध्वा चैवाहुत हवि।।[2]

अर्थात् परद्रव्य अपहरण एव देवताओ को दी गयी आहुति का भक्षण करने से मनुष्य निश्चय ही पक्षियोनि को प्राप्त कर लेता है। कभी भी दूसरे के धन का सग्रह नही करना चाहिये चाहे वस्त्र के रूप मे शरीर ढकने के लिए लगोटी शीत से बचने के लिए गुदडी और पैरो के लिये खडाऊ ही क्यो न मिले। वस्त्र इत्यादि का सग्रह केवल शरीर की रक्षा के लिए ही होता है।

पाच नियमो को इस प्रकार कहा गया है जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं–शौच सन्तोष तपस् स्वाध्याय और ईश्वर पूजन।

शौच–

शौच तु द्विविध प्रोक्तवाहयम (भा) भ्यन्तरतथा।।

मृज्जलाभ्या स्मृत वाह्य भावशुद्धिस्तथाऽन्तरम्।

अर्थात् शौच दो प्रकार का होता है– वाहय शौच एव आभ्यन्तर शौच। जल और मिट्टी द्वारा उत्पन्न होने वाली शौच कहते है। दोनो प्रकार के शौचो से युक्त मनुष्य ही पवित्र होता है दूसरा नहीं।

1–अग्निपुराण 372/9

2–अग्निपुराण 372/14

सतोष–

यथा कथञ्चितप्राप्त्या च सतोषस्तुष्टिरूच्यते।[1]

अर्थात् किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के पश्चात उत्पन्न तुष्टि को ही सन्तोष कहते हैं।

तप–

मनसश्चेन्द्रियाणा च ऐकाग्रय तप उच्यते।।[2]

अर्थात् मन और इन्द्रियो की एकाग्रता को तप कहते हैं। तप को ही समस्त धर्मों से जीतना चाहिये क्योकि वह परम धर्म कहा गया है। तप मानसिक वाचिक और शारीरिक भेद से तीन प्रकार का होता है। मन्त्रजाप आदि से होने वाला तप वाचिक विराग से उत्पन्न होने वाला तप मानसिक तथा देवपूजनादि से उत्पन्न होने वाला तप शारीरिक कहलाता है। तीनो प्रकार का तप सर्वस्व प्रदान करने वाला होता है।

स्वाध्याय–

नियमपूर्वक धर्म ग्रन्थो का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। इसके माध्यम से साधक को धर्म अधर्म कर्तव्य एव अकर्तव्य का ज्ञान होता है जिसकी सहायता से वह अपना लक्ष्य निर्धारित करता है।

ईश्वर पूजा (प्राणिधान)–

ईश्वर का ध्यान और उन पर स्वय को छोड देना ही ईश्वर प्राणिधान है। जो व्यक्ति पृथ्वी के ऊपर दण्डवत् गिरकर नमस्कार के द्वारा विष्णु की अर्चना करता है वह जिस गति को प्राप्त करता है उस गति को सौ यज्ञो से भी नही प्राप्त किया जा सकता। जिस महात्मा पुरूष की भक्ति देवता और गुरू मे समान होती है उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।[3]

आसन–

आसन कमलाद्युक्त तद्बद्ध्वा चिन्तयेत्परम्।
शुचो देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनभात्मन।।[4]

कमल इत्यादि आसन कहे गये हैं। पवित्र स्थान मे जाकर आसन को लगाकर परमात्मा का चिन्तन करना चाहिये। मन को एकाग्र करके चित्त इन्द्रिय और कर्मों को अपने वश मे करके कुशादि आसन के ऊपर बैठकर आत्मशुद्धि के लिए योग मे सलग्न होना चाहिये।

1–अग्निपुराण 372/19(1)
2–अग्निपुराण 372/19(2)
3–अग्निपुराण 372/35–36
4–अग्निपुराण 373/1

प्राणायाम–

प्राण स्वदेहजो वायुस्तस्याऽऽयामो निरोधनम्।।[1]

शरीर मे रहने वाली वायु प्राणवायु कही जाती है और उसको रोकना आयाम कहलाता है। प्राण–वायु को रेचक पूरक तथा कुम्भक क्रिया द्वारा रोकना ही प्राणायाम कहलाता है। एक उगली से नासिका पुट दबाकर दूसरे नासिका पुट से पेट की वायु बाहर निकालना रेचक कहलाता है। तत्पश्चात् बाहरी वायु को शरीर मे मशक के समान भरना पूरक वायु को न बाहर छोडना न अन्दर ग्रहण करना अपितु पूर्ण घट की भाति निश्चल बना रहना कुम्भक क्रिया कहलाती है।

शरीर को रथ कहा गया है इन्द्रिया उसके घोडे है मन सारथि और प्राणायाम चाबुक कहा गया है। ज्ञान और वैराग्य के द्वारा माया इस मन को पकड कर रखती है। वह केवल प्राणायाम के द्वारा ही धीरे–धीरे निश्चलता को प्राप्त करता है। सौ वर्षो तक प्रतिमास कुशाग्र से जल बिन्दु पान करना और प्राणायाम करना एक समान है।

प्रत्याहार–

इन्द्रियाणिप्रसक्तानि प्रविश्य विषयोदधौ।

आहृत्य यो निगृहणाति प्रत्याहार स उच्यते।।[2]

विषय सागर मे प्रविष्ट आसक्त इन्द्रियो को पकडकर निगृहीत करना प्रत्याहार कहलाता है। जिस प्रकार जल मे डूबता हुआ व्यक्ति किसी वस्तु का सहारा लेकर अपने आपको बाहर निकाल लेता है उसी प्रकार भोगनदी मे निमज्जित होने वाले को ज्ञानवृक्ष का आश्रय लेना चाहिये। ये इन्द्रिया ही स्वर्ग नरक दोनो हैं। इन्द्रिया निग्रह स्वर्ग तथा इन्द्रियो को स्वतत्र छोड देना नरक के लिए होता है।

ध्यान–

ध्यै चिन्ताया स्मृतो धातुर्विष्णुर्चिन्ता मह्मुर्हु।

अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते।।[3]

चिन्तार्थक ध्यै धातु से बना ध्यान शब्द का अर्थ है बार–बार एकाग्र मन से भगवान विष्णु का चिन्तन करना। मन और आत्मा से सभी उपाधियो को छोडकर ब्रह्मचिन्तन करना ही ध्यान कहलाता है। ध्येय में चित्र को स्थित करके यत्र तत्र उसी की प्रतीति का विश्वास करना ध्यान कहा गया है।

1–अग्निपुराण 373/6

2–अग्निपुराण 373/20

3–अग्निपुराण 374/1

धारणा–

धारणा मनसो ध्येये सस्थितिर्ध्यानवद्द्विधा।

मूर्तामूर्त हरिध्यान मनोधारणतो हरि ।।[1]

अर्थात् ध्येय मे मन की स्थिति का धारणा कहा गया है। ध्यान और धारणा दो प्रकार की कही गयी है। साकार और निराकार रूप मे भगवान विष्णु का ध्यान और धारणा करना वाह्य अवस्थित लक्ष्य से मन का चचल न होना और उन प्रदेशो मे मन की स्थिति ही धारणा है। जिस समय शरीर मे काल और समय से परे मनस्थापित रहता है और वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता उस समय धारणा होती है। धारणा मे द्वादश आयाम तथा ध्यान मे द्वादश धारणाये होती है। इस प्रकार बारह ध्यानो को धारणा कहा गया है। धारणा के अभ्यास से युक्त आत्मा जिस समय प्राणमुक्त हो जाती है उस समय वह स्वर्ग मे जाकर परमपद को प्राप्त करती है।

समाधि–

यदात्ममात्र निर्भास स्तिमितोदधिवत्स्थितम्।

चैतन्यरूपवद्ध्यान तेत्समाधिरिहोच्यते।।[2]

अर्थात् मन की वह स्थिति जब वह आत्मोन्मुख भासरहित प्रशान्त सागर के समान स्थित और चैतन्य स्वरूप होता है तो उसे समाधि कहा जाता है। ध्यान करते हुए मन को वश मे करके अचल और स्थिर रहने वाला वायुहीन और अग्नि के समान रहने वाला योगी समाधिस्थ कहलाता है। स्वय को विष्णुमय ध्यान करते हुए समाधिस्थ योगी के समान दिव्य कर्म सिद्धि के सूचक होते हैं।

यह सम्पूर्ण जगत् आत्मा ही है। आत्मा से ही चराचर जगत् की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार विभिन्न जलाधारो मे एक ही सूर्य भिन्न–भिन्न दिखाई देता है उसी प्रकार अनेक शरीरो मे रहने वाली एक ही आत्मा अनेक रूपो मे दिखाई पडती है। आकाश वायु तेज जल और पृथ्वी आदि ब्रह्म के स्वरूप ही कहे गये हैं। जिस प्रकार कुम्हार मिटटी दण्ड चक्रादि के सयोग से घडे का निर्माण करता है उसी प्रकार आत्मा ही विभिन्न इन्द्रियो के सहयोग से विभिन्न योनियो मे स्वय का सृजन करती है। जीव कर्म दोष मोह और इच्छा से बढता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है। समस्त ज्ञानेन्द्रिया मन कर्मेन्द्रिया अहकार बुद्धि और पृथ्वी इत्यादि से युक्त इस शरीर मे अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञ रूप से रहता है।

ईश्वर ही समस्त प्राणियो की सत्ता और अभाव का कारण है बुद्धि से अव्यक्त तथा उससे अहकार

1–अग्निपुराण 375/1

2–अग्निपुराण 376/1

उत्पन्न होता है। अहकार से आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी से पचमहाभूत होते हैं जिनके शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध क्रमश गुण कहे गये है। सत्व रस और तमस् ये आत्मा के गुण कहे गये हैं इनमे जो गुण जिसके आश्रित होते हैं उसी मे लीन हो जाते हैं। जो अनादि होते हुए भी आदिवान् है वही परम पुरूष है। जिसका ग्रहण लिङ्ग और इन्द्रियो के द्वारा होता है उसे विकार कहा गया है। जिससे वे पुराण समस्त विद्याये उपनिषद श्लोक सूत्र भाष्य और अन्य वाडमय उत्पन्न होता है वही परमात्मा है।

मनुष्य समस्त आरम्भ से रहित मुक्ति मार्गों को तपस्या ब्रहमचर्य अनासक्ति और बुद्धि के द्वारा प्रलय पर्यन्त प्राप्त कर लेता है। स्वाध्याय यज्ञ ब्रह्मचर्य तप दम श्रद्धा उपवास और सत्य ये आत्मज्ञान के हेतु है। समस्त द्विजातियो को सत्यगुण का आश्रय लेकर आत्मतत्व का श्रवण मनन निदिध्याजन तथा दर्शन करना चाहिये। जो इस प्रकार से परमश्रद्धा से जिस परम सत्य की उपासना करते हैं वे उसी से युक्त हो जाते हैं। यज्ञ तप ज्ञान से स्वर्ग को जीतने वाले मनुष्य धूम निशा कृष्णपक्ष दक्षिणायन पितृलोक चन्द्रमा आकाश वायु, जल और पृथ्वी पर होते हुए क्रमश इस लोक मे पुन आ जाते हैं। हृदय मे दीपक की भाति ब्रह्म का ध्यान करने से जीव अमर हो जाता है और वह गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है जो न्याय से प्राप्त होने वाले धन मे रूचि रखने वाला तत्वज्ञाननिष्ठ अतिथिप्रिय श्राद्ध करने वाला और सत्यवादी होता है।[1]

14–अग्नि पुराणोक्त ब्रहमज्ञान–

ब्रह्मज्ञान प्रवक्ष्यामि ससाराज्ञानमुक्तये।

अयमात्मा पर ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ।।[2]

ससार और अज्ञान से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मज्ञान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मैं ही आत्मा हू, मैं ही परमब्रह्म हू, इस प्रकार विचार करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह शरीर आत्मा नहीं हो सकता क्योकि वह घर इत्यादि की भाति दृष्य तथा विकार युक्त है। आत्मा इससे भिन्न निरवयव अदृश्य एव विकार रहित है। इसी प्रकार इन्द्रिय मन बुद्धि अहकार आदि भी आत्मा नहीं हो सकते क्योकि मन बुद्धि तथा इन्द्रिया आत्मज्ञान के स्वरूप है और अहकार जिस शरीर मे रहता है उसके अनुसार आचरण करता है। अत आत्मा इन सबसे भिन्न सभी के हृदय मे स्थित प्रकाशमान सर्वद्रष्टा तथा सर्व भोक्त है। यह स्थूल शरीर तो आत्मा के ज्ञान से निर्मित हुआ है। ज्ञानी इसे इन्द्रियो द्वारा विशेष रूप से जान लेते हैं।

सर्वप्रथम ब्रह्म से आकाश की उत्पत्ति होती है तत्पश्चात् आकाश से वायु वायु से अग्नि अग्नि से

1–अग्निपुराण 316/15–44

2–अग्निपुराण 377/1

जल जल से पृथ्वी और पृथ्वी से सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ है। अलग अलग रहने वाले पचमहाभूतो से ही पचभूतात्मक शरीर निर्मित हुआ है। इन्ही पचमहाभूतो को ही विराट कार्य कहा गया है।

यह आत्मा न तो अस्तित्व से और न अनस्तित्व से उत्पन्न है न सावयव है न निरवयव न भिन्न है न अभिन्न अपितु भिन्नाभिन्ना अनिर्वाच्य तथा सासारिक बधनो को उत्पन्न करने वाली है। इसका ज्ञान केवल ब्रह्मविज्ञान से ही होता है कर्मों से नही। आत्मा से करणात्मक इन्द्रियो का सहार होता है तथा इन्द्रिया और बुद्धि ये दोनो आत्मा से सम्बद्ध है।

अत आत्मारूप मै नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्य आनन्द ब्रहम परमज्योतिविमुक्त ओकार हू। मैं वह हू जो समाधिस्थ बधनो को नष्ट करने वाला चिरकाल तक आनन्द देने वाला सत्य और अनन्त है। मैं परब्रह्म आत्मस्वरूप हू। गुरू के द्वारा इस प्रकार का ज्ञान कराये जाने पर कि तू ब्रह्म है जीव यह समझने लगता है कि मैं ब्रह्म हू। मैं आदित्य स्वरूप और अखण्ड ओकार हू। इस प्रकार के ब्रह्म ज्ञान से युक्त ब्रह्मज्ञानी असार ससार से मुक्त होकर ब्रह्म हो जाता है।[1]

अग्निपुराण के 379वे अध्याय मे जीव की पाच गतिया कही गयी है जिसमे यज्ञ से देवताओ की प्राप्ति तपस्या से विराटपुरूष पद की प्राप्ति कर्मसन्यास से ब्रहम की प्राप्ति वैराग्य से प्रकृति मे लय की प्राप्ति तथा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रीति ताप और विषाद आदि से निवृत्ति को वैराग्य कहते हैं तथा कृत तथा अकृत कर्मों का परित्याग ही सन्न्यास कहलाता है। चेतन और अचेतन ज्ञान के भेद को ज्ञान कहते हैं। इन सबका आधार परमेश्वर परमात्मा ही है। यज्ञ पुरूष को जिसका यजन यज्ञ के द्वारा किया जाता है यज्ञेश्वर कहलाते है। वही इस ससार से विरक्त रहने वालो के द्वारा ज्ञान के कारण ज्ञानमूर्ति कहा गया है। वही पुरूषोत्तम है और वाणी मे रहने वाला ह्रस्व दीर्घ और प्लुत इत्यादि विकार वही है। उसी की प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म हेतु रूप कहे गये है।

शास्त्रोक्त और विवेकजन्य के भेद से ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। जिसमे शस्त्रोक्त ज्ञान शब्द ब्रह्म तथा विवेकजन्य ज्ञान परमब्रह्म है। वेदादि विद्याये शब्द ब्रह्म कही गयी है वही भगवान की वाणी है जो उपचार और कीर्तन से भिन्न है। जो प्राणियो की उत्पत्ति लय अगति गति और अविद्या को जानता है उसे भगवान् कहते हैं। भगवत् शब्द मे प्रयुक्त भकार के दो अर्थ हैं—(1) पोषण करने वाला (2) सबका आधार तथा गकार का अर्थ है—नेता कर्मफल की प्राप्ति कराने वाला तथा गमयिता प्रेरक है। ऐश्वर्य वीर्य

1—अग्निपुराण 377/2—24

यशश्री ज्ञान और वैराग्य इन छ की भग सज्ञा है। इनसे युक्त ही भगवान् है।

अनात्मा से आत्मा अथवा अनात्मा को आत्मा समझने की बुद्धि अविद्या से होती है। अविद्या दो प्रकार की होतीहै–(1) पचभूतात्मक शरीर मे मोहान्धकार से युक्त आत्मा रहा करती है जो अह से युक्त होती है (2)पुत्र–पौत्र तथा उनसे उत्पन्न होने वालो के प्रति भी ऐसी ही बुद्धि रहती है। विद्वान् व्यक्ति अनात्मभूत शरीर मे समभाव रखता हुआ शरीर के उपकारार्थक कर्म किया करता है। जब पुरूष शरीर से भिन्न है तो वह समस्त कर्म बधन के कारण होता है। किन्तु ज्ञानमय निर्मल आत्मा सदा मुक्त रहती है। दु ख और ज्ञानमय धर्म प्रकृति के है। आत्मा के नही। जैसे जल और अग्नि की सगति नही होती किन्तु पतीली इत्यादि के माध्यम से दोनो का एक साथ हो जाता है और खलखलाहट आदि की अव्यक्त ध्वनि होने लगती है। उसी प्रकार यह आत्मा प्रकृति के ससर्ग से अहम और मानादि से युक्त हो जाती है।[1]

प्राकृत धर्मों का सेवन करने वाला अव्यय कहा जाता है। विषाक्त मन बधन के लिए और विषय रहित मन ज्ञान के लिए होता है। इसलिए उन मन को विषय से हटाकर ब्रहमरूप विष्णु का स्मरण करना चाहिये। जिस प्रकार चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को अपनी ओर आकृष्ट करता है उसी प्रकार ब्रह्म अपनी शक्ति से अपने स्वरूप से मिला लेता है। आत्मप्रयत्नसापेक्ष मन का ब्रहम से सयोग होने को योग कहा गया है। साकार और निराकार के भेद से ब्रह्म दो प्रकार के होते हैं। निष्पन्द सहित समाधिस्थ साधक परब्रह्म को प्राप्त करता है। यम नियमो से युक्त होकर प्राणायाम प्रत्याहार से इन्द्रियो को वश मे करके चित्त को शुभ आश्रय मे लगा देना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है इस भाव से उपासना की जाती है।

जिसमे भेद नष्ट हो जाता है जो सत्ता मात्र होता है और जो वाणी के द्वारा आत्मसवेद्य रहा करता है उसे ब्रह्मज्ञान कहते है। यह निराकार विष्णु का परमरूप है जो अज और अक्षर होता है। इस प्रथम निराकार विष्णु की उपासना अशक्य होने से उसके मूर्तरूप का चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर परमात्मा के साथ एकाकार होकर उसका अज्ञानजन्य भेद अभेद मे परिवर्तित हो जाता है।[2]

15–अद्वैत ब्रहम विज्ञान–

अद्वैत विज्ञान वक्ष्ये यद्‌भवतोऽगदत्।

शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत्।।[3]

अग्निपुराण मे अद्वैत ब्रह्म विज्ञान का वर्णन एक प्राचीन कथा के माध्यम से किया गया है जिसमें

1–अग्निपुराण 379/1–21

2–अग्निपुराण 379/21–32

3–अग्निपुराण 380/1

जडभरत और सौवीर नरेश के परस्पर सवाद से अद्वैत ब्रह्म विज्ञान को प्रस्तुत किया गया है। तदनुसार प्राचीनकाल मे राजा भरत हुए जिन्होने अपनी तपस्या के प्रभाव से दूसरे जन्म मे मृगयोनि प्राप्त करने पर भी पूर्वजन्म की समस्त बातो का स्मरण था जिससे वह अपने योग के बल से मृग शरीर को भस्म कर ब्राहमण रूप से प्रकट हुए तथा लोक मे जडवत व्यवहार करते हुए सौवीर नरेश की पालकी ढोने वाले बने। अन्य सेवको की अपेक्षा इनकी मन्द गति को देखकर सौवीर नरेश ने इनसे प्रश्न किया अभी थोडी ही दूर चले हो थक गये हो क्या मोटे होते हुए भी तुम थोडे से परिश्रम को नही सह सकते? इस पर उन्होने उत्तर दिया कि मै न मोटा हू, न ही मैने तुम्हारी पालकी का वहन किया है और न ही मै थका हू। मेरे दोनो पैर पृथ्वी पर स्थित है तथा मेरी दोनो जघाये उरूद्वय आधा उदर वक्षस्थल दोनो भुजाये और दोनो कधे क्रमश एक दूसरे के ऊपर स्थित है और आपकी पालकी मेरे कधों पर स्थित है इससे मेरे ऊपर क्या भार है। इस पालकी पर सवार तुम्हारा शरीर ही तुम हो। जैसे तुम्हारे शरीर को तुम कहा जाता है वैसे ही मेरे शरीर को मैं। अत मै तुम तथा अन्य सभी इन्ही पचमहाभूतो से ढोये जा रहे हैं। गुणो के प्रवाह मे बहकर गुणवर्ग भी इसी प्रकार से चलता रहता है। सत्यादि गुण कर्मों के अधीन है। समस्त जीवो का कर्म उनमे अविद्या के द्वारा सचित है।[1]

भरत ने कहा– यह आत्मा शुद्ध अमर शान्त निर्गुण और प्रकृति से परे रहने वाली है। समस्त जीवो मे इस एकात्मा की न तो वृद्धि होती है और न ही क्षति फिर क्या तुम स्थूल नहीं हो इस प्रकार तुमने कैसे कहा। जिस प्रकार पृथ्वी जघा कटि उदर आदि के ऊपर यह पालकी स्थित है उसी प्रकार कधे के ऊपर भी उसका भार तुम्हारे समान ही है। हे राजन्! इस विषय मे अन्य जीव श्रेष्ठ नहीं है। पालकी के अतिरिक्त वृक्षो पर्वतो तथा पृथ्वी पर रहने वाले अस्तित्व को दिन रात समस्त जीव वहन करते हैं। हे राजन! क्योकि यह पुरूष (आत्मा) प्राकृत कारणो से भिन्न है। अत मेरे द्वारा कोई भार कैसे वहन किया जा सकता है। यह पालकी भी उसी भूत समुदाय से बनी है जिससे अन्य द्रव्य बने है जिन्हे हम अज्ञान वश अथवा अहकार वश अपने रूप मे समझने लगते हैं।

यह सुनकर राजा उनके चरणो को पकडकर क्षमायाचना करते हुए उनका परिचय तथा उनके आगमन का कारण पूछने लगे जिसका उत्तर देते हुए वे बोले–हे राजन! मैं क्या हू यह मैं नही बता सकता। मै अपने कर्मों को भोगने के लिए सर्वत्र घूम रहा हू। यहा जिस दुख और सुख का उपभोग किया जाता है वे सब धर्म और अधर्म से उत्पन्न होते हैं उनका उपभोग करने के लिए प्राणियो को देश–देशान्तरो

1–अग्निपुराण 380/2–9

मे भटकना पडता है।

राजा ने उनसे कहा आप क्यो नही कहते कि जो सत वही मै हू। हे द्विज! आत्मा के लिए मै शब्द दूषित नही कहा जाता। इस पर वे बोले कि आत्मा मे मैं शब्द दूषित नहीं होता तथापि अनात्मा मे आत्मज्ञान भ्रान्ति का लक्षण है। जब समस्त शरीरो मे एक ही आत्मा निवास करता है तो मै कौन हू आप कौन हैं ऐसा कहना व्यर्थ है। अत हे राजन! आप राजा है यह पालकी है हम लोग वाहक हैं सबलोक आपका है–यह कथन असत्य है। वृक्ष की लकडी से निर्मित इस पालकी के ऊपर बैठे हुए आपको देखकर कोई भी मनुष्य यह नही कह सकता कि महाराज वृक्ष के ऊपर बेठे हैं। इसी प्रकार आपको लकडी के ऊपर बैठा देखकर कोई यह नही कहेगा कि आप पालकी पर बैठे हैं।[1]

लकडी का समूह पालकी तभी कहा जाता है जब वह एक विषेश रचना कला द्वारा एक विशेष आकृति मे परिणत होती है। हे राजन्! तभी आप लकडी और पालकी मे भेद कर पाते हैं। यह पुरूष है यह स्त्री यह गौ यह घोडा है यह पक्षी वृक्ष ये सभी शरीरधारियो के ये नाम कर्म के हेतु होते हैं। दात और तालू की सहायता से जिह्वा मैं शब्द का उच्चारण करती है किन्तु मैं शब्द उन अवयवो का वाचक नहीं हो सकता क्योकि वे वाणी की उत्पन्न करने के हेतु ही हैं। वाणी ही किसलिए स्वय मैं शब्द का प्रयोग करती है तथापि मै वाणी नही हू यह कथन भी असत्य होने से उपयुक्त नही कहा जा सकता है। हे राजन्! जब सिर और वायु इत्यादि रूप यह पिण्ड आत्मा से अलग है तो उसके लिए मै शब्द का प्रयोग मैं कैसे कर सकता हू। हे राजन्! मुझमे जो कुछ भिन्न है वही यह मैं हू यह भी कहा जा सकता है। वास्तव मे पर्वत पशु तथा वृक्ष आदि का भेद सत्य नही है। शरीर दृष्टि से ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं ये सब कर्मजन्य हैं। इस लोक मे जो राजा है अथवा राजसेवक है ये सब भेद समीचीन नही है। आप सारी प्रजा के राजा हैं अपने पिता के पुत्र है इसलिए हे राजन आपको क्या कहू। तुम सिर हो क्या? यह सिर और उदर तुम्हारा नहीं है अथवा अन्य अवयव आपके नहीं हैं? आप समस्त अवयवो से भिन्न रहा करते है। अत हे राजन! आप ही विचार करे मै क्या कहू। इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने पुन अपने कल्याण की बात पूछी। जिस पर ब्राह्मण जडभरत ने कहा तुम बार बार कल्याण की ही बात पूछते हो परमार्थ क्यो नही पूछते हो। हे राजन! सभी का कल्याण मोक्ष मे ही है। मनुष्य देवताओ की पूजा करके धन् सम्पत्ति पुत्र तथा राज्य की इच्छा करता है। हे राजन! क्या इसी को कल्याण कहते हैं। यज्ञ इत्यादि कर्म तथा द्रव्य इत्यादि की प्राप्ति की अपेक्षा विवेकियो के लिए परमात्मा के साथ सयोग ही कल्याणकारी होता है। आत्मा

1–अग्निपुराण 380/9–26

और परमात्मा का सयोग ही परमार्थ है। जो एक सर्वव्यापी सबमे समान शुद्ध निर्गुण और प्रकृति से परे रहा करता है। आत्मा जन्म और वृद्धि आदि से रहित सर्वगत और अवयव होती है। वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानमय अनासक्त गुण और जाति आदि से रहित विभु है।[1] इस सारभूत ज्ञान के प्रथाव से सौवीर नरेश बन्धनमुक्त हो गये। अत ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन करना चाहिये क्योकि ज्ञान स्वरूप ब्रह्म ही इस अज्ञानमय ससार वृक्ष को नष्ट करने वाला है।[2]

16—गीतासार—

महाभारत के युगान्तक युद्ध मे पाण्डवो की सात अक्षौहिणी तथा कौरवो की ग्यारह अक्षौहिणी सेनाये आमने सामने प्रस्तुत थी। युद्ध प्रारम्भ था। इसी समय गाण्डीवधारी महारथी अर्जुन को योद्धाओ के निरीक्षण की उत्सुकता हुई। अत उन्होने अपने सारथी श्री कृष्ण को दोनो सेनाओ के मध्य रथ प्रस्तुत करने की अभिलाषा व्यक्त की। श्री कृष्ण ने तत्क्षण उनकी इच्छापूर्ति कर दी और रथ को दोनो सेनाओ के मध्य उपस्थित कर दिया।

वहा जाकर अर्जुन ने सेनाओ के मध्य अपने स्वजनो को रणोद्यत देखा। उन्हे मारकर वह स्वर्ग का भी राज्य प्राप्त करने के लिए तैयार नही था फिर पृथ्वी के राज्य की क्या बात। अत उसके शरीर मे कम्पन्न होने लगा रोमावलि खडी होने लगी त्वचा मे जलन होने लगी और गाण्डीव हाथ से (न सम्हल कर) सरकने लगा। ऐसी स्थिति मे उसने युद्ध करने का निषेध कर दिया।

श्री कृष्ण के लिए यह परम विषम स्थिति थी। एक तरफ तो दो सेनाये युद्धोन्मुख थी और दूसरी ओर का प्रधान महारथी धनुष का परित्याग कर चुका था और युद्ध न करने की घोषणा कर रहा था। ऐसी विषम स्थिति मे श्री कृष्ण ने अर्जुन को न दैन्य न पलायनम् का उपदेश करते हुए जीवन की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का प्रतिपादन किया। जिसके प्रभाव से अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो गये और करिष्ये वचन तव का निरूपण है—

गीता सार प्रवक्ष्यामि सर्वगीहतोत्मोत्तमम्।

कृष्णो यमर्जुनायाऽऽह पुरा यै भुक्तिमुक्तिदम्।।[3]

प्राचीन काल मे कृष्ण ने अर्जुन से जिस गीता का उपदेश दिया था जो सभी गीताओ मे उत्तमोत्तम है उस गीता का ज्ञान और मोक्ष प्रदान करने वाला है। यहा भगवान कृष्ण गीता का उपदेश देते हुए कहते

1—अग्निपुराण 380/26—45

2—अग्निपुराण 380/68

3—अग्निपुराण 381/1

है कि प्राणियो के जन्म मरण का शोक नही करना चाहिये क्योकि आत्मा अजन्मा अजर अमर और भेद रहित है। मनुष्य विषयो का चिन्तन करता है तो उसे उन विषयो के प्रति आसक्ति हो जाती है जिससे कामनाये उत्पन्न होती है। इन्ही कामनाओ से क्रोध क्रोध से सम्मोहन उत्पन्न होता है सम्मोहन से स्मृति और बुद्धि नष्ट होती है जिससे मनुष्य का सर्वनाश हा जाता है। सत्सगतिदु सगति को दूर करने वाली है। कामनाओ का त्याग मोक्ष प्रदान करने वाला है।[1] कामनाओ के परित्याग से उत्पन्न आत्मनिष्ठा से युक्त स्थिर प्रज्ञ मनुष्य अपने आप मे ही सतुष्ट रहता है। उसका न तो किसी व्यक्ति से और न होने वाले किसी कार्य से कोई प्रयोजन ही रहता है। वह गुण और कर्मो के विभाग को भलीभाति समझता हुए उनमे आसक्त नही होता। वह ज्ञान रूपी नौका के द्वारा समस्त इच्छाओ को पार कर लेता है। श्री कृष्ण कहते है– हे अर्जुन! जो व्यक्ति आसक्ति रहित होकर समस्त कर्मो को ब्रह्मार्पण कर देता है उसकी ज्ञानाग्नि समस्त कर्मो को भस्म कर देती है वह जल मे कमल की भाति पापकर्मो से अछूता रहता है। समदर्शी योगी समस्त प्राणियो मे अपनी आत्मा तथा अपने आप मे समस्त प्राणियो का दर्शन करता है। हे तात! सबका कल्याण करने वाले मनुष्य की दुर्गति नही होती। जो मेरी शरण मे आते है वे ही मेरी दैवी दुर्गम या गुणमयी माया को मेरी कृपा से जानकर पार हो जाते है। हे भरत श्रेष्ठ! चार प्रकार के लोग मेरी सेवा करते हैं– दु खी जिज्ञासु धनार्थी तथा ज्ञानी। इनमे से ज्ञानी ही मेरे एकत्व मे स्थित होता है। ब्रह्म अविनाशी तथा सर्वश्रेष्ठ है। ससार तथा उससे उत्पन्न ज्ञान नश्वर होता है किन्तु आत्मज्ञान अनन्त कहा गया है। अन्त काल मे मनुष्य जिस भाव का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है उसी को वह प्राप्त करता है। अन्त समय मे मेरा स्मरण करने वाले निश्चय ही मुझ प्राप्त करते हैं। मै ही विश्वरूप हू धनवान और वीर प्राणी मेरे ही अश कहे गये है। इस प्रकार का ज्ञान होने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। शरीर को क्षेत्र तथा उसको जानने वाला क्षेत्र कहा गया है और क्षेत्र का ज्ञान ही मेरा ज्ञान है। मान रहित होना दम्भ रहित होना अहिसा क्षमा ऋजुता आचार्य पूजा पवित्रता स्थिरता आत्मसयम विषयो से वैराग्य अहकार हीनता जन्म मृत्यु जरा व्याधि दु ख और दोषो का ज्ञान पुत्र कलत्र और ग्रहादि मे अनासक्ति इष्ट और अनिष्ट मे नित्य समान रूप से रहना मेरे प्रति अनन्य भाव से दोषरहित भक्ति एकान्तवास जनसमूह से वैराग्य आध्यात्मज्ञान निष्ठा और तत्व ज्ञान ये सब ज्ञान के विषय कहे गये हैं तथा इससे भिन्न जो कुछ है उसे अज्ञान कहते है। अनादि और परमब्रह्म को सत्व कहा गया हैं जिसे जानकार अमृततत्व की प्राप्ति होती है।

1–अग्निपुराण 381/1–10

वह समस्त प्राणियो के वाह्याभ्यान्तर मे व्याप्त है। वह चर–अचर तथा लोक मे सब सुनने वाला तथा सबको आवृत्त करने वाला होता है। वह सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है और दूर होते हुए भी निकट है। वह अविभक्त होते हुए भी प्राणियो मे विभक्त सा रहता है। वह समस्त प्राणियो का भरण करने वाला विज्ञेय सबको ग्रसित करने वाला सबसे शक्तिशाली है। वह ज्योतियो मे भी ज्योति और अधकार से परे रहने वाला ज्ञान ज्ञेय तथा ज्ञानगम्य और सबके हृदयो मे रहने वाला कहा गया है।

वह पुन कहते हैं दैवी तथा आसुरी दो प्रकार की इस ससार मे सृष्टिया कही गयी हैं। अहिसा इत्यादि और क्षमा दैवी तथा अशौच और अनाचारआसुरी सम्पत्तियो से उत्पन्न होते है। यज्ञ और दान सात्विक यज्ञ है। फलेच्छा से किया गया यज्ञ राजस तथा दम्भ के लिए किया गया यज्ञ तामस कहलाता है। श्रद्धा मन्त्र इत्यादि से विधिपूर्वक किया गया तप शारीरिक तप तथा देव आदि की पूजा और हिसादि वाङमय तप कहा जाता हैं। यज्ञ और दानादि कर्म मनुष्यो को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले होते हैं। भेद रहित ज्ञान सात्विक पृथग ज्ञान राजस और तत्वहीन ज्ञान तामस कहा गया है। निष्कामभाव से किया गया कर्म सात्विक काम्य कर्म राजस तथा मोहवश किया गया कर्म तामस कर्म कहलाता है।[1] प्राणियो की प्रवृत्ति सात्विक कर्मों मे होनी चाहिये क्योकि उसी प्रवृत्ति मे सबकुछ व्याप्त है। जो व्यक्ति मन वचन और कर्म से समस्त अवस्थाओ मे और समस्त कालो मे ब्रह्म स्वरूप विष्णु का ध्यान करता है वह भगवद् भक्त निश्चय ही समस्त सिद्धियो को प्राप्त करता है।

<u>17–यमगीता</u>–

अग्निपुराण मे यमगीता के नाम से एक अध्याय का प्रतिपादन किया गया है। इसमे आत्मा को नित्य रहने वाला और शाश्वतिक बताया गया है। इस कथन का मूलाधार कठोपनिषद् मे प्राप्त यमराज और नचिकेता की कथा है।

नचिकेता के पिता ने ऐसा यज्ञ किया था जिसमे सर्वस्वदान कर दिया जाता है। किन्तु मोहवश उन्होने पुत्रदान नही किया था। उसने पुत्र के पालन पोषण के लिए हृष्ट पुष्ट गायो को भी बचा रखा था और शक्तिहीन गायो का दान किया था। नचिकेता ने पिता के पुण्य कर्म मे स्वय को बाधक माना। उसके निराकरण के लिए वह पिता के पास गया और बोला– कस्यै मा दास्यसीति

उत्तर न पाकर नचिकेता ने दो बार तीन बार पूछा। उसके प्रश्न से उद्‌विग्न होकर उसके पिता ने कहा– मृत्यवे त्वा ददामीति

1–अग्निपुराण 381/12–52

है। यह उपदेश कठोपनिषद की कथा पर आधारित है। अग्निपुराण मे कहा गया है कि--

यम गीता प्रवक्ष्यामि उक्ता या नचिकेतसे।

पठता शृण्वता भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिना सताम्।।[1]

जिसके अध्ययन से मुमुक्षु सज्जनो को भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसी यमगीता जिसका वर्णन नचिकेता से किया गया था उसका वर्णन अग्निपुराण के 382वे अध्याय मे इस प्रकार किया गया है।

यम कहते है कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य स्वय अस्थिर होते हुए भी मोहवश स्थिर रहने वाले आसन शयन्यान परिधान और गृह आदि की इच्छा करते हैं। जबकि इससे पूर्व विभिन्न ऋषियो ने इस विषय मे विभिन्न मतो का वर्णन किया है। महर्षि कपिल के अनुसार भोगो मे अनासक्ति तथा निरन्तर आत्मदर्शन ही मनुष्यो का परम कल्याण है। पचशिख के अनुसार सर्वत्र समदर्शित्व निर्ममत्व और असगता मनुष्यो के परम कल्याण का साधन है। गगा--विष्णु के अनुसार गर्भ से लेकर जन्म और बाल्यादि अवस्थाओ का ज्ञान मनुष्यो के परम कल्याण का हेतु है। महाराज जनक ने कहा कि मनुष्यो का परम कल्याण आध्यात्मिक आदि दु खो को क्षणिक समझ कर धैर्य पूर्वक सहन करने मे है।[2]

इसके अनुसार कर्म दो प्रकार के होते हैं-- प्रवृत्तकर्म और निवृत्तकर्म। इनमे से निवृत्त कर्म सर्वश्रेष्ठ और कल्याणो मे भी परम कल्याण तथा ब्रह्मरूप विष्णु है। तपस्या के द्वारा मनुष्य ज्ञान विज्ञान श्रेष्ठ रूप तथा अन्य मनोवाछित कामनाओ को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म से ही सबकुछ उत्पन्न होता है और उसी मे स्थित रहता है। वह ब्रह्म जो अग्राह्य अनिर्देश्य सुप्रतिष्ठित और सर्वश्रेष्ठ है वही परात्पर रूप से विष्णु के रूप मे सभी के हृदय मे स्थित रहता है।

आत्मा को रथी के समान कहा गया है। शरीर को रथ बुद्धि को सारथी मन को रस्सी तथा इन्द्रियो को घोडे और विषयो को मार्ग कहा गया है। ज्ञानवान् व्यक्ति जिसका मन परमब्रहम मे निरत रहता है वह उस परमपद को प्राप्त कर लेता है जहा से उसे फिर इस ससार मे आना नही पडता है। ज्ञानरूपी सारथी और मनरूपी रस्सियो से सयुक्त मनुष्य उस मार्ग को प्राप्त करता है जो विष्णु का परमपद कहा गया है। आत्मा इन्द्रिय विषय मन तथा बुद्धि से परे है तथा आत्मा से अव्यक्त और अव्यक्त से परे परमपुरूष है। समस्त प्राणियो मे गूढ रूप से विद्यमान आत्मा सूक्ष्मद्रष्टा लोगो द्वारा देखी जाती है। यम नियम आदि साधनो के द्वारा ब्रह्म और आत्मा के योग के ज्ञान से मनुष्य सद्ब्रह्म हो जाता है। अहिसा

1--अग्निपुराण 382/1

2--अग्निपुराण 382/2-6

सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह–ये पाच यम कहे गये है तथा–शौच सतोष तप स्वाध्याय और ईश्वरपूजा को पाच नियम कहे गये हैं। पद्म आदि आसन है। प्राणायाम वायु से उत्पन्न होता है तथा आत्मनिग्रह को प्रत्याहार कहते है। किसी शुभवस्तु मे निश्चल रूप से चित्त के लगाने को ही धारणा कहते है उन्ही विषयो पर पुन पुन मन लगाना ध्यान कहा गया है। मै ब्रह्म हू– इस प्रकार की स्थिति समाधि कहलाती है। जेसे घडे के टूट जाने पर उसमे प्रतिविम्बित आकाश आकाश मे समाहित हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म से युक्त जीव भी ब्रहम ही हो जाता है। क्योकि वह ब्रह्मस्वरूप ही है। और अन्तत कहा गया है कि ब्रह्म ही आत्मा है जिसे अज्ञान के कारण जीव समझा जाता है यह जीव अज्ञान तथा उसके कार्यों से मुक्त होकर अजर और अमर है।[1]

इस प्रकार से वर्णित यह यमगीता भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। तथा इसी को वेदान्तियो की बुद्धि से युक्त आत्यन्तिक लय कहा गया है।

अत अग्निपुराण मे वर्णित धर्म और दर्शन मनुष्य को श्रेय तथा प्रेय दोनो प्रदान करने वाले हैं। इस दृष्टि से अग्निपुराण का महत्व और भी अधिक है।

1–अग्निपुराण 382/11–36

षष्ठम् अध्याय

अग्निपुराण में वर्णित कला

अग्निपुराण मे वर्णित कला

1—कला—

मानव सभ्यता के उषाकाल मे जबकि भाषा और लिपि का अविर्भाव नही हुआ था भावाभिव्यक्ति तथा विचारो के पारस्परिक आदान प्रदान का माध्यम कला ही थी। कला आचार्य क्षेमराज के अनुसार— (स्व को) अपने को किसी न किसी वस्तु के माध्यम से व्यक्त करना ही है और यह अभिव्यक्ति चित्र नृत्य मूर्ति अथवा वाद्य के माध्यम से होती है इस प्रकार कला मनुष्य की सौन्दर्य भावना को मूर्तरूप प्रदान करती है। भारतीय परम्परा कला का एक अर्थ कुशलता अथवा मेधाविता भी है। अत किसी कार्य के सम्यक रूप से सम्पन्न करने की प्रक्रिया को भी कला कहा जा सकता है।

लगभग पॉच सहस्र वर्ष पुरानी सैन्धव सभ्यता की कलाकृतियो से लेकर बारहवी शताब्दी तक की कला कृतियो मे एक अविच्छिन्न कलात्मक परम्परा प्रवाहित होती हुयी दिखाई पडती है। भारतीय कला के विभिन्न तत्वो जैसे नगर विन्यास स्तम्भ युक्त भवन निर्माण मूर्ति निर्माण आदि का जो रूप हमे भारत की इन प्राचीनतम सभ्यताओ मे दिखाई देता है उसी के आधार पर कालान्तर मे वास्तुकला तथा तक्षण कला का सम्यक विकास हुआ।

सर्वप्रथम चित्ररचना द्वारा विचार प्रकाशन की पद्धति इतनी विकसित हुयी कि धरती पर सम्पूर्ण मानव उसके प्रभाव से अछूता न रह सका। ये चित्र शिलाओ वृक्ष की छालो गुफाओ की दीवारो जीव—जन्तुओ के चर्मों हड्डियो सीगो दातो आदि अनेक प्रकार की सामग्री पर चित्रित किये गये थे।

प्राचीन भारत मे आध्यात्मिक उपादानो को लेकर कला के विराट स्वरूप का निर्माण हुआ। भारतीय कलाकारो ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर का यथार्थ चित्रण करने अथवा सौन्दर्य को उभारने मे नही किया है। अपितु उसमे आन्तरिक भावनाओ को उभारने का प्रयास ही अधिक हुआ है। इसका सुन्दर उदाहरण हमे विशुद्ध भारतीय शैली मे बनी बुद्ध की मूर्तियो मे देखने को मिलता है। भारतीय कलाकार का आदर्श अत्यन्त ऊॅचा था। उसने कला को इन्द्रियसुख की प्राप्ति का साधन न मान कर परमानन्द की प्राप्ति का साधन स्वीकार किया था। उसकी दृष्टि मे रूप या सौन्दर्य पाप वृत्तियो को उकसाने का साधन नही था। प्रत्युत इसका उद्देश्य चित्रवृत्तियो को ऊॅचा उठाना था। यह कलाकार आत्माभिव्यजन और आत्मश्लाघा से सदा ही दूर रहा है। उसका यह महान् त्याग और अनासक्ति थी जिसने तत्कालीन लोकजीवन की गौरवमयी मान्यताओं को अपनी कला मे सजोकर कला के ध्येय को अत्युच्य बना दिया जिसका स्वरूप हमे महान् सिन्धु सभ्यता की दुर्लभ कलाकृतियो

मे भी देखने को मिलता है।

सस्कृत भाषा के शब्द कला की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान कला शब्द का अर्थ सुन्दर कोमल या सुखकर मानकर उसे कला से सम्बद्ध करना चाहते हैं तो कुछ इसे कल (शब्द करना बजना गिनना) से सम्बन्धित मानते है तो कुछ विद्वान इसे कड धातु से तथा कुछ लोग इसे क अर्थात् आनन्द को लाने वाला मानते है।

सस्कृत साहित्य मे कला शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे किया गया है। कल् + अच् + टाप धातु तथा प्रत्ययो के सयोग से बने कला शब्द का अर्थ है– किसी की धातु का लघु अश 1/16 वॉ भाग कोई छोटा भाग चन्द्रमण्डल का 1/16 वा भाग समय का एक भाग मूल का ब्याज राशि के 30वे भाग का 60वा भाग किसी भी काम के करने मे अपेक्षित चातुर्य कपट तथा नौका आदि हैं। वस्तुत सौन्दर्य को दृश्य रूप मे प्रकट कर देना ही कला है। कला मनुष्य के भावनाओ की अभिव्यक्ति का माध्यम है इस माध्यम से मनुष्य अपनी सम्पूर्णता को अभिव्यक्त करता है।

कला शब्द का प्रयोग ऋग्वेद शतपथ ब्राम्हण षडविश ब्राह्मण साख्यायन ब्राह्मण तैत्तिरी आरण्यक तथा अथर्ववेद मे है परन्तु इनमे कला' शब्द का प्रयोग कार्यकोशल शिल्प या हुनर आदि के अर्थ में नही है। इस अर्थ मे कला शब्द का सर्वप्रथम और प्रामाणिक प्रयोग भारत के नाटयशास्त्र (पहली सदी के आसपास0 मे मिलता है)–

न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला।

नासौयोगो न तत्कर्म नाप्येऽस्मिन् यन्न विद्यते।।[1]

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नही को शिल्प नहीं कोई विद्या नही कोई कला नही भरत के पूर्व कला' शब्द का ललित कला' के या इस प्रकार के कौशल के अर्थ मे प्रयोग होता नही मिलता। इस सन्दर्भ मे प्रमाणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस अर्थ मे यहॉ का पुराना शब्द शिल्प था। ब्राह्मणो और सहिताओ मे शिल्प शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया गया है। पाणिनि के अष्टाध्यायी तत्कालीन सस्कृत साहित्य तथा बौद्ध साहित्य के आधार पर भी विद्वानो का यही कहना है कि उस काल मे शिल्प या सिप्प का प्रयोग उपयोगी और ललित दोनो ही कलाओ के लिये होता था। भरत मे कला को साहित्य और सगीत के समकक्ष मानते हुए मनुष्य के लिये उसे आवश्यक बताया गया है। भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक मे स्पष्टत लिखा है कि साहित्य सगीत तथा कला से हीन मनुष्य पूँछ और सीग से रहित साक्षात् पशु के समान है–

1– नाट्य शास्त्र 1/116–117

साहित्य सगीत कला विहीन ।

साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन ।।[1]

कला के सन्दर्भ मे वासुदेवशरण अग्रवाल महोदय का कहना है–

प्राचीन युग मे शिल्प शब्द को बहुत अधिक महत्व प्राप्त हुआ। जीवन से सम्बन्धित कोई उपयोगी व्यापार ऐसा न था जिसकी शिल्प मे गणना न हो। इस प्रकार ललित कलाए और सामान्य कलाऍ दोनो ही शिल्प के अन्तर्गत समझी जाती थी।

अष्टाध्यायी मे शिल्पी शब्द चारू शिल्पी और कारू शिल्पी दोनो के लिये प्रयुक्त हुआ है। नर्तक गायकवादक जिस सगीत की साधना करते हैं उस ललित कला को भी उस समय शिल्प कहा जाता था। कोषीतकी ब्राम्हण मे नृत्य और गीत को शिल्प माना गया है।

अनेक विद्वान कला के अन्तर्गत वास्तु मूर्ति चित्र एव सगीत को ही स्वीकार करते हैं उनका आशय काव्य से नही है। शिल्प के अन्तर्गत काव्य का समावेश प्राचीन काल से ही नही था अपितु अन्य सभी कलाओ (उपयोगी और ललित) का स्थान था। पर भरत के कुछ पूर्व सम्भवत बौद्ध युग मे कला का इस अर्थ मे प्रयोग होने लगा। परन्तु इन दोनो शब्दो के प्रयोग और अर्थ का क– भी स्पष्ट विभाजन नही हुआ। ऐसी बहुत सी कलाए हैं जो सरलता पूर्वक शिल्प कही जा सकती है।

विद्वानो ने कला को परिभाषित करना सबसे कठिन माना है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो कला को सत्य की अनुकृति की अनुकषति मानते हैं और अरस्तु उसे अनुकरण कहते हैं। क्रोचे महोदय का कहना है कि कला वाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति है। पाश्चात्य विद्वानो मे हीगल महोदय के लिये कला आधिभौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है। टालस्टाय महोदय ने कला को भावो की वह क्रिया कहा है जो रेखा रग ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त की जाती है कि उसे सुनने वाले मे भी वही भाव जाग जाय। प्रसिद्ध भारतीय कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार कला मे मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता हैं। रस्किन महोदय कहते हैं प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आह्लाद की अभिव्यक्ति है। गौथे के अनुसार किसी भी कला की सबसे बडी समस्या यह रहती है कि वह किस प्रकार महान् सत्य की प्रतिकृति प्रस्तुत करे तथा फ्रायड के अनुसार कला दमित वासनाओ का उभरा हुआ रूप है।

वस्तुत कला मानव की कर्तत्व शक्ति का किसी भी मानसिक तथा शारीरिक उपयोगी या अनन्ददायी या दोनो से युक्त वस्तु के निर्माण के लिये किया गया कौशल युक्त प्रयोग है। इसीलिये हमारी सामान्य से सामान्य

1– नीतिशतक 72

क्रिया भी अशत कला की अपेक्षा रखती है। भारतीय सौन्दर्य शास्त्र मे कला के चार तत्व बताये गये है। वह रस अर्थ कल्पना तथा रूप है।

1—रस—

रस कला की आत्मा है मन म जो मानवीभाव उत्पन्न होते है उन्हे कला द्वारा व्यक्त किया जाता है।

2—अर्थ—

अर्थ की जिज्ञासा विषय को उत्पन्न करती है। अर्थ जानने की जिज्ञासा ही हमे कला के निकट ले जाती है।

3—कल्पना—

ध्यान की शक्ति से चित्र या मन मे रस उत्पन्न करने को कल्पना कहा जा सकता है। कल्पना के माध्यम से ही कलाकार निर्माण करता है।

4—रूप—

रस अर्थ और कल्पना को भौतिक धरातल पर उतारने को रूप कहा जाता है।

कला की गणना के प्रसग मे विद्वानो ने कला के कई वर्ग निर्धारित किये हैं। कामसूत्र तथा शुक्रनीति मे कलाओ के 64 वर्ग बताये गये है। कुछ जैन ग्रन्थो मे 64 या कहीं कही 62 कलाओ के नाम दिये गये है। प्रबन्ध कोश मे भी 62 प्रकार की कलाए दी गयी हैं। प्रसिद्ध काश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र ने तो कलाओ पर एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखी थी जिसका नाम कला—विलास है इस ग्रन्थ मे विभिन्न कलाओ की विस्तार से चर्चा की गयी है। जिसमे 64 तो जनोपयोगी कलाये 32 धर्म—अर्थ काम मोक्ष अर्थात चार पुरूषार्थों की प्राप्ति और 32 मात्सर्य—शील प्रधान भाव की है। 64 कलाये सोनारो की सोना चुराने की 64 कलाये वैश्यो को मोहित करके पैसा ऐठने की 10 भेषज्ञ कलाये 16 कायस्थो की कलाये जिसमे लिखने के कौशल से लोगो को धोखा देने की बात प्रमुख है। अत यह स्पष्ट है कि यहा कला उन सारी जानकारियो या क्रियाओ को कहते रहे हैं जिनमे थोडी भी कुशलता की आवश्यकता हो। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि कला मे सामान्यत उपयोगी और ललित दोनो कलाये आती रही है। ललित—कला के अन्तर्गत वास्तु मूर्ति चित्र सगीत और काव्य ये पॉच कलाएँ रखी जाती हैं।

उपयोगी कलाओ का सम्बन्ध मनुष्य के दैनिक जीवन की आवश्यकताओ से है। इसके अन्तर्गत वस्त्र—निर्माण कला गृह निर्माण कला ग्रहोपयोगी सामग्री की निर्माण कला, आभूषण भोजन आदि बनाने की कला की गणना की जाती है ललित कलाओ का सम्बन्ध आनन्द तथा सौन्दर्य प्रदर्शन से है पुराणों मे प्रभासनाम अष्टम

वसु के पुत्र विश्वकर्मा को समस्त शिल्पशास्त्रो कलाओ का आचार्य कहा गया–

विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्र शिल्पी प्रजापति

प्रसादभवनोद्यान प्रतिमा भूषणादिषु।।

तडागारामकूपेषु स्मृत सोऽमरवार्धकि ।[1]

विविध शिल्पो का ज्ञाता वास्तुकार रथकार मालाकार कास्यकार लौहकार काष्ठकार स्वर्णकार मणिकार कुम्भकार आदि नामो से जाना जाता है। मत्स्य तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराणो मे शिल्प कला का विस्तार से वर्णन मिलता है।

2–चित्रकला

वास्तु शिल्पकला के समान चित्रकला भी अति प्राचीन कला है। पुराणो मे भगवान नारायण को इस कला का आदि आचार्य तथा प्रवर्तक कहा गया है। सर्वप्रथम विश्वकर्मा ने यह कला उसने ग्रहण की तथा सर्वत्र उसका प्रचार प्रसार किया। आज विश्व मे चित्रकला से सम्बन्धित जिन ग्रन्थो का निर्माण हो रहा है उनके मूल सूत्र पुराणो मे विद्यमान है। पुराणो मे इससे सम्बन्धित कथाये प्राप्त हैं जिसमे चित्रकला के उद्भव के विषय मे विष्णु धर्मोत्तर पुराण[2] मे स्पष्ट उल्लेख किया गया है जो सक्षेप मे इस प्रकार है–

वदरिका श्रम मे लोककल्याण की भावना से भगवान् नर नारायण तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या से भयभीत देवराज इन्द्र ने विघ्न डालने के उद्देश्य से कामदेव तथा अन्य देवो गन्धर्वो तथा अप्सराओ को उनके पास भेजा किन्तु वे उन्हे विचलित न कर सके। अत अन्तर्यामी भगवान् नारायण ने इन्द्र की चाल को समझकर भयभीत अप्सराओ और गन्धर्वो को अभय प्रदान किया तथा उन्होने आम्रवक्ष के रस से पृथ्वी पर एक सुन्दर नारी की आकृति बनायी और वह आकृति उठ खडी हुई। त्रैलोक्य सुन्दरी तथा अद्वितीय रूपलावण्य सम्पन्ना वह कोई और नहीं उर्वशी अप्सरा थी। नारायण ने और भी कई नारी–चित्रो की रचना कर उन्हे प्राणवान् बनाया। उनमे से जो सबसे सुन्दर हो उसे देवलोक ले जाने के लिये उनसे कहा। वे उर्वशी को लेकर चले गये।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीयखण्ड के प्रथम एव तृतीय अध्याय मे तथा 35 से 43 तक के अध्यायो मे सुन्दर चित्रो के आकार–प्रकार उन्हे बनाने की विधि और विविध रगो के प्रयोग आदि की भी विधि का विस्तार से विवरण दिया गया है जिसमे देवता ऋषि मुनि मनुष्य गन्धर्व अप्सरा दैत्य दानव पशु–पक्षी सूर्य–चन्द्र शख

1–(क)मत्स्य पुराण–5/27–28
(ख)– विष्णु पुराण– 1/15/118–125
(ग)– ब्रहम पुराण–1/156–159
(घ)– वायु पुराण– 2/5/28–30
(ङ)– ब्रहमवैवर्तपुराण– श्रीकृष्ण जन्म खण्ड–अध्याय 14–समस्त स्थलो पर यह श्लोक प्राय एक समान ही है।

2– विष्णु धर्मोत्तरपुराण 3/35

पद्मादि निधियो समुद्र शैल शिखर प्राकृतिक दृश्यो उद्यानो प्रात काल सायकाल रात्रि दिन तथा सर्वतोभद्र मण्डलादि के चित्र विशेष है। चित्रकला का महात्म्य बतलाते हुये कहा गया है–

यथा सुमेरू प्रवरो नगाना यथाण्ड जाना गरूड प्रधान।

यथा नराणा प्रवर क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्प ।।[1]

अर्थात् जिस प्रकार पर्वतो मे सुमेरू पक्षियो मे गरूण मनुष्यो मे राजा श्रेष्ठ है वैसे ही कलाओ मे चित्रकला सर्व श्रेष्ठ है। अग्नि पुराण मे चित्रकला से सम्बन्धित कोई उल्लेख नही प्राप्त है।

3–वास्तुकला

सामान्यतया भवन निर्माण कला को वास्तुकला अथवा स्थापत्य कला कहा जाता है। इसके अन्तर्गत दुर्ग प्रसाद मन्दिर आदि निर्माण के साथ साथ नगर नियोजना की भी गणना की जानी है तथा गृह के उपकरण भूत वापी कूप तड़ाग उद्यान रचना वृक्षारोपण मैसज्य– दोहन आदि विषयो का वर्णन रहता है। वास्तु अथवा निवास स्थान के शुभाशुभ होने पर ही भूमि शोधनादि की क्रिया सम्पन्न कराने पर निर्माण कार्य करना चाहिये। यदि वास्तु (निवासस्थान) अशुभ हो तो ग्रहस्थ को पद–पद पर कष्ट होता है अनेक उपद्रव होते हैं और शुभ होने पर सुख शान्ति रहती है।

वास्तुकला का उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद मे भी प्राप्त होता है। वस्तुत इस विषय से सम्बन्धित स्वतन्त्र परवर्ती ग्रन्थो मे वास्तुराजवल्लभ तथा समराकणसूत्रधा' दो महत्वपूर्ण उल्लेखनीय ग्रन्थ है। किन्तु पुराणो मे विशेषत मत्स्यपूराण[2] विष्णु धर्मोत्तरपुराण[3] अग्निपुराण[4] तथा गरूण पुराण आदि मे वास्तु कला के महत्वपूर्ण विषयो का वर्णन प्राप्त है। मत्स्यपुराण मे वास्तु कला के भृगु अत्रि वशिष्ठ विश्वकर्मा मय नारद नग्नजित भगवान शकर इन्द्र ब्रह्मा कुमार नन्दीश्वर शौनक गर्ग वासुदेव अनिरूद्ध शुक्र तथा वृहस्पति नाम से अठारह उपदेण्टा आचार्य बताये गये है जिनमे से विश्वकर्मा को देवताओ के शिल्पी के रूप मे तथा मय को दानवों के शिल्पी के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त है। विश्वकर्म शिल्पम् तथा मयशिल्पम् ये इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ कहे जाते हैं।

मत्स्य पुराण[5] मे वास्तु के प्रादुर्भाव के सन्दर्भ मे एक कथा का उल्लेख किया गया है जिसमे प्राचीन काल मे अन्धकासुर मर्दन काल मे भगवान शिव के मस्तक से जो स्वेदबिन्दु पृथ्वी पर गिरे उनसे एक विकराल आकृति वाला पुरूष प्रकट हुआ जो मुख फैलाये हुये असख्यगणो का रक्तपान करता हुआ भी अतृप्त और क्षुब्धा से

1– विष्णु धर्मोत्तरपुराण 3/34–39

2– मत्स्यपुराण अध्याय–252–256

3– विष्णु धर्मोत्तरपुराण–द्वितिय खण्ड–अध्याय–29 तृतीय खण्ड–94–95

4– अग्निपुराण अध्याय–93 104–106

5– मत्स्यपुराण–25

व्याकुल हो त्रिलोकीनाथ भगवान शकर को भक्षण करने के लिये बढा। तब भगवान शिवआदि देवताओ ने उसे पृथ्वी पर सुला कर वास्तुदेवता के रूप मे प्रतिष्ठित किया। अत वह वास्तु नाम से प्रसिद्ध हुआ। देवताओ ने उसे गृहनिर्माण आदि के तथा पूजन यज्ञ आदि के समय पूजित होने का वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिये आज भी वास्तुदेवता का पूजन होता है। पुराणो म वास्तुदेवता के शरीर मे 64 तथा 81 देवताओ[1] के स्थित होने की बात कही गयी है। इसी आधार पर पूजन आदि म जो वास्तु चक्र बनता है उसमे शिखी जयन्त पर्जन्य इन्द्र सूर्य आदि वास्तुमण्डलस्थ देवताओ का पूजन किया जाता है। इनके पूजन से कोई विघ्न नही होता तथा सुखशान्ति रहती है। अग्निपुराण मे इसकी विस्तृत पूजा विधि निर्दिष्ट है। अग्नि पुराण के 93वे अध्याय मे वास्तु पूजाविधि का विस्तार से वर्णन करते हुये वास्तु देवता को असुर आकृति वाला कहा गया है।

वास्तुमुत्तानमसुराकतिम[2]

समस्त देवताओ मे वास्तुदेव का कुश दही अक्षत जल से पूजन करना चाहिये।[3] यदि गृह तथा नगर की स्थापना करनी हो तो इक्यासी प्रकोष्ठ वाले मण्डप का विधान है तथा देश की प्रतिष्ठा करनी हो तो चौतीस सौ कोष्ठ वाले वास्तु का विधान करना चाहिय।[4] समस्त देवताओ को खीर का नैबेध समर्पित करना चाहिए। अन्तत गृह–प्रासाद माने वास्तु श्रेष्ठस्तु सर्वदा।[5]

(क)नगर निर्माण कला (योजना)

अग्निपुराण के 106 अध्याय मे नगर–निर्माण की योजना का विस्तृत व्याख्यान किया गया है–

नगरादिकवास्तु च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये।[6]

अग्निपुराण के अनुसार नगर बसाने के लिये चार कोस एक या दो कोस तक का स्थान चुनना चाहिय। नगर मे बडे–बडे बाजार होने चाहिये तथा छह हाथ चौडे और बडे बडे फाटक बनवाने चाहिये। नगर वास्तुदेव की पूजा करके परकोटा खिचवा देना चाहिये। नगर का अग्रभाग धनुष या वज्रनाग के समान होना शातिदायक होता है। नगर के पूर्वी फाटक पर लक्ष्मी तथा कुबेर की मूर्तियो को आमने सामने रखना चाहिये नगर की रक्षा के लिये ब्रह्मा विष्णु महेश की मूर्तियो की स्थापना करनी चाहिये। ऐसा न करने से रोगो और पिशाचादि के आक्रमण का भय रहता है और देव प्रतिमाओ से युक्त नगर– सदैव हीं जयद भुक्तिमुक्तिदम्। होता है।[7]

1–अग्निपुराण–93/3
2–अग्निपुराण–93/3(1)
3–अग्निपुराण–93/30
4–अग्निपुराण–93/35
5–अग्निपुराण–93/42
6–अग्निपुराण–106/1

राजमहल चतु शाल (एक दूसरे के समान स्थित चार घरो वाला महल) त्रिशाल द्विशाल तथा एक शाल होने चाहिए। राजमहल के पूर्व कोशागार दक्षिण पूर्व पाकशाला दक्षिण दिशा मे शयन कक्ष तथा दक्षिण पश्चिम मे अस्त्रागार पश्चिम मे भोजनालय पश्चिमोत्तर धान्यागार तथा पूर्वोत्तर मे देवालय का निर्माण कराना चाहिये। सिद्धो तथा तपस्वियो को नगर के उत्तर की ओर बसाना चाहिये। तथा अन्य जातियो को नगर के विभिन्न दिशाओ मे बसाने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है।

<u>(ख)गृह निर्माण</u>

अग्निपुराण के 105 वे अध्याय मे गृहादिवास्तु का वर्णन किया गया है–

सामान्यान्यगृह वक्ष्ये सर्वेषा सर्वकामदम्।।[1]

सामान्यत घर मे एक दो तीन चार या आठ कमरे होने चाहिये पाकशाला घर के दक्षिण पूर्व कोने मे होने चाहिये शयनकक्ष तथा अस्त्रागार भी दक्षिण मे तथा उत्तर दिशा मे पशुओ का कमरा होना चाहिये। मैदान के नवम भाग मे बना घर शुभ होता है। घर के कमरे बाजार की दुकानो के समान पक्तिबद्ध होने चाहिये। सामान्य गृह निर्माण मे वास्तुदेव की 81 कोष्ठो से युक्त आकृति तथा मण्डप मे सौ कोष्ठ होने चाहिये और समस्त देवताओ की पूजा विधिविधान से करनी चाहिये।

<u>(ग)प्रासाद–लक्षण</u>

अध्याय 104 मे प्रसाद लक्षण का विवेचन है–

वक्ष्ये प्रासाद सामान्य लक्षणम्[2]

एक वर्गाकार भू भाग के आयताकार खण्डो मे विभक्त होता है तथा दीवारो की चौडाई इस प्रकार के वर्ग के क्षेत्रफल के चतुर्थांश के बराबर होती है। उसके आठवे भाग के बराबर उसमे गर्भ होता है। मन्दिर की उॅचाई पीठिका की चौडाई से दुगुनी या उससे भी अधिक हो सकती है तथा प्रासाद अपने निर्माण स्थल के क्षेत्रफल के आधे अथवा तिहाई से भी ऊॅचा हो सकता है। मन्दिर के चारो ओर एक प्रदक्षिणा मार्ग होना चहिये। यहा मन्दिरो के पॉच भेद बताये गये हैं। वैराज पुष्पक कैलाश मणिक तथा त्रिविष्टिप।[3]

मन्दिरो मे प्रथम और द्वितीय वैराज एव पुष्पक मन्दिर का आकार चौकोर होता है कैलाश मन्दिर गोलाकार तथ मणिक मन्दिर वृत्ताकार तथ पाचवे प्रकार का त्रिविष्टप मन्दिर अष्ट भुजाकार होता है। इन मन्दिरो

1– अग्निपुराण–105/1

2– अग्निपुराण–104/1

3– अग्निपुराण–104/11– वैशज पुष्पकाश्चान्य कैलासो मणिकस्तया
त्रिविष्टपञ्च पञ्चैव मेरू मूर्धनि सस्थित

के भी अनेक भेदो–प्रभेदो का कथन किया गया है। मन्दिर के चूल को उसकी ग्रीवा की आधी ऊँचाई के बराबर ऊँचा और उसके तिहाई मोटा होना चाहिये। द्वारो का निर्माण दिशाओ की ओर ही होना चाहिये। द्वार के ऊपर बनी हुयी सुन्दर आकृतिया चार आठ बारह अगुल की होनी चाहिये। इसी प्रकार पिण्डिका वेदिका आदि के नाप और आकृति बतायी गयी है। साथ ही मन्दिर निर्माण दोष युक्त होने पर किस प्रकार हानिकारक होता है। यह भी कहा गया है। जिस मन्दिर के स्तम्भ मे वेध उत्पन्न हो जाता है उसका निर्माता सदा दास बना रहता है। प्रसाद तथा गृह आदि के भागो मे अवरोध निर्माता को बन्धन मे डालने वाला होता है।

4–देवालय निर्माण का फल

अग्निपुराण के अडतिसवे अध्याय म कहा गया है कि देवालय निर्माण कराने की इच्छा करने वाले भक्त के सहस्र जन्म के पाप नष्ट हो जाते है। जो फल यज्ञो द्वारा भी अप्राप्य है वह देवालय के निर्माण से अनायास ही प्राप्त हो जाते है।[1] मन्दिर निर्माण से समस्त तीर्थो का फल प्राप्त होता है[2] धनी और निर्धन व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार छोट–बड़े तथा एक या अनेक मन्दिर का निर्माण कराने पर फल प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने वाला व्यक्ति की दुगुना फल प्राप्त करता है।[3] किसी भी देवता का मन्दिर बनवाने अथवा प्रतिमा की स्थापना करने वाले व्यक्ति को यम का भय नहीं रहता।

देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरक स न गच्छति कुलाना शतमुद्धृत्य विष्णु लोक नयेन्नर ।।[4]

5–मन्दिरो मे वास्तुकला का स्वरूप

मन्दिरो मे वास्तुकला का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है। जिन भवनो मे देवताओ की अराधना के लिये बनाई गयी मूर्तियाँ स्थापित की गयी वे भवन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हुये। मन्दिर के लिये प्रयुक्त प्रचलित शब्दो–देवालय देवकुल देवागार देवगृह देवायतन देवस्थान से भी यह प्रतीत होत है कि मदिर की कल्पना देवताओ के निवासस्थान के रूप मे की गयी। रामचन्द्रन तथ ग्रेवली महोदय ने मन्दिरो की तुलना मानव शरीर से करते हुये लिखा है कि मन्दिर निर्माण के लिये प्रयुक्त सामग्री पत्थर पहाड लकडी आदि मानव शरीर के अस्थि पजर हैं। उन्होने विभिन्न शैलियो पर आधारित आकार–प्रकारो की तुलना मॉस या शरीर के आकार से तथा मन्दिर के अलकरण हेतु निर्मित कलात्मक आकृतियो की तुलना वस्त्राभूषण से की है। सुन्दर शरीर के जीवित रहने के लिये आत्मा को आवश्यकता है। अत मन्दिरो मे देवताओ की प्राण प्रतिष्ठा नियमानुसार की जाती थी।[5]

1–अग्निपुराण 38/1
2–अग्निपुराण 38/6
3–अग्निपुराण 38/16
4–अग्निपुराण 38/34
5–Histaris India and her Temples PN I

वस्तुत जितनी प्राचीन प्रतिमा पूजा है लगभग उतने ही पुराने मन्दिर भी होने चाहिये। वैदिक साहित्य मे अग्नि सविता वरूण इन्द्र विष्णु सूर्य अदिति पृथ्वी आदि की आराधना का उल्लेख है। यद्यपि इन देवताओ और देवियो की मूर्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नही है तथापि उनके वर्णन से यह कल्पना अवश्य की जा सकती है कि उनका मूर्त रूप भी अवश्य ही रहा होगा। ब्राह्मण तथा सूत्र ग्रन्थो के वर्णनो से भी देव प्रतिमाओ के अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है। परन्तु आज तत्कालीन कोई प्रतिमा प्राप्त न होने के कारण निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। वैदिक साहित्य मे यज्ञ स्थान के वर्णन से यह अनुमान किया जा सकता है कि मन्दिर वास्तु का विकास उसी से हुआ होगा। वैदिक साहित्य के वर्णनानुसार यज्ञवेदी ऊँचे चबूतरे पर बनी होती थी। कही कही उस पर बास का वितान होता था। शतपथ ब्राह्मण मे यज्ञवेदी के चारो ओर चटाई की चाहरदीवारी बनी होने का उल्लेख मिलता है जिसका द्वार पूर्वाभिमुख होता था।[1] आपस्तम्भ श्रौत सूत्र के अनुसार यह चहारदीवारी यज्ञवेदी को बाहरी स्थान से पृथक करती है।[2] चटाई से बनी इस झोपडी को गर्भगृह कहते है।[3]रामायण महाभारत मनुस्मृति गृह्यसूत्र अर्थशास्त्र महाभाष्य आदि परवर्ती साहित्य मे देवगृह देवायतन देवकुल देवस्थान आदि अनेक शब्दो का प्रयोग हुआ है जिससे यह ज्ञात होता है कि उस युग मे देवमन्दिर किसी न किसी रूप के अवश्य बना करते थे।

प्राप्त सामग्रियो के आधार पर ही मन्दिर वास्तु का विकास जाना जा सकता है। इसके अनुसार मन्दिर एक ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित होता है। जिस पर सीढियो से चढकर पहुँचा जाता है। द्वार से प्रवेश करके जिस स्थान पर पहुँचते है वह अर्धमण्डप कहलाता है। इसे डयोढी भी कह सकते हैं। यह ऊपर से ढका हुआ स्तम्भो पर आधारित एक बरामदा सा होता है। अर्धमण्डप से आगे बढकर एक विशाल कक्ष मे प्रविष्ट हुआ जाना है जिसे मण्डप कहते है। कुछ मन्दिरो मे मण्डप के अगल–बगल छोटे–छोटे बरामदे होते हैं। जिनको मिलाकर पूरे मण्डप को महामण्डप कहा जाता है। गर्भगृह एक छोटा सा कक्ष होता है जिसमे देवमूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है। गर्भगृह मे केवल एक ही द्वार होता है जो अन्तराल मे खुलता है। गर्भगृह के अगल बगल और पीछे बरामदा होता है जो अन्तराल और मण्डप से जुडकर गर्भगृह की परिक्रमा के लिये चारो ओर मार्ग सा बना देता है। इसे प्रदक्षिणा पथ कहते है। गर्भगृह के ऊपर एक शिखर होता है। शिखर के ऊपर आमलक तथा उसके ऊपर कलश और ध्वजदण्ड होता है। शिल्प शास्त्र की परम्परानुसार गर्भगृह मे स्थापित मूर्ति के आधार पर मन्दिरों के आकार प्रकार का वर्गीकरण किया जाता है। देव मूर्ति तीन प्रकार की होती है। स्थानक आसन और शयन। स्थान मूर्ति मे देवता

1–शतपथ ब्राहमण– 3/1/22

2–आपस्तम्ब श्रौतसूत्र– 10/5/1

3–तैत्तरीय उपनिषद 6/2/55

की खडी हुयी मुद्रा बनायी जाती है। स्थानक मुद्रा की देव प्रतिमा वाले मन्दिर की छत शिखर युक्त होती है आसन मे देवताओ की बैठी हुई मुद्रा होती है। इस मुद्रा की देवमूर्ति वाले मन्दिरो की छत सपाट या गुम्बदाकार होती है। शयन मे देवता को लेटी हुई मुद्रा मे दिखाया जाता है। इस मुद्रा की देवप्रतिमा वाले मन्दिरो की छत गेहराबदार या कमलपत्र के समान नुकीली गेहराबो वाली होती है।

शिल्पशास्त्र के अनुसार मन्दिरो के शिखर एव बाह्य शैली की दृष्टि से तीन भेद (नागर वेसर और द्रविण) किया जाता है। कुमारस्वामी ने इन्हे उत्तरीय माध्यमिक और दक्षिणी इन तीन भागो मे विभाजित किया है। नागर शैली के मन्दिर उपर से नीचे तक वर्गाकार होते हैं। आधार से शिखर तक मन्दिर के आठ भाग होते है– मूल मसरक जघा कपोत शिखर बाल आमलक और कुम्भ। द्रविण शैली के मन्दिर नीचे वर्गाकार और ऊपर गुम्बदाकार होते है इनके मुख्यद्वार जिन्हे गोपुरम् कहते हैं अत्यधिक ऊचे होते हैं। कभी कभी मन्दिर के शिखर के बराबर ऊचे होते हैं। बेसर शैली मे नागर और द्रविण दोनो शैलियो का मिश्रण है। मन्दिरो का यह विभाजन शास्त्रीय आधार पर किया गया है। सामान्यतया मन्दिरो के दो भेद किया जा सकता है। उत्तरभारतीय (आर्य) तथा (दक्षिण भारतीय) द्रविड। इन मन्दिरो का अन्तर शिखर से सम्बन्धित होता है। उत्तर भारतीय मन्दिरो मे शिखर मीनार की भाति गोल चौकोर तथा अन्य किसी आकार का होता है। जो ऊपर की ओर त्रिकोण की भाति पतला होता चला जाता है। दक्षिण भारतीय मन्दिरो मे शिखर कई मजिलों वाला होता है। ऊपर की मजिल नीचे वाली की अपेक्षा छोटी होती जाती है। जिससे शिखर पिरामिड के आकार का होता जाता है।

<u>6–मूर्तिकला</u>

प्रतिमा को मूर्तिकार की रस अवस्था का प्रकाश कहा गया है, जो केवल मनोरजन की वस्तु न होकर एक साधना भी है। मूर्तिकार अपनी प्रतिमा अपने हृदय के भावनाओ के अनुकूल बनाता है। प्रतिमा का धर्म से प्राचीन काल से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। धर्म ग्रन्थो मे वर्णित देवस्वरूप की प्रतिकृति अस्तर पर अनुतरित किया जाना ही साधारण देवप्रतिमा निर्माण की आधारशिला है। पूजा की परम्परा द्वारा भारत मे एक महान धार्मिक तथा दार्शनिक समन्वय उत्पन्न हुआ। जिसका एक रूप अत्यन्त व्यवहारिक या तथा दूसरी ओर जन साधारण था जो मूर्तिकला के विकास के लिये धर्म के रूप मे कार्य कर रहा था। मूर्तिकला का धार्मिक जीवन मे इससे अधिक और क्या हो सकता है कि भगवान बुद्ध को देवता का मूर्ति रूप दिया गया है और फिर उनकी पूजा बौद्ध धर्म मे भी प्रचिलित हो गयी और अपनी इसी विशेषता के कारण आज वह विश्व का प्रसिद्ध एव महान धर्म बन गया।

भारत ही एक ऐसा देश है जहा के लोग अपने आराध्य को मूर्ति का रूप प्रदान करके उनमे अपने ईश्वर की झलक देखते हैं। हिन्दू धर्म मे तो मूर्ति पूजा प्राचीन काल से ही होती चली आ रही है किन्तु यहा अन्य

सम्प्रदाय के लोग भी उपासना के समय अपने उपास्थ (देव) की प्रतिमा को अपने समक्ष अवश्य राखते है। मूर्तिपूजा का अनेको सन्तो द्वारा विरोध होने पर भी आज भी यह भारतीय धर्म का प्रमुख अग है।

मूर्तिकार सर्वप्रथम अनगढ शिलाखण्डो की धैर्य पूर्वक आराधना करता है तब उसकी इस निष्ठा से मानो वह पाषाण द्रवीभूत होकर सौन्दर्य के रूप मे परिणित हो उठता है। अत उसमे मूर्तिकार की भावना प्राण रूप मे बोल उठती है जो रसिको तथा कलाविदो के लिये रस सचार का द्वार खोलती है और वही कहा की वाणी के अर्थ को प्राप्त करती है। परब्रह्म के दो रूप हैं— 1 इन्द्रिय शून्य निर्गुण रूप इसे प्रकृति कहा गया। 2 सगुण या साकार रूप को विकृति कहा गया। इसी सगुण रूप की पूजा भारत मे मूर्ति के रूप मे की जाती है। साधना का यह रूप अत्यन्त सरल और सक्रिय होने के कारण अधिक लोकप्रिय रहा। इस साकार रूप मे आगे चलकर ऐसा कहा जाता है कि पूर्व युगो मे भगवान स्वय दर्शन देते थे किन्तु कलियुग मे ईश्वर की पूजा प्रतिमा द्वारा ही सम्भव है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु पुराण कालीन भारत मे वर्णित ईश्वर के साकार रूप को मूर्तिकारो तथा कलाकारो ने विभिन्न कलाओ के माध्यम से अनेक प्रतिमाओ के रूप को दर्शाया है।

अग्निपुराण मे वर्णित मूर्तिकला के विषय मे मुख्य रूप से उपासना योग्य देव प्रतिमाओ के लक्षण उनका परिणाम तथा रचना विधियो का ही उल्लेख किया गया है। यद्यपि प्रतिमा मण्डन काश्यप शिल्पम् शिल्परत्नम अशुमत भेदागम सुप्रभेदागम तथा पाच्राचम् आदि प्रतिमाशास्त्र ग्रन्थो मे बड़े विस्तार से देवताओ की विभिन्न प्रतिमाओ और शिवलिग आदि के सागोपाग रचना की विधि दी गयी है किन्तु अग्नि पुराण मे मूर्तिकला का विस्तृत और विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

अग्निपुराण के अडतिसवे अध्याय मे कहा गया है कि प्रतिमा मृत्तिका सिकता काष्ठ ईंटे, पाषाण अष्टधातु स्वर्ण तथा रत्नादि जडित प्रतिमाओ का निर्माण उत्तरोत्तर अत्यधिक पुण्यप्रद एव फलदायी होता है।[1] देव प्रतिमा निर्माण देवालय निर्माण से अधिक फल देने वाला होता है। साथ ही साक्षात् यमराज ने अपने दूतो को यह आदेश दिया है कि प्रतिमा निर्माण तथा पूजा आदि करने वालो को कभी नरक मे नही लाना चाहिये[2] देवमन्दिर तथा प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने वाला सदा भगवान के चरणो निवास करता है।

<u>7—मूर्ति निर्माण हेतु प्रस्तर चयन</u>

अग्निपुराण के 39वे अध्याय मे देव प्रतिमा प्रतिष्ठापन के लिये भूमिशोधण तथा परिग्रह की विधि का स्पष्ट विवेचन किया गयाहै। विभिन्न धातुओ का तथा काष्ठ एव शिला आदि के परीक्षण का विधान भी बताया गया है।
अग्निपुराण के 43वे अध्याय मे इसका विवेचन किया गया है।

1—अग्निपुराण 38/32—33

2—अग्निपुराण 38/36

मृन्मयी दारूधटिता लौहजा रत्नजा तथा।।

शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी सप्रधा स्मृता।

कौसुमी गन्धजा चैव मृण्मयी प्रतिमा तथा।।

तत्कालपूजिताश्चैता सर्वकामफलप्रदा।

पर्वतानामभावे च ग्रहणीयाद् भूगता शिलाम्।

पाण्डुरा ह्यरूणा पीता कष्णाशस्ता तु वर्णिनाम्।।

शिलाया शुक्लरेखयाग्र्या कृष्णाग्र्या सिहहोमत।

कास्यघण्टानिनादा स्यात्पुल्लिङ्ग विस्फुलिङ्ग का।।

दृश्यते मण्डल यस्या सगर्भा ता विवर्चयेत्।।[1]

अत प्रतिमा के लिये चारो वर्णो के लिये क्रमश सफेद लाल पीला पत्थर उत्तम माना गया है। शिला मे यदि सफेद रेखा हो तो वह बहुत ही उत्तम है अगर काली रेखा हो तो वह नरसिह मन्त्र से हवन करने पर उत्तम होती है। जिस शिला मे कोई मण्डल का चिन्ह दिखाई दे उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये।

8—प्रतिमा लक्षण

(1) विष्णू—प्रतिमा लक्षण

पुराणो मे भगवान का विष्णु ही प्रमुख देवता के रूप मे प्रतिष्ठित है अत सर्वप्रथम भगवान हयग्रीव द्वारा भगवान वासुदेव की प्रतिमा का लक्षण बताया गया है। विष्णु को ही उपस्य देव मानने वाले वैष्णव सम्प्रदाय के लोग सम्पूर्ण विश्व को विष्णु की शक्तियो की अभिव्यक्ति मानते हैं। पौराणिक युग से पूर्व वैदिक युग मे ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण श्लोक मे भगवान विष्णु के पराक्रम और प्रभाव का वर्णन है कालान्तर मे उनका यह स्वरूप बढता ही गया और अन्तत सृष्टिकर्ता के रूप मे स्वीकार किये जाने लगे।

भक्ति सम्प्रदाय के रूप मे वैष्णव धर्म का उदय पाणिनि (5वी शताब्दी ईशा पूर्व) के समय मे हो चुका था। वैष्णव धर्म के प्रवर्तक इस धर्म के उपास्य देव भगवान वासुदेव श्री कृष्ण ही माने जाते हैं और इसका प्रचलन मथुरा और उसके आसपास के क्षेत्रो मे ही था। कालान्तर मे वैदिक देवता विष्णु का वासुदेव श्री कृष्ण से तादात्म्य स्थापित किया जाने पर वैष्णव धर्म की सज्ञा दी गयी। तत्पश्चात् कृष्ण विष्णु को नारायण से समानता करके नारायणीय धर्म कहा जाने लगा। नारायण उपासक पाचरात्रिक कहे जाते हैं। अत इनका पाच रात्र धर्म कहा गया। वासुदेव का अनुसरण करने वाले वृष्णि थे जो बाद मे सात्वत कहे गये। अत यह सात्वत धर्म के नाम से

1—अग्निपुराण 38/9—15

भी प्रचिलित हुआ।[1]

वायु–पुराण नारद पाचरात्र वैखानस आगम सात्वत से हिता तथा व्रहतसहिता मे भगवान विष्णु का पाच रूप मे वर्णन किया गया है–

1 पर– यह भगवान विष्णु का सर्वोच्च रूप है।

2 वयूह– व्यूह भगवान विष्णु का अद्भुत रूप है।

3 विभव– विभव भगवान का अवतार रूप है।

4 अन्तर्यामी– यह रूप भगवान का अदृश्य रहकर नियत्रण करने वाला है।

5 अर्चा– यह भगवान विष्णु का विग्रह (मूर्त) रूप है।

अर्चा रूप के ही आधार पर भगवान विष्णु के प्रथम तीन (पर व्यूह विभव) रूप की व्याख्या की जाती है। चतुर्थ अन्तर्यामी रूप तो अदृश्य होने के कारण इस रूप के अन्तर्गत नही आता है। वैखानस आगम मे विष्णु की प्रतिमाओ को मदिर मे पूजार्थ स्थापित होने के कारण इन्हे ध्रुवेवर सज्ञा दी गयी है। विष्णु के पर रूप को ही इनका सर्वोच्च रूप माना गया है। विष्णु को मूर्तियो को चार भागो मे विभाजित किया गया है।[2] यह विभाजन उपासना के उद्देश्य पर आधारित है।

1 योग– निष्काम भाव के आराधको के लिये योगमूर्ति।

2 भोग– सासारिक कामनाओ की पूर्ति हेतु विष्णु की उपासना करने वालो के लिये भोगपूर्ति।

3 वीर– शाति ओर वीरत्व की प्राप्ति के लिये वीरमूर्ति

4 आभिचारिक– तान्त्रिक क्रियाओ की सिद्धि के लिये आभिचारिक मूर्ति का विधान किया गया। इन चारो प्रकार की मुद्राओ के आधार पर पुन तीन तीन भेद किये गये हैं।

1 स्थानक– खडी मुद्रा की मूर्ति को स्थानक प्रतिमान कहते हैं।

2 आसन– बैठी प्रतिमा को आसन प्रतिमाये कहा गया है।

3 शयन– लेटी हुयी प्रतिमा को शयन मुद्रा का नाम दिया गया है।[3]

अग्निपुराण के चौवालिसवे अध्याय मे भगवान हयग्रीव के द्वारा वासुदेवादि प्रतिमा का लक्षण बताया गया है–

1–कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव सत्यदेव–पृ०174

2–कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव–सत्यदेव पृ०174

3–कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव–सत्यदेव पृ०175

वासुदेवदि प्रतिमा लक्षण प्रवदामि ते।[1]

मन्दिर के उत्तर भाग मे शिला को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके शिल्पी के मध्य मे सूत्र के माध्यम से उसका नौ भाग करे औरउस नवे भाग को भी बारह भागो मे विभाजित करने पर एक एक भाग अपने एक अगुल का होता है। कला नेत्र जोकि दो अगुल का गोलक होता है।[2] नौ भाग के एक एक भाग मे विभिन्न अगो की रचना का विधान बताया गया है। भगवान् की प्रतिमा समस्त आभूषणो से विभूषित करनी चाहिये। प्रतिमा–निर्माता को लोक व्यवहार मे दिखाई पडने वाले लक्षणो को दृष्टि मे रखकर प्रतिमा मे उसका निर्माण करना चाहिये। शख चक्र गदा पद्म यह भगवान् वासुदेव के चिन्ह है अत ये उन्ही की प्रतिमा मे होने चाहिये। साथ ही कमल लिये हुये लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये सरस्वती देवी की प्रतिमा होती है। वासुदेव प्रतिमा के लक्षण को समस्त देव प्रतिमाओ मे समाविष्ट किया जाता है। पिण्डिका आदि के लक्षण परिमाण का भी कथन किया गया है। विभिन्न प्रकार के भेदो से युक्त शुभ पिण्डिका भद्रा कही जाती है। लक्ष्मी जी की प्रतिमा हवेली के नाम से आठ ताल (हथेली) की बनाई जाती है। तथा अन्य देवियो की प्रतिमाये भी ऐसी होती है। लक्ष्मी जी अपने दाहिने हाथ मे कमल और बाये हाथ मे विल्व फल से सुशोभित होती है। उनके समीप हाथ मे चवर लिये दो सुन्दर स्त्रिया खडी रहती हैं। बृहत्सहिता के अनुसार विष्णु प्रतिमा मे विष्णु के आठ चार अथवा दो हाथ बनाये जा सकते है। उनके वक्ष पर कौस्तुभ मणी हो वे पीत वस्त्र कुण्डल और रत्नजडित मुकुट से सुशोभित होती है।[3]

वैष्णव धर्म मे वर्णित विष्णु के पाच रूपो मे द्वितीय रूप व्यूह है जो भगवान विष्णु के अद्‌भुत रूप है। भगवान् वासुदेव के उपासको (प्राणियो) मे पाचो वीरो (सकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न साम्ब और अनिरूद्ध) की पूजा का प्रचलन था। बाद मे परमब्रह्म विष्णु के ब्यूह के रूप मे वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरूद्ध को स्वीकार किया गया पाचवे वीर देवता साम्ब को पृथक कर दिया गया। इसी को ब्यूहवाद तथा ब्यूहवादो को चतुर्व्यूह के सिद्धान्त के रूप मे प्रस्तुत किया गया। ज्ञान सिद्धान्त के मूल मे ऐसी शुद्ध और निर्विकार सृष्टि रचना की कल्पना है जो ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल वीर्य और तेज इन छ गुणो से युक्त है। इस सिद्धात के अनुसार सर्वोच्च देव वासुदेव है उनकी इच्छाशक्ति उनकी पत्नी की अथवा लक्ष्मी की मूर्ति और क्रिया शक्ति से सयुक्त होकर छ गुणो को उत्पन्न करती है। इन छ गुणो से तीन ब्यूहो की उत्पत्ति होती है। ज्ञान और बल से सकर्षण ऐश्वर्य और वीर्य से प्रद्युम्न शक्ति और तेज से अनरूिद्ध उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूह मे सर्वोच्च व्यूह वासुदेव छ गुणो

1–अग्निपुराण 44/1

2–अग्निपुराण 44/2–3

3–कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव सत्यदेव–पृ०–175

से युक्त थे तथा अन्य तीनो व्यूहो मे दो–दो ही गुण होते है।[1]

व्यूहो की सख्या मे धीरे धीरे वृद्धि होती गयी और अन्तत चतुर्व्यूह– चतुर्विंशति (चौबीस) व्यूह हो गये विष्णु के ये चौबीस व्यूह– केशव नारायण गोविन्द विष्णु मधुसूदन त्रिविक्रम वामन श्रीधर ऋषिकेश पद्मनाभ दामोदर वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न अनिरूद्ध पुरूषोत्तम अधोक्षज नृषसिह अच्युत उपेन्द्र हरि और कृष्ण है। इन सभी देवताओ की मूर्तिया एक समान हाती है। ये समपाद स्थानक मुद्रा मे चतुर्भुजी मूर्तिया खडी होती है तथा इनके हाथो मे शख चक्र गदा और पद्म होते है परन्तु किसी भी दो मूर्तियो मे आयुधो की स्थिति एक समान नही होती।[2] अग्नि पुराण मे वासुदेव के हाथो मे गदा शख चक्र और पद्म सुशोभित होते हैं। इसी प्रकार पद्मपुराण रूपमथन तथा अन्य देवमूर्ति प्रकरण मे भी कहा गया है। अग्नि पुराण मे भी यह कहा गया है कि विष्णु के इन विभिन्न रूपो की उपासना विभिन्न मनोकामनाओ को पूर्ण करने वाली होती है।[3]

<u>2–शालिग्राम मूर्ति</u>

अग्निपुराण के छियालिसवे अध्याय मे शालग्राम मूर्तियो का लक्षण बताते हुये यह भी कहा गया है कि ये मूर्तिया भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। जो शालग्राम शिला द्वार मे दो चक्र के चिन्हो से सुशोभित और श्वेत वर्ण की हो वह भगवान वासुदेव की शालग्राम मूर्ति कही जाती है इसी प्रकार रक्तवर्ण तथा दो चक्र के चिन्ह से शोभित उत्तम शालग्राम शिला भगवान सकर्षण का श्री विग्रह कही जाती है। काली कान्ति वाली उन्नत नाभि और बडे बड़े छिद्रो से अलकृत भगवान नारायण का स्वरूप कहा जाता है। जिसमे चक्र का स्थूल चिन्ह है। श्याम प्रभा वाली मध्य मे गदा समान रेखा वाली शालग्राम मूर्ति के विष्णु की सज्ञा दी जाती है।[4]

जिस शिला मे तीन चक्र हो वह शालग्राम शिला भगवान अच्युत अथवा त्रिविक्रम सज्ञक है। चार चक्र से मुक्त जनार्दन तथा पाच चक्र वाले को वासुदेव छ चक्र वाले को प्रद्युम्न तथा सात चक्र वाली शालग्राम शिला को सकर्षण कहते हैं। आठ चक्रवाली शिला की पुरूषोत्तम सज्ञा तथा नौ चक्र वाली को नवव्यूह कहते हैं। दस चक्रो से युक्त शालग्राम शिला दशावतार कही जाती है। एकादश द्वादश तथा उससे भी अधिक चक्रो से सुशोभित शालग्राम शिला क्रमश अनिरूद्ध द्वादशा का तथा अनन्त सज्ञक होती है।

<u>3– मत्स्यादि दशावतार प्रतिमा लक्षण–</u>

अग्निपुराण के उनचासवे अध्याय मे मत्स्यादि दशावतार प्रतिमा के लक्षण का वर्णन किया गया है। अवतारवाद भारतीय सस्कृति एव साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता रही है। अवतार शब्द का अर्थ सामान्यत–

1– कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव सत्यदेव–पृ०–170–180

2– कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनव सत्य देव–पृ०180

3– अग्निपुराण 49/1–15

4–अग्निपराण 46/1–4

अवतरण ऊपर से नीचे आना उतरना शरीर धारण करना जन्म ग्रहण करना प्रतिकृति नकल प्रादुर्भाव आदि है। प्राचीन काल से ही भारतीयो के मन मे यह विश्वास है कि पथ्वी पर जब अत्याचार बढ जाता है तब भगवान मनुष्य का उद्धार करने के लिये अवतरित होते है। भगवान विष्णु के तीन प्रकार के अवतारो[1] का वर्णन मिलता है–

1 पूर्णावतार– भगवान विष्णु जब पथ्वी पर जब सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये अवतार ग्रहण करते है तो उसे पूर्णावतार कहा जाता है जैसे राम और कृष्ण का अवतार।

2 आवेशावतार– भगवान विष्णु जब किसी कार्य विशेष को पूर्ण करने के लिये अपनी शक्ति को किसी अन्य व्यक्ति मे प्रविष्ट करा देते हैं तो वह आवेशावतार कहलाता है जैसे मदोन्मत क्षत्रियो के वर्ग को नष्ट करने के लिये भगवान विष्णु ने परशुराम पर अपनी शक्ति आरोपित कर दी थी।

3 अशावतार– भगवान विष्णु के आदेश से जब उनके आयुध शख चक्र गदा पद्म आदि साधु सत के रूप मे जन्म लेते है उसे अशावतार कहते हैं।

महाभारत के नारायणीय अश के एक स्थान पर विष्णु के चार अवतार (वराह वामन नृसिह और वासुदेव) दूसरे स्थान पर छ (परशुराम और राम को जोडकर) तथा तीसरे स्थान पर दस (पूर्व के छ हस कूर्म मत्स्य और कल्क को जोडकर) अवतारो का वर्णन है। वायु पुराण मे एक स्थान पर दस और दूसरे स्थान पर बारह अवतारो का उल्लेख हुआ है।[2]

भागवत पुराण मे विभिन्न स्थानो पर अवतारो की सूचिया दी गयी हैं। मत्स्यादि दशावतार प्रतिलक्षण है। अग्नि पुराण मे भगवान विष्णु का दशावतार वर्णन प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है–

मत्स्याकारस्तु मत्स्य स्यात्कूर्म कूर्माकृतिर्भवेत्।।

नरागो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत्

दक्षिणे वामके शख लक्ष्मीर्वा पद्यमेव वा।।[3]

मत्स्य भगवान की मत्स्य आकृति के समान तथा कूर्म भगवान की मूर्ति कूर्म के आकार की होती है। पृथ्वी का उद्धार करने वाले भगवान वारह की मूर्ति मनुष्याकार की होती है। भगवान नरसिह का मुख खुला हुआ तथा उनके दाहिने जाघ पर दानव हिरण्यकश्यप का वक्ष विदीर्णा करते हुय विराजित होते हैं।[4] छत्र और दण्ड से

1–कला के एकादश सन्दर्भ–अभिनवसत्य देव पृ० 181
2–कला के एकादश सन्दर्भ–पृ०–181
3–अग्निपुराण 49/1–2
4–अग्निपुराण 49/4–5

भगवान वामन सुशोभित होते है तथा भगवान परशुराम के हाथो मे धनुष वाण के अतिरिक्त खडग और फरसे भी सुशोभित होते है। भगवान् रामचन्द्र जी द्विभुज है वे धनुष बाण खड्ग शख से शोभित होते है। हल तथा गदा धारण करने वाले भगवान बलराम जी चतुर्भुज मे शोभायमान होते हैं।[1] भगवान कृष्ण का रूप चतुर्भुजी रूप शख चक्र गदापद्म स सुशोभित होता है। भगवान बुद्ध की प्रतिमा लक्षण बताते हुये कहा गया है–

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरागश्चाम्बरावृत्त।

ऊर्ध्व पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायक ।।[2]

ऊँचे पद्मासन पर बैठे हुये भगवान बुद्ध एक हाथ मे वरद एक हाथ मे अभय मुद्रा मे सुशोभित होते हैं तथा सूती वस्त्रधारी गौरवर्णी और लम्बे कान वाले है।

दसवे अवतार कल्कि भगवान धनुष और तुणीर धारण करने वाले म्लच्छो का सहार करने वाले ब्राह्मण वर्ण के है वे अश्वारूढ चारो भुजाओ मे खडग शख गदा चक्र से शोभित होते है।

4–त्रिदेवप्रतिमा लक्षण–

भगवान वासुदेव की मूर्ति को मुख्य पहचान है उनका ऊपरी दाहिने हाथ मे उत्तम चक्र विराजमान होता है उसी के एक तरफ भगवान शिवजी तथा दूसरी ओर भगवान ब्रह्म जी सुशोभित होते हैं। वे द्विभुज और चतुर्भुज दोनो रूपवाले तथा शख एव वरद मुद्रा धारण करने वाले है।

5– प्रद्युम्न प्रतिमा लक्षण

प्रद्युम्न की मूर्ति द्विभुज और चर्तुभुज दोनो रूपोवाली तथा शख चक्रगदा और धनुष वाण धारण किये हुये होती है। भगवान नारायण के समान अनिरूद्ध जी की प्रतिमा भी चर्तुभुजी होती है।

6– ब्रह्मा मूर्ति लक्षण–

ब्रह्माजी की मूर्ति का मुख्य लक्षण है उनकी लम्बी दाढी सिर पर जटा चतुर्मुरकी और चतुर्भुजी तथा वह विशाल उदर मण्डल से युक्त हसासन पर आरूढ होते हैं।[3] भगवान विष्णु का विश्वरूप बीस भुजाओ से सुशोभित होता है वे चक्र खडग मूसल अकुश पटिटश मुग्दर पाश शक्ति तोनर हल फरसा दण्ड छुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। दाहिने चर्तुभुजी ब्रह्म और बाये तरफ शिवजी विराजित होते हैं।

6– देवी प्रतिमा लक्षण

शक्ति सप्रदाय का शैवधर्म से गहरा सम्बन्ध है। उमा को दुर्गा का नाम दिया गया है और उन्हे शिवजी

1–अग्निपुराण 49/6–7
2–अग्निपुराण 49/8
3–अग्निपुराण 49/14

की अर्धांगिनी बताया गया है। शिव की अर्द्धांगिनी के रूप मे उमा के इस सन्दर्भ मे परितोष द्विवेदी महोदय का कथन है कि–

माहेश्वरी महादेवी महाकाली शिव तथा शिवनारी कहा जाता है–

ब्रह्मा जी के द्वारा प्रजापतियो की रक्षा करने के पश्चात् स्त्री तत्व या नारी तत्व से शून्य सृष्टि जब आगे न बढ सकी तो स्त्री पुरूष तत्व देवी तथा देवता के रूप मे प्रकट हुये। तब देवी तत्व से मातृ सत्ता की स्थापना हुयी। शक्ति को ही प्रमुख मानने वाले शक्ति सम्प्रदाय के अतिरिक्त वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय मे भी शक्ति की किसी न किसी रूप मे उपासना की जाती है। वैदिक सस्कृति मे दैवी शक्ति की उपासना से इसकी महत्ता ज्ञात होती है। ऋग्वेद को वाक सूक्त मे पूरे के पूरे सूक्त मे देवी महत्ता का ही वर्णन प्राप्त होता है। वाजसनेयी सहिता तैत्तरीय ब्राम्ह्मण तथा अरण्यक मे अम्बिका उमा दुर्गा काली आदि का उल्लेख होता है। महाभारत के एक स्रोत मे दुर्गा वन्दना की गयी है। मार्कण्डेय पुराण तथा अन्य पुराणो मे भी दुर्गा उमा पार्वती आदि नामो से पुकारा गया है। वराह पुराण मे विष्णु जी को भगवान शकर तथा लक्ष्मी जी को पार्वती कहा गया है–[1]

या श्री सागिरिजा प्रोक्तायो हरि स त्रिलोचन।

अन्य पुराणो के अनुसार विष्णु जी जब रौद्र रूप मे प्रकट होते हैं तब लक्ष्मी जी पार्वती बनकर शिव जी के साथ विराजमान होती है। विष्णु पुराण मे भी विष्णु का शिवजी तथा लक्ष्मी जी का पार्वती रूप बताया गया है। गौरी अथवा पर्वती के रूप मे भी विष्णु रूपी शिव का शक्ति के साथ सम्बन्ध निम्न पक्ति से भी ज्ञात होता है– शकरो भगवान च्छोरिगौरी लक्ष्मी द्विजोतम।

समस्त देवियॉ एक होकर शक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। देवी शक्ति का अवतार है। शक्ति सम्प्रदाय का यही मुख्य आधार है। शक्ति तत्व भारतीय ब्राह्मण धर्म तथा सम्प्रदाय मे बराबर बने हुये है परन्तु प्रत्येक सम्प्रदाय मे इनका क्षेत्र स्थान तथा सत्ता अलग–अलग रूप मे देखने को मिलती है। जैसे कि त्रिदेवो की सत्तर के साथ त्रिदेवियो की सत्ता भी स्वीकार की गयी है। जिसमे ब्रह्मा जी का सावित्री सरस्वती या गायत्री जी से सम्बन्ध है तथा विष्णु जी का लक्ष्मी जी से और शिवजी का दुर्गा या पार्वती जी से सम्बन्ध है।

दुर्गा प्रतिमा लक्षण–

दुर्गा देवी की प्रतिमाये सौम्य एव उग्र दो रूपो मे देखने को मिलती है। जिसमे सौम्य प्रतिमा देवताओ के साथ तथ उग्र प्रतिमाये अष्टादश, द्वादश तथा अष्टादश भुजाओ वाली दृष्टिगत होती है। देवी की प्रतिमापूजा अनेक रूपो मे होती है। इनको सरस्वती चण्डिका गौरी महालक्ष्मी ललिता आदि नामो से पुकारा जाता है।

1– वराह पुराण– 215/17–19

अग्निपुराण के पच्चासवे अध्याय मे चण्डी आदि देवी प्रतिमाओ का लक्षण बताया गया है जिससे चण्डी देवी को बीस भुजाओ वाली बताया गया है। वे अपने दाहिने हाथो मे शूल खडग शक्ति चक्रपाश खेट आयुध अभय डमरू और शक्ति धारण करती है और बाये हाथो मे नागपाश खेटक कुठार अकुश पाश घटा आयुध गदा दर्पण और मुग्दर लिये होती हैं। उनके चरणो के नीचे कटे हुये मस्तक वाला महिष जो हाथो मे शस्त्र उठाये है उसकी ग्रीवा से एक पुरूष प्रकट हो गया हो जो अत्यन्त कुपित हो। वह महिषासुर खूब कसकर पाश से बाधा गया हो। वह देवी का दाहिना पैर सिह पर और बाया पैर महिषासुर के शरीर पर शोभायमान रहता है। देवी तीन नेत्र धारण करने वाली तथा शस्त्रो से सुसज्जित होकर शत्रुओ का मान मर्दन करने वाली है। उनकी प्रतिमा नवकमल दल वाली पीठिका परसुशोभित होती है।[1]

दुर्गा देवी की प्रतिमा अठारह भुजाओ वाली होती है। वे दाहिने हाथो मे मुण्ड खेटक दर्पण तर्जनी धनुष ध्वज डमरू ढाल औरपाश लिये रहती है तथा बाये हाथो मे शक्ति मुग्दर शूल वज्र खड्ग अकुश वाण चक्र और शलाका लिये रहती है। सोलह भुजाओ वाली दुर्गा देवी की प्रतिमा भी इन्ही आयुधो से सुशोभित होती है।

रूद्रचन्डा आदि नौ दुर्गाये इस प्रकार हैं— रूद्र चण्डा प्रचण्डा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती चण्डरूप अतिचण्डिका और उग्रचण्डा। ये क्रमश गोरोचना के समान पीली अरूणवर्णा काली नीली शुक्लपर्णा धूम्रवर्णा पीतवर्णा श्वेतवर्णा वाली है। पूर्व आदि आठ दिशाओ मे इनकी पूजा होती है। नवीं उग्रचण्डा की पूजा मध्य मे होती है। ये नौ देविया सिहवाहिनी है तथा महिषासुर के कण्ठ से प्रकट हुए शस्त्रधारी पुरूष का केश अपनी मुट्ठी मे पकडे रहती है। आलीढा आकृति की नौ दुर्गा प्रतिमाये पुत्र पौत्र आदि की वृद्धि के लिये पूजित होती हैं। गौरी ही चण्डिका आदि के रूप मे पूजित होती है।[2] यही हाथो मे कुण्डी गदा और अग्नि धारण करके रम्भा के नाम से पूजी जाती है। ये ही वन मे सिद्धा कही गयी हैं। इस अवस्था मे वे अग्नि से रहित होती हैं। बाये हाथो मे गर्दन सहित मुण्ड और और दर्पण तथा दाहिने हाथो मे कलागुलि और सौभाग्य की गदा धारण करने वाली देवी ललिता भी यही है।[3]

लक्ष्मी देवी प्रतिमा

लक्ष्मी देवी जीं बाये हाथ मे श्रीफल तथा दाहिने हाथ में कमल लिये रहती है सरस्वती देवी दो हाथो मे वीणा तथा दो हाथो मे पुस्तक और अक्षमाला धारण करती है। गगा जी श्वेतवर्ण वाली तथा मकर पर आरूढ

1—अग्निपुराण—50/1—6
2—अग्निपुराण—60/7—10
3—अग्निपुराण 60/10—15

होती है। वे एक हाथ मे कमल तथा दूसरे हाथ मे कलश लिये रहती हैं। यमुना देवी कच्छपारूढ तथा श्यामवर्णा है वे दोनो हाथो मे कलश धारण करती है।[1] श्वेतवर्ण वाले तुम्बुरू की प्रतिमा वीणा धारण किये हुये बनायी जाती है।

वृषभारूढ भगवान शकर जी त्रिशूल धारण करके मातृकाओ के आगे चलने वाले कहे गये हैं। ब्रह्म–प्रिया सावित्री की श्वेतवर्ण वाली एव चर्तुमुखी प्रतिमा होती है। वे दाहिने हाथ मे स्रुक व अक्षमाला धारण करती है तथा बाये हाथ मे कुशा और अक्षपात्र लिये रहती हैं। वे हस वाहिनी है। शिव–प्रिया पार्वती वृषभवाहिनी है। उनके दाहिने हाथो मे धनुषवाण और बाये हाथो मे चक्र वाण सुशोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मयूर वाहिनी है वह द्विभुजी एव रक्तवर्ण वाली है उनक हाथो मे शक्ति शोभित होते हैं।[2]

<u>लक्ष्मी</u>– लक्ष्मी देवी कमलासनारूढ होती है। वे अपने दाहिने हाथ मे चक्र और शख धारण करती है तथा बाये हाथो मे गदा एव कमल सुशोभित होते हैं।

<u>वाराही</u>– वाराही शक्ति भैसे पर आरूढ होती है। वे अपने हाथो मे दण्ड शख चक्र और गदा धारण करती हैं।

<u>एन्द्री</u>– ऐन्द्री शक्ति एरावत पर विराजित हाती है। वे सहस्र नेत्रों वाली तथा हाथो मे वज्र धारण करने वाली है[1] एन्द्री देवी की उपासना सिद्धिदायी कही गयी है।

<u>चामुण्डा</u>– चामुण्डा देवी की आखे वृक्ष के खोखले के समान गहरी तथा त्रिनेत्री है। उनका शरीर मासहीन अस्थि पजर मात्र ही दिखायी देता है। वे अपने बाये हाथ मे कपाल और पाट्टिश धारण करती है तथा बाये हाथो मे शूल और कटार शोभित होते हैं। वे शवपर विराजमान होकर हड्डियो का आभूषण धारण करती हैं।[3]

वीरभद्र– ये चारभुजाधारी है। मातृगणो के मध्य वृषआरूढ रहते है।

<u>गौरी</u>– गौरीजी की दो भुजाये होती है तथा वे त्रिनेत्री है। एक हाथ मे त्रिशूल और दूसरे हाथ मे दर्पण लिये रहती है

<u>ललिता</u>– ललिता देवी की प्रतिमा चतुर्भुजी होती है तथा उनके हाथो मे त्रिशूल गगरी कमण्डल और वरद मुद्रा रहती है। वे पद्मासना हैं तथा स्कन्दगणो से सुशोभित होती है।

<u>चण्डिका</u>– चण्डिका देवी दस भुजाओ वाली है तथा सिह पर आरूढ होकर महिषासुर पर प्रहार करती है। उनके हाथो मे नागपाश चर्म अकुश कुठार और धनुष सुशोभित होते हैं।

1–अग्निपुराण 60/15–16

2–अग्निपुराण 50/18–19

3–अग्निपुराण 50/20–22

8—लिङ्गादि प्रतिमा लक्षण—

भारत मे अत्यन्त प्राचीन काल मे ही प्रकृति की प्रजनन शक्ति की उपासना के लिये लिङ्ग पूजा का उद्भव एव विकास हुआ। पुराणो मे लिङ्ग के प्रतीकात्मक महत्व की विवेचना प्राप्त होती है जिसमे यह कहा गया है कि शिव लिङ्ग की पीठिका महादेवी तथा ऊर्ध्व भाग शिव का प्रतीक है। इस प्रकार शिवलिङ्ग परमपुरूष और प्रकृति की सृजनात्मक शक्ति को स्पष्ट करता है।

अग्नि पुराण के तिरपनवे तथा चौवनवे अध्याय मे लिङ्ग तथा उसकी पीठिका के विषय मे विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसके निर्माण से प्राप्त होने वाले फलो का भी विवेचन किया गया है। इसमे लिङ्ग के तीन भाग बताये गये हैं प्रथम भाग ब्रह्म भाग द्वितीय विष्णु भाग और तृतीय शिव भाग कहलाता है। यह शिव भाग शेष दो भागो से बढ़ा होता है। यह वर्धमान कहलाता है। विष्णु भाग अष्टभुजा रूप मे बनाया जाता है।

चल तथा अचल लिङ्ग के भेद से लिङ्ग दो प्रकार का होता है। चल लिङ्ग को भक्त अपने पास रखते है। तथा अचल लिङ्ग की स्थापना देवालयो मे की जाती है। चललिङ्ग का प्रमाण कम से कम एक अगुल से पाच अगुल तक होना चाहिये और छ अगुल से दश अगुल तक मध्यमान तथा ग्यारह से पन्द्रह अगुल तक का ज्येष्ठमान कहा जाता है। अचल लिङ्ग का निर्माण तीन परिमाणों का होता है जिन्हे क्रमश द्वारमान गर्भमान तथा हस्तमान कहा जाता है। इन्ही परिमाणो के आधार पर ही इन लिङ्गो के तीन नाम है— भागेश जलेश और देवेश।[1]

अग्निपुराण मे इनके निर्माण के पदार्थ का विस्तार से वर्णन किया गया है— जिसमे नमक घी वस्त्र मिट्टी (पक्व अपक्व दो प्रकार के) काष्ठ प्रस्तर भौतिक लौह स्वर्ण रजत तॉबा पीतल रागा रस (पारद) आदि का बना होता है। जो बुद्धिवर्धक सम्पत्ति वर्धक पुष्पप्रद भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले होते है। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं। तथा अधिक फल देने वाले कहे गये हैं। सिद्ध आदि के द्वारा स्थापित हुये तथा स्वयभू लिङ्ग का माप ही होता शिव लिङ्ग के पीठ और प्रसाद की कल्पना इच्छानुसार की गयी है। शिवलिङ्गो के विभिन्न भेद—प्रभेदो का विस्तार से वर्णन किया गया है। परिमाणो और मनोरथो के अनुसार इनका वर्गीकरण किया गया है।[2] कुल पन्द्रह हजार चार सौ शिव लिङ्ग कहे गये हैं। इसी प्रकार आठ अगुल का लिङ्ग भी एकागुल मान हस्तमान और गर्भमान के अनुसार है भेदो से युक्त होता है। इनके कोणो का छेदन कोणस्थ और अर्धकोणस्थ सूत्रो द्वारा किया जाता है। लिङ्ग के मध्यभाग मे विस्तार को ही प्रमाण मानकर उसके अनुसार ऊर्ध्व और निम्न भागो की स्थापना करनी चाहिये। मध्यम भाग से ऊपर अष्ट कोण तथा षोडश कोण वाला विभाग शिवाश कहलाता है। लिङ का पाद से जाघ पर्यन्त भाग ब्रह्म भाग तथा जाघ से नाभि पर्यन्त का भाग विष्णु भाग (अश) माना जाता

1—अग्निपुराण 54/20–21

2—अग्निपुराण 54/5–6

है। लिङ्ग का मूर्धान्त भूत भागेश्वर का नाभि पर्यन्त का भाग विष्णु भाग (अश) माना जाता है लिङ्ग का मूर्धान्त भूत भागेश्वर का होता है।[1] सभी लिङ्गो का मुखत्रपुष अथवा कुक्कुट के आकार का होता है।[2]

9–विनायक गणेश

गाणपत्य सम्प्रदाय के प्रमुख देव विनायक गणेश है जिनकी पूजा सर्वप्रथम की जाती है। इनकी पूजा के बिना कोई भी सस्कार अथवा पूजा अधूरी मानी जाती है। स्वस्तिक इनका प्रतीक है तथा मूषक वाहन है। भगवान शकर ने अम्बासुत गणेश के गणाधिपति नियुक्त किया था। अत ये गणपति भी कहे जाते है गणपति का शाब्दिक अर्थ है गुणो के आधिपति।[3] गणपति के विभिन्न नामो मे उनकी मूर्ति लक्षण विद्यमान है। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे गणेश जी के आठ नामो का निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है।

1 गणेश– ग ज्ञान ण कोश तथा मोक्ष का ईश्वर।

2 एकदन्त– एक ब्रह्म दन्त शक्ति जो सबसे अधिक शक्तिशाली।

3 हेरम्ब– हे दीनार्थ वाचक रम्ब–पालक–दीनो का पालन करने वाला।

4 विघ्ननाश– विघ्नो को नष्ट करने वाला।

5 लम्बोदर– विश्व व्यापकता को धारण करने के कारण लम्बोदर।

6 शूर्पकर्ण– विघ्नो का विनाश कर समृद्धि और ज्ञान के दाता।

7 गजानन– गजमुखी।

8 महाग्रज– जो स्कन्द कुमार से पहले जन्मे और प्रथम पूज्य है।

इस प्रकार के सभी नामो के अनुरूप इनकी प्रतिमाये प्राप्त होती है। शिल्प शास्त्रो मे गणेश जी की प्रतिमा का लक्षण बताते हुये कहा गया है– प्रथमाधिपो गजमुख प्रलम्ब जटार

कुठारधारीस्ताप्। एक विषारणो विप्रन्मूल्फ कन्दम्।[4]

अग्निपुराण मे विनायक गणेश जी की प्रतिमा का लक्षण बताते हुये कहा गया है।

विनायको नराकारो वृहत्कुक्षिर्गजानमन

वृहच्छुण्डो ह्युयवीती मुख सप्तकल भवेत्।[5]

अर्थात विनायक गणेश जी का शरीर मनुष्य की भाति किन्तु बडे पेट वाले मुख हाथी के समान है लम्बी

1–अग्निपुराण– 54/31–34

2–अग्निपुराण– 54/48

3–प्रतिमा विज्ञान–पृ०–201

4–प्रतिमा विज्ञान–पृ०–202

5–अग्निपुराण–50/23

सूड वाले तथा यज्ञोपवीत धारण करने वाले हैं उनके मुख की चौडाई सात कला तथा सूड छत्तीस अगुल लम्बी है। उनकी नाभि और ऊरू बारह अगुल के तथा जाघ और पैरा का भी यही माप है। ये दाहिने हाथो मे गजदण्त और फरसा धारणा करते है तथा बाये हाथो मे लडडू तथा उत्पल लिये रहते है।

10– कुमार कार्तिकेय प्रतिमा–

कुमार कार्तिकेय प्रख्यात पौराणिक कथाओ के अनुसार तारक नामक राक्षस को मारने के लिये शिव पार्वती के पुत्र के रूप मे कार्तिकेय स्कन्द का जम्म हुआ था। शिव परिवार मे भगवान गणेश के भ्राता कर्तिकेय देवताओ के सेनापति थे। अत इन्हे सैनिक देवता के अनेक नाम तथा उन नामो के अनुरूप प्रतिमाओ के लक्षण दिया गया है। उनमे कुछ प्रमुख प्रतिमाये निम्न लिखित है–

1 कार्तिकेय 2 षडमुख (षडानन) 3 शस्त्रवरणभव 4 सेनानी 5 तारकजित 6 कॉज्यमेता 7 गगापुत्र 8 गुह 9 अनलभू 10 स्कन्द 11 स्वामिनाथा शिल्प शास्त्रो मे स्कन्द कार्तिकेय की प्रतिमा के दो प्रमुख लक्षणो मे एकमत है– षडानन तथा शक्तिधर। इन्हे ते जस्वी रक्ताम्बर अलिन प्रभा के समान प्रदीपकर रूप कामदेव के समान रूपवान प्रिय दर्शन प्रसन्नवदन चित्रमुकुट अनेक प्रकार के आभूषणो को धारण किय हुये एक अथवा षडानन होना चाहिए।[1]

अग्नि पुराण के पचासवे अध्याय स्कन्द मे कार्तिकेय की प्रतिमाक लक्षण इस प्रकार दिया है–

सुमुखी च विशालाक्षी पार्श्व स्कन्दोमयूरग।[2]

स्वामी साखोविशाखश्च द्विभुजो बालरूप धृक।[3]

अर्थात स्कन्दस्वामी मयूर पर आसीन है। उनके दोनो ओर सुमुखी तथा विशालाक्षी मातृका तथा शाख और विशाख दो अनुज खडे है। उनकी दो भुजाये हैं वे बाल रूप धारी है तथा उनके दाहिने हाथ मे शक्ति तथा बाये हाथ मे कुक्कुट सुशोभित होता है।

11–सूर्य प्रतिमा

अत्यन्त प्राचीन काल मे ही मनुष्य ने पूरब से उदित होते हुये सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्य को देवत्व प्रदान किया। सूर्य पूजा की परम्परा प्राय विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताओ मे प्राप्त होती है। वैदिक काल मे सविता पूषबामित्र आदि को सूर्य से सम्बन्धित बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण मे बारह आदित्यो (द्वादशादित्य) का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद मे सूर्य को सात घोडे वाले रथ पर सवार होकर भ्रमण करने

1–प्रतिमा विज्ञान पृ०–207

2–अग्निपुराण–50/27

3–अग्निपुराण–50/28

वाला कहा गया है। इस युग मे सूर्य प्रतिमा का निर्माण नही हुआ। रामायण महाभारत मे तो सूर्य मानव रूप धारण किये हुये वर्णित हुये है। कालान्त मे सूर्य उपासको का सौर सम्प्रदाय–अस्तित्व मे आया।

सूर्य प्रतिमा के निर्माण विधान के दो रूप प्राप्त होते है। प्रथम रूप मे उदीच्य वेशभूषा बौर द्वितीय रूप मे दक्षिणी वेशभूषा मे सूर्य देव का वर्णन किया गया है। उदीचय वेशधारी उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय सूर्य मर्तियो मे मुख्य अन्तर यह है कि उत्तरभारतीय मूर्तियो पर विदेशी प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। ये मूर्तिया प्राय पूर्ण रूप से ढकी होती है। इसके विपरीत दक्षिण भारतीय सूर्य प्रतिमाये विदेशी तत्वो से रहित तथा सूर्य देव के अगो को स्पष्ट दर्शाती है।

पुराणो मे सूर्य प्रतिमा का विस्तृत निर्देश प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे उनकी मूर्ति रक्तवर्ण की श्मश्रु युक्त–चतुर्भुजी समस्त आभूषणो कवच तथा अव्यग से सुशोभित दो हाथो मे पुष्पहार के समान रश्मियो तथा वाये पार्श्व मे चर्म और शूलदण्ड लिये दण्ड और दाये मे पत्र तथा लेखनी लिये पिङल की मूर्तिया सहित बताया गया है। अग्नि पुराण के इक्यावनवे अध्याय मे सूर्य देवतादि गृहदेवताओ की प्रतिमा का लक्षण दिया गया है जिसमे सूर्य की प्रतिमा सात अश्वो से जुते हुये एक पहिये वाले रथ मे विराजमान बतायी गयी है। वे अपने दोनो हाथो मे कमल धारण किये हुये है। उनके दाहिने पार्श्व मे दवात और कलाम लिये दण्डी खडे है तथा बाये पार्श्व मे दण्ड लिये द्वार पर पिङ्गल विद्यमान है। भगवान सूर्य देव के दोनो ओर चँवर लिये राज्ञी तथा निष्प्रभा खडी हैं।[1] अन्य सूर्य प्रतिमाओ मे घोडे पर चढे हुये एक मात्र सूर्य की ही प्रतिमा बनानी चाहिए। इसी प्रकार का वर्णन मत्स्य भविष्यादि अन्य पुराणो मे भी प्राप्त होता है।

उत्तर वैदिक काल से द्वादशादित्यो की कल्पना द्वादश माह के अधिष्ठाता देवता के रूप मे होने लगी थी। अग्नि पुराण मे सूर्य की प्रतिमा लक्षण के साथ इन (द्वादशादित्यो) की प्रतिमा का भी लक्षण दिया गया है– जिसमे कहा गया है कि सर्वप्रथम बारह दलो का एक कमल चक्र बनाना चाहिये। उसमे सूर्य आर्यमा आदि द्वादशादित्यो को क्रमश बारह दलो मे स्थापित करना चाहिए। इन द्वादशादित्यो की प्रतिमाये चतुर्भुजी तथा मुग्दर शूल चक्र एव कमल धारण किये हुये रहती हैं। इन द्वादशादित्यो के नाम क्रमश इस प्रकार हैं–

वरूण सूर्य सहस्राशु धाता तपन सविता मस्तिक रवि पर्जन्य स्रष्टा मित्र और विष्णु है। ये मेष आदि बारह राशियो मे स्थित होकर जगत् को प्रकाशित करते हैं इनकी अगकान्ति क्रमश काली लाल कुछलाल पीली पाण्डु श्वेत कपिल पीला तोते के समान हरा धवल शुभ्र और नीला है।[2]

1–अग्निपुराण 51/1–7

2–अग्निपुराण 51/8–10

12–ग्रहदेवताओं की प्रतिमा–

अग्निपुराण मे द्वादशादित्यो के आतिरिक्त अन्य ग्रह देवताओ की प्रतिमा का लक्षण भी दिया गया है। जिसमे मगल ग्रह की प्रतिमा कुण्डिका और अक्षमाला से सुशोभित होती है। बृहस्पति भी कुण्डी और अक्षमाला धारण करते है। शुक्रग्रह के हाथो मे भी कुण्डिका और अक्षमाला सुशोभित होते हैं। शनिग्रह की प्रतिमा किङिकणी सूत्र से सुशोभित होती है। राहु अर्धचन्द्रधारी है तथा केतु के हाथो मे खड्ग और दीपक सुशोभित होता है। अनन्त तक्षक कर्कोटक पद्म महापद्म शख और कुलिक आदि की प्रतिमाये सूत्रधारी होती हैं। फन ही इनका मुख है। ये सब महान प्रभापुन्ज से प्रकाशित होते है। इन्द्र देव की प्रतिमा हाथी पर आसीन होती है तथा वज्र धारण किये होती है। अग्निदेव भैसे पर सवार होते हैं तथा दण्ड्या धारी होते हैं। निऋति खड्गधारी तथा मनुष्य पर आरूढ होते है। वरूण देव मकर पर आसीन होते हैं तथा पाश धारण करते हैं। वायु देव की प्रतिमा मृगारूढ़ तथा वज्रधारण करने वाली है। कुबेर मेढ पर आसीन होते हैं। तथा गदा धारण करते हैं। समस्त लोकपाल दो भुजाओ वाले है। विश्वकर्मा को अक्षसूत्र धारण करने वाला कहा गया है। हनुमान जी के हाथो मे वज्र सुशोभित होता है तथा वे अपने दोनो पैरो से असुर के दबाये रहते हैं। किन्नरो की मूर्तिया वीणा धारी लेती है विद्याधरो की प्रतिमा

मालाधारी तथा आकाश मे स्थित दिखायी जाती है।[1]

13–चौसठ योगिनि प्रतिमा–

अग्निपुराण के बावनवे अध्याय मे चौसठ योगिनियो की मूर्तियो का लक्षण बताते हुये सर्वप्रथम उनका नामोल्लेख इस प्रकार किया जाता है–

1 अक्षोभ्या 2 रूक्षकर्णी 3 राक्षसी 4 क्षपणा 5 क्षमा 6 पिङ्गलाक्षी 7 अक्षमा 8 क्षेमा 9 इला 10 नीलालया 11 लीला 12 रक्ता 13 बलाकेशी 14 लालसा 15 विमला 16 दुर्गा (अथवा हुताशा) 17 विशालाक्षी 18 ह्रकारा 19 अश्वमुखी 20 महाकूरा 21 क्रोधना 22 भयकरी 23 महानना 24 सर्वज्ञा 25 तरला 26 तारा 27 ऋग्वेदा 28 ह्यानना 29 सारा 30 रससगाही 31 शबरा 32 तालजधा 33 रक्ताक्षी 34 सुप्रसिद्धा 35 विघुज्जिह्वा 36 करगिणी 37 मेघनादा 38 प्रचण्डा 39 उग्रा 40 कालकर्णी 41 वरप्रदा 42 चण्डा 43 चण्डवती 44 प्रपञ्चा 45 प्रलयान्तिका 46 शिशुमुखी 47 पिशाची 48 पिसितासवलोलुपा 49 धमनी 50 तपनी 51 रागिणी 52 विकृतवदना 53 वायुवेगा 54 वृहतकुक्षि 55 विकृता 56 विश्वरूपिका 57 यमजिह्वा 58 जयन्ती 59 दुर्जया 60 जयन्तिका 61 विडाली 62 रेवती 63 पूतना 64 विजयान्तिका।[2]

1–अग्निपुराण 51/11–16
2–अग्निपुराण–52/1–8

ये सभी आठ हाथो वाली अथवा चार हाथो वाली अपनी इच्छानुसार शरीर को धारण करने वाली तथा समस्त सिद्धियो को प्रदान करने वाली कही गयी हैं। भैरव की मूर्ति का लक्षण बताते हुये कहा गया है कि ये बारह भुजाओ वाले है इनके दात मुख से बाहर निकले है। भैरव अपने सिर पर जटा और चन्द्रमा को धारण करते है। एक तरफ की भुजाओ मे अकुश कुठार वाण और अभय तथा दूसरी ओर धनुष त्रिशूल सटवाग पाश और बरमुद्रा धारण करते है। शेष दो हाथो म गन्जर्म धारण करते है। ये सर्पधारी है तथा कभी कभी इनकी आकृति पचमुखी होती है।

9—पीठिका लक्षण

अनन्तन प्रतिमा की पीठिका (पिण्डिका) के सम्बन्ध मे अग्निपुराण के पचपनवे अध्याय मे लक्षण दिया गया है। जिसके अनुसार पीठिका लम्बाई मे प्रतिमा के बराबर होती है। और चौडाई उसकी आधी होती है। उसके विस्तार के चौथाई भाग से जल के निकलने का मार्ग बनाना चाहिये। पिण्डिका के एक तिहाई भाग के बराबर वह जल मार्ग हो। ऊँचाई और लम्बाई के आधे से अथवा तिहाई के बराबर पीठिका और उसकी तिहाई के बराबर मेखला बनानी चाहिये।[1] पिण्डिका के परिमाण के बराबर प्रतिमा की लम्बाई तथा उसी के बराबर ईश्वर की प्रतिमा परिमाण जानकर सूत्र बनाना चाहिये।

सोलह भाग की सख्या के बराबर ऊँचाई अधोभाग के बारह के बराबर और तीन भाग के बराबर कण्ड बनाना चाहिये। प्रतिष्ठा निर्गम और पटिटका एक एक भाग के बराबर बनाना चाहिये।[2]

समस्त देवताओ की प्रतिमा के लिये विष्णु की प्रतिमा का परिमाण तथा समस्त देवियो के लिये लक्ष्मी की प्रतिमा का परिमाण उपयुक्त होता है। प्रसाद के द्वार के मान के बराबर प्रतिमा का द्वार होता है। प्रतिमा के चारो ओर हाथी और ब्याल से युक्त प्रभामण्डल अवश्य रहना चाहिए। इन देव और देवी प्रतिमाओ के दर्शन पूजन निर्माण एव प्रतिष्ठापन समस्त मनुष्यो के लिये भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला होता है।

1—अग्निपुराण—52 / 2

2—अग्निपुराण—55 / 5—6

सप्तम अध्याय

अग्निपुराण में वर्णित शिक्षा एवं साहित्य

अग्नि पुराण मे वर्णित शिक्षा एव साहित्य

1–शिक्षा–

मानव जीवन मे शिक्षा का विशेष महत्व है। अभ्युदय (लौकिक उन्नति) और नि श्रेयस्–सिद्धि (मोक्ष प्राप्ति) के लिये शिक्षा की विशेष आवश्यकता होती है। इसीलिए भारत मे बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए अर्थात् मानव जीवन के पूर्णतया सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा का दिव्य विधान था जिसका प्रारम्भ शिशु की गर्भावस्था से ही हो जाता था। इसीलिए गर्भिणी स्त्री का जीवन सयम नियम और व्रत पर आधारित था। जन्म के बाद भी शिशु दृष्टि और श्रवण तथा अनुकरण द्वारा ही सीखता है। विप्र का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा स्वाध्याय और अध्ययन मे ही बीतता था।

शिक्षा का उत्कर्ष वेद ज्ञान से ही परिलक्षित होता है। विद्या के दो रूप थे– अपरा विद्या और पराविद्या अग्नि पुराण को विद्यासार पुराण कहा गया है। जिसका प्रारम्भ इन विद्याओ के उल्लेख से ही होता है। विद्या और विनय तथा शील–आचरण भारतीय शिक्षा के प्रमुख स्तम्भ हैं। सर्वप्रथम बालक को शौच आचार की ही शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा केन्द्रो का वातावरण भी सरलता सयम शीलता सत्यता और अनुशासन तथा सेवाभाव पर आधारित था। ब्रह्मचर्य भारतीय शिक्षा का मूलाधार था इसीलिए ब्रह्मचारी का जीवन सरल और सादा होता था जिसमे विलासिता का लेशमात्र भी स्थान न था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा से ब्रह्मचारी के जीवन मे तप (कष्ट सहन करने की क्षमता) धैर्य और उत्साह तथा धर्म मे बुद्धि (धर्ममति) का विकास होता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति से ही भारत की सस्कृति की उन्नति हुई और यही आर्य गौरव तथा सरस्वती और विद्या की गरिमा थी। दाशरथिराम बलराम (सकर्षण) और कृष्ण (वासुदेव) भी गुरू सेवा मे सलग्न थे। गुरूसेवा और गुरूहित ही शिष्य का परमधर्म था। इसी प्रकार शिष्य का उत्थान भी गुरू अपना उत्थान समझता था। ये शिक्षा केन्द्र गुरूकुल थे जो तपोवनो और पवित्र आश्रमो मे नदी–तटो या तीर्थ–क्षेत्रो मे होते थे जहा का मनोरम वातावरण विद्यार्थियो के मन मे उल्लास और आनन्द भरता रहता था। विद्यार्थी को किसी प्रकार से अर्थ की चिन्ता भी नही थी।

2(क)– शिक्षा पद्धति

प्राचीन शिक्षा पद्वति मे सस्कारो का विशेष महत्व है। इन सस्कारो मे उपनयन सस्कार अति विशिष्ट है। इस सस्कार के सम्पन्न होने से ब्राम्हण क्षत्रिय और वैश्य का द्विजत्व प्राप्त करता है। पहला जन्म माता–पिता से होता है और दूसरा जन्म (बौद्धिक जन्म) गुरूकृपा से गुरू के द्वारा होता है। वर्ण–धर्म के अनुसार प्रत्येक ब्राह्मण का स्वधर्म अध्यापन कार्य था। यह ब्राह्मण धर्म था न कि उसकी जीविका वृत्ति। अत ब्राह्मण अपने

विद्यार्थियो को बिना शुल्क लिये लगन के साथ पुत्र की भाति पढाते और प्रेमपूर्वक रखते थे। वह घर का प्रिय सदस्य हो जाता था और पढने के अतिरिक्त गृह कार्यों मे भी गुरू की सहायता करता था।

उस समय पुस्तक न थी। गुरू से श्रवण कर उसका शिष्य कण्ठस्थ कर लेता था। उदाहरण के लिए गुरू न उस एक सूत्र दस–बारह बार रटा दिया। यथा– हरये नायक पावक । अब वह गोचारण को चला जाता था। गाये निर्भय चरती थी और वह दिन भर उसी सूत्र को बार–बार दुहराता था। इस प्रकार लगभग आठ नौ वर्ष की अवस्था मे ही उसे पणिनीय सूत्र अमर कोश आदि रट जाता था।

प्राय सोने के पूर्व और लगभग 3 बजे प्रात उठकर वह पुन उन सूत्रो को दोहराता था। कालान्तर मे गुरू उन सूत्रो को समझाते थे। यही क्रम वेदाध्ययन का भी था अग्नि का पूजन प्रारम्भ हो गया है तो अग्नि की स्तुति (मन्त्र) याद करना ही है। इस श्रावण प्रकिया और व्याकरण द्वारा विद्यार्थी परिपक्व हो जाता था। तब वह विद्वत् सभाओ मे भी जाता था और इसके साथ ही भिन्न भिन्न आश्रमो मे भ्रमण चलता रहता था। (चरका)। तब वह पूर्ण निष्णात स्नातक बन जाता था। और जीवन भर स्वध्याय ही करता रहता था। इस प्रकार उपनयन शिक्षाश्रम के प्रवेश का द्वार ही था।

जब जातकर्मादि सस्कार समाप्त हो जाए तो बालक गुरू गृह मे रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे।[1] उपनयन सस्कार के बाद बालक के चरित्र विकास के दो पक्ष हैं–

1 सयमित सदाचारी सरल जीवन तथा सेवाभाव।

2 ईश्वर और गुरूपर विश्वास और श्रद्धा के साथ वेदाध्ययन

जो सदाचारी है वह सभी कर्मो को करने के योग्य होता है आचार भ्रष्ट पतित हो जाता है। मौजी–मेखला तथा दण्ड धारण कर ब्रह्मचारी वनो मे भी निर्भय रहता था। वह क्रमश ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के यहा से भिक्षा ग्रहण करे सदैव एक ही घर से भिक्षा न ले[2] यही व्यवस्था थी। जब तक वह वेद पढता है वैदिक व्रतो का पालन करना होता है।[3] विद्या समाप्ति के बाद समावर्तन (स्नान) से स्नातक होकर वह सवर्णा सुशीला सुलक्षणा और धर्मिष्ठ कन्या के साथ माता–पिता की अनुमति लेकर विवाह करता था। और गृहस्थाश्रम का पालन करता था।[4]

ब्राह्मण पुत्र का उपनयन आठवे वर्ष मे और क्षत्रिय का उपनयन ग्यारहवें वर्ष मे तथा वैश्यपुत्र का

1–विष्णु पुराण–3/10/12
2–स्कन्द पुराण–4/1 अ० 11 व अ० 36
3–विष्णु पुराण– 3/9/2(2)
4–विष्णु पुराण–3/9/7–8

यज्ञोपवीत (उपनयन) कुला चार पर आधारित था।[1] इसके बाद वे सावित्री–पतित (व्रात्य) हो जाते थे।

भारतीय जीवन का सुधारने मे शिक्षा का महत्व अत्यधिक माना गया है। शिक्षा का विशेष सम्बन्ध द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) से था। और इनमे भी क्षत्रिय तथा वैश्य का धर्म अध्ययन करना ही था। अध्यापन का कार्य केवल ब्राह्मण का था। अत प्राय प्रत्येक ब्राह्मण (आचार्य) का घर विद्या केद्र था। इन विद्या केन्द्रो को ही गुरुकुल कहत थे।

शिक्षा सस्कार एव आश्रम से भी जुडी हुई थी। उपनयन सस्कार और ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा से ही मुख्य रूप से सम्बन्धित थे। इसलिए प्राचीन भारतीय जीवन मे शिक्षा की पवित्रता थी। गुरु (अधकार को दूर करने वाला) ही बालक को नया जन्म देता था। इस प्रकार शिक्षा उपनयन और ब्रह्मचर्य प्राचीन भारतीय शिक्षा के तीन आधार थे जिन पर धर्म का रग चढा रहता था। शिक्षा पर धर्म का प्रचुर प्रभाव था।

उपनयन सस्कार के बाद उपनीत बालक विद्याध्ययन के लिए गुरू के घर जाता था। यहा विष्णु पुराण कहता है कि–शिष्य सस्कार से सस्कृत अर्थात शुद्ध होकर घर जाये। उपनयन सस्कार से सस्कृत हुए बिना कोई भी बालक गुरूकुल मे प्रवेश नही पा सकता था।[2] सस्कार से ही उसको ब्रह्मचर्य ब्रतो और नियमो का पालन करना पडता था। गरूण पुराण मे उल्लेख है– माता वैरी पिता शत्रु बालोयेन न पाठित ।

अत सतान को शिक्षा देना माता–पिता का परम कर्तव्य था वे अपने बालको को पढाते थे। गुरूकुल मे ब्रह्मचर्य के नियमो के पालन के अतिरिक्त न तो माता पिता पर बालक की शिक्षा का आर्थिक भार था और न अन्य कोई कठिनाई ही थी। प्राय सभी विद्यार्थी थे और गुरू जी उपदेशक थे। गुरू और विद्यार्थी के सगम से ही नये रूपो का निखार होता था।

<u>(ख) शिक्षा पद्धति का क्रमिक विकास</u>

ऋषि ही ऋषयो मन्त्र दृष्टार मन्त्र दृष्टा और गुरू थे। ऋग्वैदिक युग मे भी ऋषियो और अरण्यो के उल्लेखो से सिद्ध होता है कि इन तपोवनो मे ब्राह्मण शिक्षित होते थे। शिक्षा और तप के द्वारा सस्कृत ब्राह्मण ऋषि कहलाता था। उत्तर वैदिक काल मे शिक्षा पद्धति का चित्र स्पष्ट दिखलाई पडने लगता है। चार वेद और वेदाग एक दूसरे के पूरक है और वेदाग भी शिक्षा का एक अग है। वेद ज्ञान है और ज्ञान का विकास बुद्धि कौशल है जिसमे गुरू का व्यक्तित्व कार्य करता है। गुरू ही शिष्य के बुद्धि विकास आचार और ज्ञान का मूल माध्यम है। ज्ञान ही मानव का तृतीय चक्षु है[3] जो गुरू कृपा से ही खुलता है। बह अक्षर ज्ञान से आगे विभिन्न विद्याओ

1–विष्णु पुराण 3/10/ 2

2–विष्णु पुराण 3/10/12

3–सुभाषित रत्न सन्दोह–पृ० 194– ज्ञान तृतीयो मनुजस्य चक्षु
समस्त तत्वार्थ विवेक दक्ष ।

का अध्ययन करता हुआ आत्मज्ञान (आत्मबोध या आत्म विद्या) द्वारा मोक्ष की ओर अग्रसर होता था। गुरूगृह ही शिक्षा के प्राथमिक केन्द्र थे। गुरू (आचार्य)–विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) को अपने ज्ञान–क्षेत्र मे प्रवेश कराता था।[1]

प्राचीन शिक्षा पद्धति मे गुरू के पास (गुरूगृह मे) ब्रह्मचर्य पालन करते हुए गुरू सेवा द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया जाता था। सत्यनिष्ठा सेवाभक्ति और चरित्र से युक्त ही विद्यार्थी गुरू के यहाँ प्रविष्ट होता था। तत्कालीन शिक्षा मे धन की विशेष आवश्यकता न थी और धन का अभाव किसी भी जिज्ञासु कुलीन विद्यार्थी के मार्ग मे रोडा नही बनता था। गुरू भी विद्यार्थी की उन्नति मे अपनी उन्नति समझता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को नरेन्द्रार्थे (राजा चन्द्रगुप्त) तथा अन्य राजकुमारो की शिक्षा के लिए बनाया था। परन्तु यह सामान्य शिक्षा पद्धति पर भी प्रकाश डालता है। कौटिल्य के अनुसार विद्या के साथ–साथ विनय का होना परम आवश्यक है। इसके साथ जितेन्द्रियता (सयम) और काम क्रोध तथा लोभादि का त्याग भी आवश्यक है।[2] इसलिए सस्कारो का भी शिक्षा मे विशेष महत्व है।

ईसा पूर्व की छठी शताब्दी मे ही तक्षशिला विश्वविद्यालय प्रसिद्ध था जहाँ जीवक और प्रसेनजित आदि ने भी शिक्षा ग्रहण की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य को भी कौटिल्य ने तक्षशिला मे ही शास्त्र तथा शास्त्र की शिक्षा दी थी पौराणिक विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अपने आश्रम (सिद्धाश्रम) मे ले जाकर शिक्षा दी थी।

बौद्ध विहार भी शिक्षा के केन्द्र थे। गुप्त युग मे नालन्दा का भी विकास हुआ और पाल शासन काल मे विक्रमशिला भी प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र बना। ये विद्यालय तक्षशिला और विक्रमशिला एशिया (जम्बूद्वीप) मे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। इसी प्रकार बलभी भी पश्चिमी भारत का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था।

इसके अतिरिक्त काशी कान्यकुब्ज मथुरा उज्जयिनी आदि भी प्रसिद्ध विद्या के केन्द्र थे।

3–आश्रम व्यवस्था और शिक्षा

प्राचीन भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था शिक्षा की विशेष उन्नति का मूल कारण है। चार वर्णो मे ब्राह्मण वर्ण का उत्तरदायित्व धर्म और विद्या तथा आचार की उन्नति करना था।[3] उसका जन्म और जीवन ही विद्या की उन्नति के लिए समर्पित था।

इसी प्रकार आश्रम व्यवस्था का प्रथम आश्रम जिसे ब्रह्मचर्याश्रम कहा जाता है शिक्षाकाल ही था। वनो (तपवनो और आश्रमो) मे पच्चीस वर्ष रहकर जो शिशु या बालक गृहस्थ बनाता था वह समाज मे आदर्श नागरिक होता था। भारत का अभ्युदय और विद्या–गौरव इन्ही ब्रह्मचारी गृहस्थो (बादमे) वानप्रस्थी और सन्यासियो पर ही

1– अथर्ववेद–11/7/3 आचार्य उपनपमानो ब्रह्मचारिण ॥

2– कौटिल्य–अर्थशास्त्र– 16/1/5– विद्या विनय हेतुरिन्द्रियजय
काम कोध लोभ मान मद हर्ष त्यागात्कार्य

3– मत्स्यपुराण (जीवानन्द स०)214/66(1) धर्मार्थ चैव विप्रेभ्योदद्याद्भोगान् धनानि च।

पर तीन पग भूमि मागते हुए दर्शन देते हैं।[1]

इस प्रकार स्पष्ट हे कि समाज मे आचार्य का कितना गुरूतर कार्य और राष्ट्र के जीवन मे महत्वपूर्ण योगदान था। इसी कारण राजसभा और सामान्य जनसमाज से आचार्य का सम्मान किया जाता था।

4–आचार्य (गुरू) और ब्रह्मचारी (शिष्य) सबध–

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति मे गुरू–शिष्य का सम्बन्ध पिता–पुत्र के समान ही था। शिष्य गुरु का आदरपूर्वक सेवाकार्य करता था। तथा उसकी आज्ञानुसार ही कार्य करता था। भिक्षा प्राप्त कर गुरू को ही समर्पित करता था। शिष्य वन से फल मूल एव समिधा आदि भी लाता था।

उपनयन के बाद (द्विजत्व) ब्रह्मचारी गुरुकुल मे ही इन्द्रियो को वश मे करके सयम और भक्तिपूर्वक आचार्य (गुरू की) सेवा करता हुआ वेदाध्ययन करता था।[2]

यदि वह विवाह नही करता था तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप मे जीवन पर्यन्त स्वाध्याय करता हुआ गुरूकुल मे ही रहता था। वह भोगमय जीवन को त्यागकर (भोग विवर्जित) योगमय जीवन व्यतीत करता हुआ मुक्ति साधना करता था।[3] स्वध्याय योग भी मुक्ति का साधन है।

इस प्रकार उपनयन सस्कार महत्वपूर्ण शिक्षा सस्कार है। जिसके द्वारा द्विज बालक अपने गुरू के साथ विद्या प्राप्त कर जीवन को सयमी और सरल बनाते थे।

ब्रह्मचारी (विद्यार्थी, शिष्य)

उपनयन सस्कार से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का द्विजत्व प्रारम्भ होता है।[4] ब्रह्मचारी मुञ्जमेखला और मृगचर्म तथा दण्ड धारण करता था। भिक्षावृत्ति से जो प्राप्त होता था उसे वह गुरु को समर्पित कर देता था।

गुरू द्वारा उपदिष्ट शौचविधि तथा आचार से युक्त होकर अग्निकार्य और सन्ध्योपासना करता था।[5]

इस प्रकार गुरूगृह मे 25 वर्ष की आयु तक रहकर पढता था। इसके बाद वह गुरू की आज्ञा से तथा गुरू दक्षिणा देने के बाद घर लौट जाता था।

शौचाचार शिक्षा

शिष्य को उपनीत करके गुरू उसे आरम्भ से शौच (पवित्र रहने और पवित्र कर्म करते हुए पवित्र बनने) की शिक्षा देते थे। इसी के साथ आचार (शिष्ट व्यवहार अभिवादन आदि) तथा अग्निकर्म (होम) और सन्ध्योपासना

1–अग्निपुराण–4/7–9
2–भागवत पुराण–11/17/22
3–भागवत पुराण 11/17/30–31
4–अग्नि पुराण 151/10(1) 153/6
5–अग्नि पुराण 153/12

की शिक्षा देते थे। इन क्रियाओ के पालन करने से आयु यश ऐश्वर्य और ऋत (धर्म) की प्राप्ति होती है।[1] धीरे धीरे विद्यार्थी वेद और वेदान्त का ज्ञान प्राप्त कर अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाते थे। उसे बताया जाता था कि दो ब्रह्म (विद्याये) हैं– शब्द ब्रह्म और (परब्रह्म) वेदादि विद्या अपर (शब्द) ब्रह्म है। अक्षर ब्रह्म परब्रह्म है। पचभूतात्मक देह मे ही मोह का नाम अविद्या है। देह (इन्द्रिय) और विषय का सयोग ही बन्धन है। इसीलिए विद्याध्ययन देहासक्ति और विषयरति से दूर सेवा तप और स्वाध्याय द्वारा होता था। सबके लिए यह कार्य सरल न था। ब्रह्मण क्षत्रिय बालक ही यह ब्रह्मचर्य साधना कर सकते थे।

ऊपर कहा गया है कि प्राय प्रत्येक ब्राह्मण का घर आश्रम और गुरूकुल (आचार्यकुल) होता था। ये छोटे बडे सभी प्रकार के थे। ऋषिया महर्षियो के आश्रम बडे विद्याकेन्द्र थे जैसे श्वेताश्वतर आश्रम और उपमन्यु आश्रम हिमालय पर केदार सके निकटस्थ थे। इक्षुमती नदी के तट पर कपिल मुनि का आश्रम (फर्रूखाबाद जिले मे कम्पिल मे) था। तीर्थ क्षेत्र (काशी नैमिषारण्य अयोध्या आदि) भी विद्याध्ययन के केन्द्र थे।

विद्याशुद्धि[2]और गुरू शुद्धि[3]

तन्त्रिक साधन क्रियाओ के वर्णन मे हमे ये दो शब्द प्राप्त होते हैं। शिक्षा सस्थान पर विद्या की शुद्धता और विद्या देवी की दिव्यता तथा शुद्ध बुद्धशीलवन्त गुरू की ज्ञान निष्ठा ने विद्या को प्राचीन भारतीय जीवन के उच्चतम गौरव के शिखर पर पहुचा दिया था। विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य पालन तथा गुरुसेवा कर्म भी तप था जिससे मानव व्यक्तित्व का निर्माण होता था।

5–अठारह विद्याये साहित्य एव शास्त्र

अग्नि पुराण विद्यासार पुराण है (विद्यासार पुराण)[4] इसके अनुसार दो विद्याये[5] थी–

1– परा विद्या

2– अपरा विद्या

1–पराविद्या

परा विद्या वह विद्या है जिससे ब्रह्म का ज्ञान होता है–

1– अग्निपुराण 153/12–13
2– अग्निपुराण 144/10(1)
3– अग्निपुराण 144/10(1)
4– अग्निपुराण 1/13
5– अग्निपराइ 1/15

परविद्ययया ब्रह्मावगम्यते

यही वेदान्त या ब्रह्मविद्या है।

2– अपरा विद्या

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद (चारवेद) शिक्षा कल्प व्याकरण निरूक्त छन्द और ज्योतिष (छ वेदाङ्ग) चार उपवेद–वैद्यक (आयुर्वेद) गन्धर्ववेद (गान्धर्व) धनुर्वेद और अर्थवेद (अर्थशास्त्र) न्याय मीमासा धर्मशास्त्र और पुराण। इस प्रकार सब मिलाकर 18 विद्याये हुई जिसमे पुराण स्वय एक विद्या के रूप मे स्वीकार किया गया है ।

विद्याध्ययन–

अग्निपुराण विद्यासार पुराण है जिसमे पराविद्या (ब्रह्मविद्या) के अतिरिक्त अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेद छ वेदाङ्ग – छन्द शास्त्र शिक्षा या शुद्ध उच्चारण विधि व्याकरण या शुद्ध बोलने और शुद्ध लिखने निसक्त या अभिद्यान कोश–निरूक्त शास्त्र ज्योतिष –ग्रह नक्षत्र काल विचार–ज्योतिष शास्त्र और कल्प या मन्त्रो का समुचित प्रयोगादि तथा मीमासा–पूर्वमीमासा एव उत्तर मीमासा धर्मशास्त्र (स्मृतिया) पुराण विद्या (पुराणवाम्) न्याय वैद्यक (आयुर्वेद) गान्धर्ववेद (सगीतशास्त्र) धनुर्वेद (युद्धशास्त्र) और अर्थशास्त्र[1] की भी शिक्षा दी जाती थी।

साहित्य–शिक्षा–

साहित्य शास्त्र की भी शिक्षा विशेष रूप से होती थी। इसके अन्तर्गत काव्यलक्षण (काव्यशास्त्र) और इसके विविध भेद गद्य पद्य मिश्र (चम्पू)[2] तथा अलकार[3] रस[4] नाटक[5] आदि थे। कवि कर्म की विशेष महिमा थी। कवि हर अपने काव्य मे अपने युग का चित्रण करता है।[6]

आयुर्वेद (वैद्यक)[7]

आयुर्वेद की भी शिक्षा का विशेष महत्व था और हमे यहा न केवल मनुष्य औषधि निदान आदि का वर्णन मिलता है अपितु गजायुर्वेद[8] (हाथियो का उपचार) तथा अश्वायुर्वेद[9] का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार

1–अग्निपुराण–1 / 15–17
2–अग्निपुराण–337 / 8
3–अग्निपुराण–337 / 7
4–अग्निपुराण–339 / 2 9 35
5–अग्निपुराण–339
6–अग्निपुराण–339 / 10
7–अग्निपुराण–289 / 1
8–ग्निपुराण–287 / 291
9–अग्निपुराण–288–290

वृक्षायुर्वेद का[1] भी वर्णन मिलता है।

प्राचीन काल के अतिरिक्त इस समय के सस्कृत शिक्षा केन्द्रो मे भी साहित्य के साथ–साथ आयुर्वेद शिक्षा का विशेष महत्व था।

6–विद्या का महत्व–

इस प्रकार स्पष्ट है कि अग्निपुराण के युग मे भी विद्या का महत्व था–

विद्या कामधेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमम्।[2]

अर्थात विद्या ही कामधेनु है और विद्या ही सर्वोत्तम नेत्र (दृष्टि) है इससे भारतीय समाज और सस्कृति मे विद्या का महत्व भी सिद्ध होता है।

प्राचीन काल और मध्ययुग मे भी विद्या का महत्व स्थिर रहा। विद्या ही सर्वोत्तम धन माना गया था। विद्या ही कल्याण शक्ति है। विद्या ही परम देवता है। विद्या ही सत्य बन्धु है। विद्याविहीन मनुष्य पशु ही है।[3] विद्या दान का विशेष महत्व था।

7–शिक्षा (विद्या) केन्द्र–(1)ऋषि आश्रम–

परा विद्या ही ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान (आत्मविद्या) कहलाता है। यही सर्वश्रेष्ठ विद्या है। इससे अमरत्व (अमृतत्व) की प्राप्ति होती है। यह ब्राह्मणो की ही विशेष सामर्थ्य है कि वे नित्य वेदाभ्यास मे सलग्न तथा वेद शास्त्रार्थ के तत्वज्ञ थे। विभिन्न आश्रमो मे रहते हुए विद्या दान द्वारा विद्या का प्रचार–प्रसार करते थे।[4]

(2)देवालय–

विष्णु शिव और सूर्य आदि के मन्दिरो मे पुस्तक (पुराण आदिका) वाचन (पराण आदि) होता रहता था। इसके अतिरिक्त ये मन्दिर (देवक्षेत्र) और तीर्थ भी विद्या केन्द्र थे।

(3)तीर्थ एव आश्रम–

प्रयाग सगम[5] वाराणसी[6] (काशी) नर्मदातट[7] गया क्षेत्र[8] दशारण्य (विशेषकर दरापुर) और उज्जयिनी (अवन्तिपुरी) आदि प्रसिद्ध विद्या केन्द्र थे। अवन्तिपुरी मे ही सान्दीपनि ऋषि के आश्रम मे कृष्ण और बलराम ने शिक्षा प्राप्त की थी।

1–अग्निपुराण–282
2–अग्निपुराण–211/59(1)
3–गरूणपुराण–1/115/80 82 गरूणपुराण पृ०289
4–अग्निपुराण–162/6–8
5–अग्निपुराण–111/1 6
6–अग्निपुराण–अध्याय 112
7–अग्निपुराण–अध्याय 113
8–अग्निपुराण–अध्याय 114–116

आचार्य सान्दीपनि काशी के रहने वाले थे (काश्या सान्दीपनि) जिन्होने अवन्तिपुरी मे अपना गुरूकुल स्थापित किया था।[1] कष्ष्ण और बलराम ने इन्ही गुरू की भक्तिपूर्वक सेवा की थी तथा धनुर्वेद आन्वीक्षिकी और राजनीति आदि विद्याओ तथा कलाओ की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होने सान्दीपनि आचार्य को गुरू दक्षिणा भी दी थी।[2]

8–स्त्री एव शूद्र शिक्षा

बहुत समय तक प्राचीन भारत मे शिक्षा का तात्पर्य वेद शिक्षा से था। इसलिए यह विद्या उनको ही दी जाती थी जिनका सम्बन्ध वैदिक यज्ञो से था। चाहे वे स्त्री हो या पुरूष। उस समय स्त्रियो को भी वैदिक साहित्य के अध्ययन का अधिकार प्राप्त था।[3] डॉ अल्टेकर का ही विचार है कि कालान्तर मे स्त्रियो की शिक्षा मे बहुत ही क्षति हुई।[4] इस युग मे देश तथा समाज के जीवन पर मुस्लिम आक्रमणो और उनके द्वारा राज्य स्थापित हो जाने पर स्त्रियो के स्वातन्त्रय पर प्रतिबन्ध लग गये। अब स्त्रियो को शिक्षा आदि के विषय मे ली कठिनाइया उत्पन्न होती गई। लेकिन घर पर ही धार्मिक साहित्य (यथा रामायण महाभारत हरिवश आदि और पुराणो) का अध्ययन तथा श्रवण अवश्य होता था।

इस प्रकार धीरे धीरे स्त्रियो और शूद्रो के लिए पठन पाठन की सुविधा लुप्त प्राय हो गई। केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वशो मे घर पर ही पठन पाठन और अध्ययन तथा पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थो का श्रवण करना ही शेष रह गया।

शूद्र अधिकाशत दो वर्गो मे बटे हुए थे–

1– सच्छूद्र

2– असच्छूद्र

असच्छूद्र वे थे वे जो नास्तिक पाखण्ड (बौद्धधर्म) होने से वेद विरोधी थे। इसलिए केवल इनकी निन्दा ही नही की गई है प्रत्युत इनका दमन भी किया गया है।

सच्छूद्र वे थे जो वेद धर्म या ब्राम्हणो के विरोधी न थे। वे भिन्न भिन्न प्रकार के शिल्प कार्यो मे लगे हुए थे। उन्हे शिल्प की शिक्षा तो मिलती थी। लेकिन वह भी शिक्षा उन्हें घर पर ही दी जाती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस युग मे स्त्रियो और शूद्रो की शिक्षा पर बुरा प्रभाव पडा।

अग्नि पुराण विद्यासार पुराण कहा गया है। और विद्याये दो भागो परा और अपरा मे विभक्त है। परा

1–भागवत पुराण–10/45/31

2–भागवत पुराण–10/45/32–39

3–डॉ० अल्टेकर–ए० ऐ० इ० पृ० 205

4–डॉ० अल्टेकर–ए० ऐ० इ० पृष्ठ० 213 217–218

विद्या का सम्बन्ध ब्रह्मज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या से था एव अपरा विद्या के अन्तर्गत अठारह विद्याये थी जिनका सम्बन्ध मुख्यत ब्राह्मण तथा क्षत्रियो से ही था।

अग्नि पुराण की अन्य विशेषता है कि इसमे पुष्य कथाओ का विशेष वर्णन नही किया गया है। केवल रामायण महाभारत आदि की पुण्य कथाओ का उल्लेख है जिनमे राजधर्म अथवा राजनीति का पुट दिया गया है। रामायण और महाभारत की नारिया तो शिक्षित थी और हम यह भी जानते है कि इस युग के प्रसिद्ध काव्य मीमासक राजशेखर की धर्म पत्नी अवन्ति सुन्दरी न केवल साहित्य और काव्य विदुषी थी प्रत्युत कवि सभाओ के अध्यक्ष का भी वह पद ग्रहण करती थी।

इस प्रकार साधारण कथाओ के अभाव मे शूद्रो के विषय मे यही कहा गया है कि वे सभी लोग अपने अपने स्वधर्म का पालन करे। स्त्री के लिए पति सेवा या परिचर्या एव शिल्पकर्म करना निर्धारित था। इन स्वधर्मो के पालन से ही कालान्तर मे उनका जन्म पुण्ययोनि मे होता था।

अग्नि पुराण मे इन दोनो की शिक्षा के न तो प्रचार का उल्लेख है और न ही प्रतिबन्ध के उल्लेख प्राप्त होते है।

<u>9—साहित्य—</u>

भारतीय—सस्कृत साहित्य सागर अनन्त रत्नराशि से परिपूर्ण है। उन रत्नो मे पुराण साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्व का है। ये वेद की भाति भगवान का नि श्वास रूप ही है। पुराण अनन्त ज्ञान—राशि के भण्डार है। इनका साहित्य अत्यन्त विशाल है। लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान—विज्ञान के समस्त विषयो का इसमे समावेश है। सृष्टि से आज तक के इतिहास को ये अपने मे सजोये हुए है। पुराणो का आर्विभाव वेदो के उपवृहण के लिए हुआ है।[1] वर्तमान काल तक जितने ज्ञान—विज्ञान कला तथा विद्या के क्षेत्रो का और उनकी शाखा—प्रशाखाओ का आविष्कार हुआ है त्रिकालदर्शी ऋषियो ने इन सभी का साराश सूक्ष्म रूप से इन पुराणो मे सनिवेश किया है। इनका महर्षि वेद व्यास जी ने सुचारू रूप से सम्पादन और वर्गीकरण कर पुराण ग्रन्थो के रूप मे प्रस्तुत किया है। महर्षि वेद व्यास जी का यह अद्‌भुत वैशिष्ट्य है कि उन्होने वेदादि शास्त्रो मे प्रतिपादित जटिलतम विषयो को भी आख्यान तथा उपाख्यानो के माध्यम से सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य बना दिया।

सुमनोहर रचना जिसे हम साहित्य कहते हैं, शब्दार्थ से मिलकर बनती है—शब्दार्थयो सहितयो भाव साहित्यम् अर्थात जहा शब्द और अर्थ समान रूप से रमणीयता की उत्पत्ति हेतु पग से पग मिलाकर चले

1—महाभारत आदिपर्व 1/267—268

वह साहित्य है। इसीलिए आचार्य कुन्तक ने अपने वक्रोक्तिजीवितम मे लिखा है–

साहित्यमनयो शोभाशालिता प्रति काप्यसौ।

अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थिति ।।[1]

अर्थात् साहित्य का अभिप्राय सौन्दर्य लाने के लिए शब्दार्थ की न्यूनता या अधिकता से रहित मनोहर स्थिति है। इस विषय मे आचार्य वामन अपना मत प्रस्तुत करते हुए काव्यालकार सूत्र मे कहते हैं–

काव्य शब्दोऽय गुणलङ्कार सस्कृतयो शब्दार्थयोर्यवर्तते।[2]

अर्थात गुण और अलकार नामक दो धर्म हैं जो शब्दार्थ को हृदयग्राही बनाते हैं। पुराण साहित्य पवित्रता रचना–सौष्ठव और श्रेष्ठ पद्यबद्धता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है।

अग्निपुराण भारतीय विद्याओ और कलाओ का ही महत कोश है। जैसा कि निम्नलिखित विद्याओ के उल्लेख से सिद्ध होता है–

1–परा विद्या–अर्थात् ब्रहमविद्या जिससे ब्रहम् का ज्ञान होता है।

2–अपरा विद्या– लौकिक विद्याये आती हैं जिसके अन्तर्गत–

(1)–चारवेद–ऋग्वेद सामवेद यर्जुवेद और अथर्ववेद

(2)–छ वेदाङ्ग–शिक्षा कल्प व्याकरण निरूक्त ज्योतिष और छन्द

(3)–मीमासा–पूर्व मीमासा तथा उत्तर मीमासा

(4)–न्याय

(5)–धर्मशास्त्र

(6)–पुराण (पुराणकम्) एकवचन–पुराणविद्या

(7)–वैद्यक (आयुर्वेद)

(8)–गन्धर्ववेद (सगीत शास्त्र)

(9)–धनुर्वेद (युद्ध विद्या)

(10)–अर्थशास्त्रकम (अर्थविद्या एव राजनीति)

इस प्रकार ये अठारह विद्याये[3] भारतीय साहित्य सागर ही हैं। इसलिए अग्निपुराण को विद्यासार पुराण कहा गया है–

1–वक्रोक्ति जीवितम् 1/17

2–काव्यालकार सूत्र 1/1 की वृत्ति

3–अग्निपुराण 1/15–17

विद्यासार वदामि ते।[1]

इन विद्याओ के अध्ययन अध्यापन और विचारण क्रिया के परिणाम स्वरूप ऋषियो द्वारा विविध शास्त्रो तथा उपविद्याओ का विकास हुआ यथा–शिक्षा कल्प ज्योतिष विज्ञान आदि। अथर्ववेद मे तो गणित आदि के मूल तत्व ही विद्यमान है। आयुर्वेद (वैद्यक) धनुर्वेद (युद्ध विद्या) तथा अर्थशास्त्र मे भी ऐसी ही विद्याये थी जिनके द्वारा विभिन्न आचार्यों ने अन्य शास्त्रा का भी विकास किया। आयुर्वेद[2] की ही शाखाओ मे मनुष्य चिकित्सा गजचिकित्सा[3] अर्थात् गजार्युवेद[4] अश्व चिकित्सा (शालिहोत्र)[5] तथा वृक्षायुर्वेद[6] भी प्रचलित थे।

इसी प्रकार शिल्प विद्या का अत्युच्च विकास हुआ जिसे प्रसाद शिल्प मे आज भी आक सकते है। शिल्प शास्त्र के आधार पर ही पुर–कल्प नगर–निर्माण तथा विभिन्न वर्गों की गृह योजना का वर्णन अग्निपुराण मे किया गया है।

<u>(1)वेद–</u>

अग्निपुराण के 271वे अध्याय मे वेदो तथा वेद–मन्त्रो का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

सर्वानुग्राहका मन्त्राश्चतुर्वर्ग प्रसाधका।

ऋगथर्व तथा साम यजु सख्या तु लक्षणम।।7

सबके ऊपर अनुग्रह करने वाले वेदो के मन्त्र चतुवर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। ऋग्वेद अथर्ववेद सामवेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रो की सम्पूर्ण सख्या एक लाख कही गयी है।

इस विषय मे यह भी कहा गया है कि भगवान ने व्यास का रूप धारण करके वेदो का शाखा भेद किया। इनके अनुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद मे तीन हजार मन्त्रो को माना है। यजुर्वेद के मन्त्रो की सख्या एक हजार छियासी है जिसमे कुछ के नाम इस प्रकार है–काण्व माध्यदिनी कठी माध्यकठी इत्यादि। मैत्रायणी तैत्तरीय वैशम्पायनिक आदि शाखाये यजुर्वेद की है।

सामवेद मे नौसहस्त्र मन्त्र और कौथुभी एव आथर्वणायनी दो शाखाये है तथा–वेद आरण्यक उक्थ और ऊह–चार गान भी हैं। अथर्ववेद मे सोलह हजार मन्त्र है। तथा अथर्व के शाखा प्रवर्तक आचार्यो केनाम

1–अग्निपुराण 1/13
2–अग्निपुराण 279/1
3–अग्निपुराण 279/2
4–अग्निपुराण 287
5–अग्निपुराण 289
6–अग्निपुराण 282
7–अग्निपुराण 271/1

भी बताये गये है जो इस प्रकार है–सुमन्तु जाजलि श्लोकायनि शौनक पिप्पलाद और मुञ्जकेश ऋषि है।[1]

(2)वेदाङ्ग

वदो क पश्चात वेदाङ्गो का स्थान आता है इनकी सख्या छ है–शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष और छन्द। छ वेदाङ्गो मे सर्वप्रथम शिक्षा का उल्लेख किया गया है।

1–शिक्षा–

स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिष्यते सा शिक्षा– अर्थात् जिसमे स्वर वर्ण आदि की शिक्षा दी जाती है उसे शिक्षा कहते है।[2] अग्निपुराण के 336वे अध्याय मे शिक्षा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

वक्ष्ये शिक्षा त्रिषष्टि स्युर्वणा वा चतुरा (र) धिका।

स्वरा विशतिरेकश्च स्पर्शाना पञ्चविशति।।[3]

अर्थात् तिरसठ चौसठ वर्ण कहे गये हैं जिसमे इक्कीस स्वर तथा पच्चीस स्पर्श वर्ण आते हैं। आठ यादि चार यम अनुस्वार विसर्ग दो पराश्रित–जिहवामूली तथा उपध्मानी (॒कऔर ॒प)और दु स्पृष्ट लकार ये तिरसठ वर्ण है। इनमे प्लुत लृकार को और गिन लिया जाय तो वर्णो की सख्या चौसठ हो जाती है।

सर्वप्रथम आत्मा सस्कार रूप से अपने भीतर विद्यमान घटपटादि पदार्थों को अपनी बुद्धि वृत्ति से सयुक्त करके अर्थात उन्हे एक ही बुद्धि का विषय बनाकर बोलने या दूसरो पर प्रकट करने की इच्छा से मन को उनसे सयुक्त करता है। तत्पश्चात सयुक्त हुआ मन कायाग्नि–जठराग्नि को आहत करता है। फिर वह जठरानल प्राणवायु को प्रेरित करता है। वह प्राणवायु हृदय देश मे विचरता हुआ धीमी ध्वनि मे स्वर को उत्पन्न करता है। इस प्रकार ऊपर की ओर प्रेरित वह प्राण मूर्धा मे टकराकर अभिघात नामक सयोग का आश्रय बनकर मुखवर्ती कण्ठादि स्थानो मे पहुचकर वर्णो को उत्पन्न करता हैं उन वर्णो के पाच प्रकार से विभाग माने गये हैं। स्वर से काल से स्थान से आभ्यन्तर प्रयत्न तथा वाहय प्रयत्न से उन वर्णो मे भेद होता है।[4]

वर्णो के आठ उच्चारण स्थान कहे गये हैं–हृदय कण्ठ मूर्धा जिहवामूल दन्त नासिका ओष्ठद्वय तथा तालु। विसर्ग का अभाव विवर्तन सन्धि का अभाव शकारादेश षकारादेश सकारादेश रेफादेश,

---

1–अग्निपुराण 271/8

2–सायण–ऋग्वेदभाष्य–पृ० 49

3– अग्निपुराण 336/1

4– अग्निपुराण 336/2–10

जिह्वामूलीयत्व और उपध्मानीयत्व ये ऊष्म वर्णों की आठ प्रकार की गतिया हैं। इनके उच्चारण काल मे तीन नियम है—ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत। स्वर भी तीन प्रकार का होता है—उदात्त अनुदात्त और स्वरित। इनके भी उच्चारण काल को तीन नियम—ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत कहे गये है।[1] तैत्तिरीय उपनिषद मे शिक्षा छ अगो का वर्णन है—वर्ण स्वर मात्रा बलसाम और सतान।

वर्ण स्वर मात्राबलम साम सतान इत्युक्त शिक्षाध्याय[2]

2—छन्द—

यदक्षर परिमाण तच्छन्द—अर्थात सख्या विशेष मे वर्णों की सत्ता छन्द है।[3] यास्क महोदय ने छन्द का निर्वाचन छद् (ढकना) धातु से दिया है— छन्दासि छादनात् अर्थात छन्द भावो को आच्छादित करके समष्टि रूप प्रदान करते है।[4] प्रत्येक छन्द मे वर्णों की सख्या निर्धारित रहती है—

अग्निपुराण के 328वे अध्याय मे छन्द सार का वर्णन करते हुए कहा गया है—

छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तै पिङ्गलोक्त यथाक्रमम्।

सर्वादिमध्यान्तगणौ म्लौ भ्यो ज्रौ स्तौ त्रिका गणा ।।[5]

अर्थात वेद के मूलमन्त्रो के अनुसार पिगलमुनि द्वारा कहे गये छन्द क्रमश इस प्रकार है। मगण नगण भगण यगण जगण रगण सगण और तगण—ये आठ गण होते हैं। ये समस्त गण तीन अक्षरो के होते हैं जिसमे मगण के समस्त अक्षर गुरू तथा नगण के समस्त अक्षर लघु होते है। आदि गुरू होने से भगण तथा आदि लघु होने से यगण होता है। अन्त्य गुरू होने से 'सगण तथा अन्त्य लघु होने से 'तगण होता है। पादान्त हृस्व अक्षर विकल्प से गुरू माना जाता है। विसर्ग अनुस्वार सयुक्ताक्षर (व्यजन) जिहवामूलीय तथा उपहमानीय से अव्यवहित पूर्व मे स्थित होने पर ह्रस्व' भी गुरू माना जाता है। दीर्घ तो गुरू है ही। गुरू और लघु का सकेत क्रमश ग और ल है ये गण नहीं है।[6]

अग्निपुराण के 329वें अध्याय मे गायत्री छन्द का वर्णन किया गया है जिसमे गायत्री छन्द के आठ भेद बताये गये है जो इस प्रकार है—आर्षी दैवी आसुरी प्राजापत्या याजुषी साम्नी आर्ची तथा ब्राह्मी।

1—अग्निपुराण 336/10—16
2—तैत्तिरीय उपनिषद—1—2
3—कात्यायन कृत—सर्वानुक्रमणी
4—यास्क कत—निरूक्त—7/19
5—अग्निपुराण 328/1
6—अग्निपुराण 328/2—3

इनमे दैवी गायत्री एक अक्षर की आसुरी पन्द्रह अक्षरो की प्राजापत्या आठ अक्षरो की याजुषी छ अक्षरो की साम्नी गायत्री बारह अक्षरो की तथा आर्ची अठारह अक्षरो की है।[1]

छन्द के चौथाई भाग को पाद या चरण कहते है। गायत्री के एक पाद मे आठ अक्षर बताये गये हैं। जगती के एक पाद मे बारह अक्षर विराट के एक पाद मे दस अक्षर तथा तिष्टुप के एक पाद मे ग्यारह अक्षर होते है। जब दो दो चरण आठ–आठ अक्षरो के और एक चरण बारह अक्षरो का हो तो उसे वेद मे उष्णिक नाम दिया गया है। प्रथम और तृतीय चरण आठ अक्षरो के हो और बीच का द्वितीय चरण बारह अक्षरो का हो तो वह ककुप उष्णिक नामक छन्द होता है। इसी प्रकार 328वे अध्याय से 335वे अध्याय तक विभिन्न छन्दो का विशद वर्णन किया गया है।

3–कल्प–

कल्प्यते समर्थ्यते याग प्रयोगोऽत्र इति अर्थात कल्प का अर्थ है–यज्ञिय विधियो का समर्थन और प्रतिपादन।[2] जिसमे वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होता है वे सकल्प सूत्र कहे गये हैं।[3] इनका वेदागो मे महत्वपूर्ण स्थान है।

कल्पो का वर्णन प्राय पुराणो मे भरा पडा है। कल्प मे वैदिक एव लौकिक कर्मकाण्डो का समन्वय है जिसमे श्रौत सूत्र गृहय सूत्र स्मार्तसूत्र और शुल्ब सूत्र ये चार ग्रहीत होते हैं। कल्पो के पाच भेद होते है।

1–नक्षत्र कल्प–इसमे यज्ञ और सस्कार आदि कर्मों के मुहूर्तों का निर्णय होता है।

2–वैतान कल्प–इसमे यज्ञो (हविर्यज्ञ सोमयज्ञ तथा पाक यज्ञ–इन तीन सस्थाओ) की सागोपाग विधि निरूपित होती है।

3–सहिता कल्प–इसमे विशेषकर वेद निर्दिष्ट अश्वमेध राजसूयादि यज्ञो और उससे भिन्न सभी विधियो की सम्पादन प्रक्रिया प्राप्त होती है।

4–अगिरस कल्प– मे शत्रु राष्ट्रो के लिए मारण मोहन वशीकरण तथा उच्चारण आदि अभिचार कर्मों का निर्देश है।

5–शान्तिकल्प– इस कल्प मे विविध दैव अन्तरिक्ष अद्भुत आदि उत्पातो ईति भीति आदि भयो के निवारण तथा शत्रु राष्ट्रो द्वारा किये गये मारण मोहनादि प्रयोगो की शान्ति विधि का वर्णन है।

1–अग्निपुराण 329/2–3

2–सायण–ऋग्वेद भाष्य–भूमिका

3–विष्णुमित्र कृत ऋकप्रातिशाख्य की वृत्ति

ये सभी विषय अग्निपुराण मे विस्तार से प्राप्त होते है। अध्याय 126 तथा 130 मे विभिन्न सस्कारो के शुभ–अशुभ मुहूर्तों का निरूपण किया गया है। अध्याय 59 149 164 तथा 167 मे विभिन्न प्रकार के यज्ञो के सागोपाग विधि का वर्णन है। अध्याय 125 133 137 तथा 138 मे शत्रु तथा शत्रुराष्ट्रो के लिए मारण मोहन वशीकरण एव उच्चारण आदि अभिचार कर्मों का विस्तृत वर्णन है। तथा अध्याय 263 267 290 321 322 323 324 मे विविध दैविक अन्तरिक्ष अद्भुत आदि उत्पातो तथा विभिन्न रोगो तथा भयो की शान्ति विधि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अग्निपुराण मे (21–106 अध्यायो मे) अनेक स्मार्त एव तान्त्रिक कर्मों का विवरण मिलता है। इन अध्यायो मे इसमे विभिन्न देवी देवताओ की सामान्य पूजा (स्नानादि कर्मों के वर्णनो के साथ तथा प्रतिष्ठा विधि (वास्तु पूजा प्रसाद मे देवता स्थापन प्रतिमाओ के लक्षण शालिग्रामो के लक्षण शान्तिकर्म अधिवास ध्वजारोपण होम दीक्षा आदि के साथ) कही गयी है।

4–ज्योतिष–

वैदिक यज्ञो के शुभ मुहूर्त निर्धारण के लिए ज्योतिष नामक वेदाग की आवश्यकता हुई। वेदाग ज्योतिष मे इसका महत्व बताते हुए कहा गया है कि यह शास्त्र यज्ञो का काल विधान बताता है।[1]

5–निरुक्त–

निरूक्त मे वैदिक शब्दो की निर्वचन की पद्धति दी गयी है। सम्प्रति यास्क महोदय (800 ई0पू0 के लगभग) कृत निरूक्त ही इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। यह निघण्टु नामक वैदिक शब्द कोश पर आश्रित है तथा उसी का व्याख्या ग्रन्थ है। इसमे वैदकि मन्त्रो की निर्वचनात्मक व्याख्या का प्रशसनीय प्रयास है। इस वेदार्थ पद्धति को नैरूक्त पद्धति कहा जाता है। यास्क महोदय ने वैदिक देवता वाचक शब्द–अग्नि इन्द्र वरूण सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे सबद्ध मन्त्रो के चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किये है–आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक और आधियज्ञ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यास्क की प्रक्रिया को प्रामाणिक माना और तदनुसार ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य लिखा है।[2]

6–व्याकरण–

मुख व्याकरण स्मृतम– अर्थात व्याकरण को वेद पुरूष का मुख माना जाता है।[3] मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है। तदवत् व्याकरण भी पद–पदार्थ एव वाक्य–वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा

1–वेदाङ्ग ज्योतिष–श्लोक–3

2–डा0 कपित देव द्विवेदी कृत–सस्कत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास–अध्याय 1(या) वेदाग निरूक्त–पृ0–89

3– पाणनीय शिक्षा–श्लोक 42

प्रकृति–प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है।

अग्निपुराण के 349वे अध्याय से 359वे अध्याय तक लगभग दस अध्यायो मे व्याकरण शास्त्र का वर्णन किया गया है। इसके प्रारम्भ मे कहा गया है कि अब कुमार कार्तिकेयजी ने कात्यायन को जिसका उपदेश दिया था उस व्याकरण का वर्णन करूगा–

वक्ष्ये व्याकरण सार सिद्ध शब्द स्वरूपकम्।

कात्यायन विबोधाय बालाना बोधनाय च।।[1]

अर्थात बालको को व्याकरण का ज्ञान कराने के लिए सिद्ध शब्दरूप सारभूत व्याकरण का विवेचन हुआ है जिनका व्याकरण शास्त्रीय प्रक्रिया मे व्यवहार होता है। अइऽण' से लेकर हल तक 14 माहेश्वर सूत्र एव अक्षर समाम्नाय कहलाते है इनमे अण् आदि प्रत्याहार बनते है। उपदेशावस्था मे अन्तिम हल तथा अनुनासिक अच् की इत् सज्ञा होती है।[2] अन्तिम इत्सज्ञक वर्ण के साथ गृहीत होने वाला आदि वर्णन उन दोनो के मध्यवर्ती अक्षरो तथा अपना भी ग्रहण कराने वाला होता है। इसी को प्रत्याहार भी कहते है। जो इस प्रकार है–

अण एङ अट यम अथवा (यञ्) छब झष् भष अक इक उक अण इण यण इन तीनो णकार लणसूत्र के णकार से बनते है। अम् यम् ङम् अच इच् एच् ऐच अय मय् झय खय् जश् झर खर चर यर शर अश् हश् वश् झश अल् हल् बल् रल् झल् शल्।[3]

<u>क्</u>– सन्धि–

अग्निपुराण के 350वे अध्याय मे सन्धियो का वर्णन करते हुए तीन प्रकार की सन्धिया बतायी गयी है जो इस प्रकार है–स्वर व्यजन तथा विसर्ग इसके अतिरिक्त इन सन्धियो के भेदो तथा अनेक उदाहरणो का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

<u>ख</u>– विभक्ति–

351वे अध्याय मे सुप् आदि विभक्ति सिद्ध रूपो का वर्णन किया गया है। जिसमे दो प्रकार की विभक्तिया बतायी गयी है–सुप् और तिङ[4] इनमे सुप विभक्तिया सात हैं। सातो विभक्तिया प्रतिपादिक सज्ञा वाले शब्दो से परे प्रयुक्त होती है।[5]

1–अग्निपुराण 349/1

2–अष्टाध्यायी उपदेशेऽजनुनासिकइत 1/3/2

3–अग्निपुराण 349/2–1

4–अष्टाध्यायी–(ङयाप्प्रातिपदिकात) सुप्तिङन्तम् पदम्–1/4/14

5–अग्निपुराण 351/1–3

जो धातु प्रत्यय तथा प्रत्यान्त से रहित अर्थवान शब्द है उसे प्रातिपदिक कहते है।[1] अजन्त और हलन्त ये दो प्रकार के प्रातिपदिक कहे गय है। प्रत्येक के पुर्लिंग स्त्रीलिग तथा नपुसकलिग के भेद से तीन भेद होते है।

अग्निपुराण के 351 वे अध्याय से 353वे अध्याय तक मे पुल्लिग स्त्रीलिग तथा नपुसकलिग के प्रतिनिधि शब्दो तथा इसके अतिरिक्त जिसके विषय मे नही कहा गया है उनके भी प्रतिनिधि शब्दो का विस्तार से वर्णन किया गया है।

354वे अध्याय मे कारक निरूपण किया गया है–

कारक सप्रवक्ष्यामि विभक्त्यर्थ समन्वितम्।[2]

अर्थात विभक्त्यर्थ से युक्त कारक का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है 'ग्रामोऽस्ति' यहा प्रथमा विभक्ति हुयी है। हे महार्क यहा सम्बोधन मे प्रथमा है। इह नौमि विष्णु श्रिया सह यहा विष्णु मे द्वितीया हुयी है। कर्ता की प्रथमा विभक्ति होती है। स्वतन्त्रकर्ता हेतुकर्ता कर्मकर्ता उक्त कर्ता अनुक्तकर्ता ये पाच प्रकार के कर्ता कहे गये है। इनमे से स्वतन्त्र कर्ता उसे कहते है जो (क्रिया मे) स्वतन्त्र रूप से विवक्षित रहता है। जैसे– विद्या ता कृतिन समुपासते यहा कृतिन कर्ता है। हेतुकर्ता का चैत्रो मैत्र लम्भयते। कर्मकर्ता का उदाहरण– स्वय भिद्यते प्राकृत धी (प्राकृत बुद्धि के व्यक्ति मे स्वय भेद उत्पन्न हो जाता है) जो कर्ता उक्त होता है उसे उत्तम तथा जो अनुक्त होता है उसे अधम कहते है। अनुक्तकर्ता जैसे– धर्म शिष्ये व्याख्यायते (शिष्य के लिए धर्म की व्याख्या की जाती है।)[3] इसी प्रकार अन्य विभक्तियो के भेदो तथा उदाहरणो का सविस्तार वर्णन किया गया है।

<u>ग–तद्धित–</u>

अग्निपुराण के 356वे अध्याय मे तद्धित प्रत्यय का वर्णन किया गया है। तद्धित तीन प्रकार के होते हैं–सामान्या वृत्ति तद्धित अव्यय तद्धित तथा भववाचक तद्धित। 'सामान्या वृत्ति तद्धित' इस प्रकार है– अस शब्द से लच् प्रत्यय होने पर असल बनता है इसका अर्थ बलवान होता है।[4] इसी प्रकार अन्य तद्धितो का भी इस पूरे अध्याय मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

<u>घ–उणादिसिद्धरूपम–</u>

1–अष्टाध्यायी–अर्थवद्धातुप्रत्यय प्रतिपदिकम् 1/2/45 अग्निपुराण 351/23(1)

2–अग्निपुराण 354/1

3–अग्निपुराण 354/2–3

4–अग्निपराण– 356/1

अग्निपुराण के 357वे अध्याय मे उणादि सिद्ध रूप प्रत्ययो का वर्णन किया गया है। जिसमे उण् प्रत्यय लगाने पर–कारू (शिल्पी) जायु मायु गोमायु आयु स्वादु आदि शब्द की व्युत्पत्ति होती है क्रन् प्रत्यय लगाने पर गृध्र बनता है।[1] इसी प्रकार अन्य उणादि प्रत्ययो द्वारा विभिन्न शब्दो की निष्पत्ति बतायी गयी है।

ड–तिड विभक्तिसिद्धरूपम्–

358वे अध्याय मे तिड् विभक्ति तथा आदेश के सम्बन्ध मे बताया गया है कि भाव कर्म और कर्तृ तीनो मे तिड प्रत्यय रहते हैं। कर्तृ मे सकर्मक और अकर्मक दो पद कहे गये हैं। उसका आदेश सकर्मक और अकर्मक कहे गये हैं। वर्तमान मे लट लकार विधि आदि मे लिगलकार आशीर्वाद मे लोट अनद्यतन भूत मे लड लकार (सामान्य) भूतकाल मे लुड लकार परोक्ष मे लिट अनद्यतन भावी मे लुट आशी तथा शेष अर्थ मे लिङ् भविष्य मे लृट लृड निमित्त मे लिड और क्रियातिपत्ति मे तड प्रत्यय होते है। ये तिड प्रत्यय 18 होते है। नौ आत्मने पवी तथा नौ परस्मैपदी। परस्मैपदी के तीनो वचनो तथा तीनो पुरूषो के प्रत्यय क्रमश इस प्रकार है–तिप् तस् अन्ति सिपथसथ मिप वसमस। आत्मने पदी के प्रत्यय इस प्रकार है–ते अताम अन्त थ आसाथाम ध्वम इ वहि महि। भू आदि धातुये है इसके अतिरिक्त अन्य धातुये भी इस प्रकार है–एधि पचि नन्दि ध्वसि शसि पदि त्वदि।[2] आदि इन सबका विस्तृत वर्णन इस अध्याय मे किया गया है।

च–समास–

अग्निपुराण के 355वे अध्याय मे समास के विषय मे बताते हुए कहा गया है–

षोढा समास वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुन ।

नित्यानित्य विभागेन लुगलोपेन च द्विधा।।[3]

अर्थात सगास छ प्रकार के होते है। जिसके पुन अटठाईस भेद होते हैं। इनमे से कुछ समास नित्य तथा कुछ अनित्य होते हैं। लुक और अलुक–ये दो उनके पैर और होते हैं। नित्य समास के उदाहरण जैसे कुम्भकार और हेमकार इत्यादि। अनित्य समास का उदाहरण जैसे–राज्ञ पुमान् का राजपुमान हो जाना। लुक समास का उदाहरण है–कष्टश्रित और अलुक समास का कष्ठे काल इत्यादि।[4] छ समास इस प्रकार

1–अग्निपुराण 357/1–24
2–अग्निपुराण 358/1–7
3–अग्निपुराण 355/1
4–अग्निपुराण 355/2–4

है–

1–तत्पुरूष–उत्तर पदार्थ की प्रधानता से युक्त होता है। प्रयमा आदि विभक्तियो से युक्त होने के कारण तत्पुरूष समास आठ प्रकार का होता है। प्रथमा पुरूष समास का उदाहरण है–पूर्वकाय–पूर्व कायस्थ

2–कर्मधारय–विशेष्य विशेषण पदो पर आधारित होता है। यह सात प्रकार का होता है। जिसमे विशेषण पूर्वपद का उदाहरण है–नीलोत्पल।

3–द्विगु–सख्या पूर्व पद वाला समास द्विगु है। यह दो प्रकार का होता है एकवद्भाव तथा अनेकधा स्थिति को लेकर ये भेद किये गये हैं। जिसमे एक वद् भाव का उदाहरण है–द्विशृगम।

4–द्वन्द–द्वन्स समास मे दोनो पदार्थों की प्रधानता होती है। यह भी दो प्रकार का होता है। 1–इतरेतर योगी 2–समाहार वान। इतरेतर योगी का उदाहरण है–रूद्र विष्णु।

5–अव्ययी भाव–पूर्व पदार्थ प्रधान होता है। यह दो प्रकार का होता है। नामपूर्व पद तथा अव्यय पूर्व पद। अव्ययपूर्व पद का उदाहरण है–उपकुमारम्।

6–बहुव्रीहि–अन्य अथवा वाहयपदार्थ की प्रधानता से युक्त होता है। बहुव्रीहि समास भी सात प्रकार का होता है। द्विपद बहुव्रीहि का उदाहरण–आरूढभवनो नर

इस प्रकार इन छहो समासो[1] के अटठाइस भेदो का उदाहरण सहित वर्णन इस अध्याय मे विस्तार से किया गया है।

<u>छ–कृत्सिद्धरूपम्–</u>

अग्निपुराण के 359वे अध्याय मे कृत्सिद्धरूप का वर्णन है। जिसमे कहा गया है कि भाव कर्म और कर्तृ इन तीनो मे कृत् प्रत्यय होते है। अच् ल्युट क्तिन् घञ युच् और अकार प्रत्यय भाववाचक शब्दो मे लगते है जैसे–अच् प्रत्यय लगने पर विनय अप लगने पर उत्कर प्रकर आदि बनते हैं। ल्युट प्रत्यय लगने पर रूप बनता है शोभनम्।[2] इसी प्रकार अन्य कृत् सज्ञक तथा विभिन्न प्रत्ययो का वर्णन किया गया है। वेद मे ये प्रत्यय बहुल प्रकार से (अनियमित रूप से) होते है।

<u>विभिन्न वर्गो के शब्द–</u>

अग्निपुराण के अ0 360–367 तक के कोश परक ये अध्याय सर्वथा अमर कोश पर आधारित हैं। इनके प्राय सभी वाक्य अमरकोश के वाक्य (क्वाचित अल्पाधिक परिविर्तत रूप मे) ही है। शब्दो का क्रम भी

1–अग्निपुराण– 355/2–19

2–अग्निपुराण– 359/1–2

प्रायेण सर्वत्र अमरकोशानुसारी है क्वचित भिन्नता देखी जाती है।[1] इन अध्यायो मे विभिन्न वर्गों के शब्दो के पर्यायो का विस्तार से उल्लेख किया गया है–

1–स्वर्गपातालादिवर्गा –

इसमे स्वर्ग पातालादिवर्ग के नामो के पर्याय बताये गये है जिसको स्वर्ग का पर्यायवाची शब्द स्व नाक त्रिदिव द्यो वि और त्रिविष्टय है।[2]

2–अव्ययवर्ग–

इसके अन्तर्गत अव्यय शब्दो का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि आङ का प्रयोग ईषत् अभिव्याप्ति सीमा के अर्थ मे होता है कही–कही वह प्रगृह्य के रूप मे भी होता है और कभी–कभी उससे पीडा और क्रोध अर्थ भी ज्ञात होता है।[3] इसी प्रकार समस्त अव्यय शब्दो का विभिन्न अर्थों मे प्रयोग का विस्तार से वर्णन किया गया है।

3–नानार्थवर्ग–

इसमे वर्ग के अन्तर्गत कई अर्थों मे प्रयुक्त होने वाले एक ही शब्द आते है जैसे–आकाश और त्रिदिव के अर्थ मे नाक शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार भुवन तथा जन (समूह) के अर्थ मे लोक शब्द पद्य एव यश के अर्थ मे श्लोक और शर (बाण) तथा खडग के अर्थ मे सायक शब्द प्रयुक्त होता है।[4] इसी प्रकार के अनेक नानार्थ शब्दो का विस्तार से वर्णन किया गया है।

4–भूमिवनौषाधिदिवर्ग–

इसमे भू पूर पर्वत वन औषधि और सिह आदि वर्गों के शब्दो का वर्णन किया गया है। जिसमे एक ही अर्थ के द्योतक अनेक शब्दो का उल्लेख किया गया है जैसे–भू के पर्यायवाची है–अनन्ता क्षमा धात्री का मृत और मृत्तिका मिटटी के अर्थ मे और मृत्सा तथा मृत्स्ना अच्छी मिटटी के अर्थ मे प्रयुक्त होती है।[5] इसी प्रकार अनेक शब्दो का उल्लेख विस्तार से किया गया है।

5–नृब्रह्मक्षतविटशूद्रवर्ग–

इस वर्ग के अन्तर्गत मनुष्य ब्राहमण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्गों का वर्णन उनके नामानुसार किया

1–अग्निपुराण (हि० सा० स० सस्करण) भूमिका पृष्ठ–16
2–अग्निपुराण 260/1
3–अग्निपुराण 261/1
4–अग्निपुराण 262/1
5–अग्निपुराण 263/1

गया है। जिसमे नर पचजन मर्त्य और मनुष्य पुरूष मात्र के अर्थ मे प्रयुक्त होते है।[1] इसी प्रकार के अनेक शब्दो का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

6–ब्रहमवर्ग–

इस वर्ग क अन्तर्गत विभिन्न अर्थों मे प्रयुक्त होने वाले शब्दो का उल्लेख इसमे किया गया है जैसे–वश अन्ववाय गोत्रकुल और अभिजनवश के अर्थ मे मन्त्रो की व्याख्या करने वाले के अर्थ मे आचार्य यज्ञ मे व्रत की दीक्षा ग्रहण करने वाले के अर्थ मे आदेष्टा यण्टा और यजमान का प्रयोग होता है।[2]

7–क्षत्रविटशूद्रवर्ग–

मूर्धाभिषिक्त राजन्य बाहुत क्षत्रिय और विराट ये क्षत्रिय के वाचक शब्द है। चक्रवर्ती शब्द सर्वभौमि महाराजधिराज अर्थ मे प्रयुक्त होता है[3] इसी प्रकार विभिन्न क्षत्रविट शूद्र वर्गों का निरूपण तथा सामान्यनाम लिगो[4] का वर्णन अगिनपुराण मे विस्तार से किया गया है।

(3)उपवेद–

अत्यन्त सूक्ष्म गवेषणपूर्वक विचार करने पर श्रृग्वेद का स्थापत्य वेद यजुर्वेद का धनुर्वेद सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का आयुर्वेद उपवेद निश्चित होता है। अग्निपुराण मे तो आयुर्वेद के उपभेदो का भी वर्णन प्राप्त होता है। अग्निपुराण के 289 वे अध्याय मे शालिहोत्रसार अश्वायुर्वेद का वर्णन है और 291 वे अध्याय मे बुध के ग्रन्थ गजवैद्यक का सराश वर्णित है जिसे गजायुर्वेद कहा गया है। इसके साथ ही 292 वे अध्याय मे गवायुर्वेद तथा शान्त्यायुर्वेद का वर्णन है। इनमे घोडे हाथी तथा गाय आदि की चिकित्सा का वर्णन मिलता है। 282 वे अध्याय मे वृक्षायुर्वेद का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्य पशुओ की चिकित्या उनके लक्षण तथा शान्ति के मन्त्र भी अग्निपुराण मे विस्तार से विवेचित है।

1–धनुर्वेद– अग्पिुराण के 249 अध्याय से 252 अध्याय तक के इन चार अध्यायो मे धनुर्वेद का विस्तार से वर्णन किया गया है। जिसमे सर्वप्रथम धनुर्वेद के भेदो का उल्लेख करते हुये कहा गया है –

चतुष्पाद धनुर्वेद वदे पञ्चविद्य द्विज।

रथनागाश्वपत्तीना योधाश्चाऽऽश्रित्यकीर्तितम्।।[5]

अर्थात– रथ, गज अश्व पैदल और योद्धाओ को मिलाकर धनुर्वेद के पाच भेद कहे गये है। इसके अतिरिक्त

1–अग्निपुराण 264/1
2–अग्निपुराण 265/1
3–अग्निपुराण 266/1
4–अग्निपुराण 269
5–अग्निपुराण –249/1

यन्त्रमुक्त पाणिमुक्त मुक्तसन्धारित अमुक्त और बाहुयुद्ध – ये पॉचो भी इसी के भेद के है। इनके अस्त्र और शस्त्र के भेद से पहले इनके दे भेद होते है और फिर ऋजु और माया के भेद से भी इन पॉचो के पुन भेद हो जाते है।

इनमे से डॉड धनुष तथा यन्त्र आदि से जो युद्ध किया जाता है उसे यन्त्रमुक्त कहते है। शिला तोमर और यन्त्र आदि से किये जोने वाले युद्ध को पाणिमुक्त भाले आदि से होने वाले युद्ध को मुक्त सहारित खडग आदि से होने वाले युद्ध को बाहुयुद्ध कहते है। धनुष से होने युद्ध को मध्यम खडग से होने वाले युद्ध को अघम और बाहु से होने वाले को अति अघम कहा गया है। धनुर्वेद की शिक्षा देने और लेने का अधिकार केवल ब्रह्मण एव क्षत्रिय को ही था। शुद्रो को युद्ध करने का अधिकार केवल आपत्ति काल मे था वह भी उसकी शिक्षा लेने के बाद।[1]

पदाति योद्ध का उत्तम कोटि का धनुष चार हाथ मध्यम कोटि का साढे तीन हाथ और निम्न कोटि का तीन हाथ लम्बा होता है। धनुष का प्रयोग अश्वारोही गजारोही तथा रथारोही योद्धा द्वारा भी किया जाता है।[2]

योद्धा को अधिक उत्तम बताया गया लक्ष्य को अपने बाण के पुख्भाग से आच्छादित करके उसकी ओर दृढता पूर्वक शर–सधान करे। जिसने अपने मन नेत्र और दृष्टि के द्वारा लक्ष्य के साथ एकता स्थापना की कला सीख ली है वह योद्धा यमराज को भी जीत सकता है।[3] अपने हाथ बुद्धि और दृष्टि को वश मे कर लेने के बाद लक्ष्य बॉधने का अभ्यास करके धनुर्विघा मे सिद्वि प्राप्त करके योद्धा को घोडे पर सवार होना चाहिये।[4]

ढाल तलवार आदि धारण करने वाले योद्धा को (32 प्रकार की) पैतरेबाजी फन्दाडालने की (दशा) विधि ायो का ज्ञान होना चाहिये तथा युद्ध मे प्रयुक्त होने वाले शास्तो–तोमर गन्दा फरसे मुक्दर भिन्दिपाल लगुड कृपाण क्षेपणी आदि के प्रयोग विधि का ज्ञान होना चाहिये। युद्ध मे कवच धारण करके अस्त्र शस्त्र से सम्पन्न होकर वाहनो पर आरूढ होकर उपस्थित होना चाहिये। प्रत्येक अस्त्र–शस्त्रो का अपने मन्त्रो से पूजन करके त्रैलोक्य मोहन कवच का पाठ करके जो युद्ध मे जाता है वह शत्रुओ पर विजय पाता है तथा भूतल की रक्षा करता है।[5]

2–आयुर्वेद–

1–अग्निपुराण –249/4–8
2–अग्निपुराण –249/36–37
3–अग्निपुराण –250/17–19
4–अग्निपुराण –251/1
5–अग्निपुराण –252/1–33

आयुर्वेद का उल्लेख करते हुये अग्निपुराण मे कहा गया है–

आयुर्वेद प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत।

देवोधन्वन्तरि सार मृत सजीवनीकरम्।।[1]

अर्थात् मृतक्रो को जीवित करने वाले जिस आयुर्वेद को भववान धन्वनरि ने सुश्रुत के लिये कहा था उस आयुर्वेद को भगवान धन्वन्तरि ने सुश्रुत के लिए कहा था उसका आयुर्वेद का सार इस प्रकार है।

ज्वर से पीडित व्यक्ति के बल की रक्षा के लिए धान का लावा सोठ और माड के साथ देना चाहिये। नागरमोथा चित्तपापडा रवश लालचन्दन सुगन्धबाला एव सोठ से पका हुआ जल तथा ज्वर–नाश के लिए पीने को देना चाहिये। भोजन के लिए पुराना साठी का चावल नीवार लाल चावल शालिचावल प्रमोदक तथा अन्य प्रकार के चावल ज्वर मे खिलाना हितकारी होता है। तथा मूग मसूर चना कुलथी मोथी अरहर लावा आदि पक्षियो के मास का रस करेला खेकशा परवल कुन्दरू निम्बपत्र का साग चित्रपापडा और आनार लाभकारी होता है।[2] अधोगामी रक्तपित्त मे वमन तथा उर्ध्वगामी रक्तपित्त मे विरेचन कराने को कहा गया है।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के रोगो तथा उनके निवारणार्थ सिद्ध औषधियो का विस्तार से वर्णन किया गया है। आगे दो अध्याय (280–281) मे भी इसी प्रकार रोगो तथा औषधियो का वर्णन है।

280 वे अध्याय मे कहा गया है कि–शारीरिक मानसिक आगन्तुक तथा सहज चार व्याधिया होती हैं। जिसमे ज्वर कुण्ठ आदि शारीरिक तथा क्रोध आदि मानसिक व्याधि कही जाती है। चोट प्रहार या अन्य किसी प्रकार के वाहयाघात के कारण होने वाली व्याधि आगन्तुजव्याधि तथा भूख जरा (बुढापा) आदि व्याधिया स्वाभाविक व्याधि कही जाती है। इनके परिहार के लिए रविवार आदि मे घृत–गुण आदि के दान का कथन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिशिर आदि धर्म का कथन रागोत्पत्ति के निदान का निरूपण बात प्रकृति आदि के लक्षण का कथन किया गया है।[3]

281वे अध्याय मे कहा गया है कि रस वीर्य और विपाक को जानने वाला राजा आदि की रक्षा करता है। मधुर अम्ल और लवण रस सोम से उत्पन्न तथा कटु तिक्त एव काषाय रस आग्नेय कहे गय हैं। द्रव्य का तीन प्रकार का विपाक होता है–कटु अम्ल और लवण। उष्ण और शीत दो वीर्य कृति हैं।[4] इसके अतिरिक्त काषाय कल्पना काषाय मे द्रव्य परिमाण का कथन लेह चूर्ण का वर्णन निदाघ आदि मे मालिश कराने का

1–अग्निपुराण –279/1
2–अग्निपुराण–279/2–7
3–अग्निपुराण–280/1–2
4–अग्निपुराण–281/1–3(4–33)

विधान अजीर्णता मे परिश्रम न करने का कथन व्यायाम आदि के द्वारा कफ नाश आदि का कथन विस्तार से किया गया है।

3—वृक्षायुर्वेद—

अग्निपुराण के 282वे अध्याय मे वृक्षायुर्वेद का कथन किया गया है—

वृक्षायुर्वेदमाख्ये प्लक्षश्चोत्तरत शुभ।

प्राग्वटो याम्यस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थ क्रमेण तु।।[1]

पारवरि (पाकरि) उत्तर दिशा मे बरगद पूर्व दिशा मे आम्र दक्षिण दिशा मे तथा पीपल पश्चिम दिशा मे शुभ कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय मे विभिन्न प्रकार के वृक्षो को लगाने के लिए शुभ मुहूर्तो स्थानो तथा विधियो का विस्तार से वर्णन किया गया है। जिसमे ब्राहमण और चन्द्रमा का पूजन पूर्वक वृक्षारोपण करने का विधान अशोक वृक्षो को ग्रीष्म ऋतु मे साय प्रात सीचने का वर्णन शीतकाल मे एक दिन का अन्तर करके सीचने का कथन तथा वृक्षो के फल फूल की समृद्धि के लिए बायडिग और घृत आदि से सींचने का निरूपण विस्तार से किया गया है।

4—गजायुर्वेद—

अग्निपुराण के 287वे अध्याय मे गजायुर्वेद का उल्लेख किया गया है जिसमे अगराज लोमपाद के प्रति हस्तिशास्त्र विद् पालकाप्य ने जो कहा उसका सार यहा दिया गया है।

हाथी के लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

दीर्घहस्ता महोच्छवास प्रशस्ताते सहिष्णव।।

जिसकी सूड लम्बी हो अतिबलवान हो एव सहनशील हो वह हस्ती प्रशसनीय माना जाता है। इसके साथ यह भी कहा गया है कि सुलक्षणो से युक्त हाथी को ही रखना चाहिये जिनके लक्षण अच्छे न हो उन्हे नही रखना चाहिये।[2]

इसके अतिरिक्त इस अध्याय मे विभिन्न प्रकार के गजरोगो तथा उनके निवारणार्थ औषधियो का कथन मद से क्षीण हुए हाथी का पय पान आदि का वर्णन तथा हाथी के नेत्रो मे गौरैया आदि के मल का अजन अजित करने का कथन तथा अन्तत धुलियुक्त और करसा से युक्त स्थान हाथियो के सोने के लिए बताया गया है शरद और ग्रीष्म मे घी का सेक उत्तम बताया गया है।[3] 291वे अध्याय मे गज रोग नाशक शान्ति प्रयोगो का वर्णन

1—अग्निपुराण — 282/1

2—अग्निपुराण — 287/1—3

3—अग्निपुराण — 287/30—33

है।

5–अश्वायुर्वेद–

अग्निपुराण के 280 वे तथा 290 वे अध्याय मे शालिहोत्रसार अश्वायुर्वेद का वर्णन है–

अश्वाना लक्षण वक्ष्ये चिकित्सा चैव सुश्रूत।[1]

अत अश्वायुर्वेद के ज्ञाता शालिहोत्र ने सुश्रूत के प्रति अश्वो के लक्षण एव उनके रोगो की चिकत्सिा का वर्णन किया। अश्वायुर्वेद के दो वक्ता है। धन्वन्तरि (288) तथा शालिहोत्रा (289–290) अश्वायुर्वेद मे सर्वप्रथम अश्व वाहनो के सम्बन्ध मे अश्विन्यादि नक्षत्रो की प्रशस्ति की गयी है। घोडे के मुह पर प्रहार करने का निषेध बताया गया है। अश्व के शरीर मे ब्रहमा आदि देवताओ को जोडने का प्रकार वर्णन तथा अश्व की प्रार्थना की गयी है। अश्वाहोहण तथा भक्खी आदि के काटने से श्रम पिनाशक अग लेपआदि का कथन किया गया है। गुण विशेष के दर्शन से अश्वो मे द्विज आदि जातीयता का वर्णन है।[2]

इसके बाद अश्वो के लक्षणो का वर्णन किया गया है। अश्वो के अतिसार आदि रोगो मे रोग नाशक का आदि का कथन है। अनार त्रिफला सोठ पीपर मिर्च आदि को अश्वो का पोषक बताया गया है। अश्व शोध आदि के नाशक लेप आदि का कथन है।[3] अन्तत अश्व रोग नाशक शाक्ति प्रयोगो का विस्तार से वर्णन किया गया है।[4] गवायुर्वेद– गवायुर्वेद के वक्ता धन्वतरि है। इसमे गो चिकित्सा के साथ गोपक शान्ति कर्म का वर्णन लिया गया है। गो शान्तिमावदे[5]

गवायुर्वेद मे सर्वप्रथम गोमाहात्म्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। तत्पश्चात महा शान्तपन ब्रत एव कृच्छ अतिकृच्छ और तप्तकच्छ आदि व्रतो का कथन किया गया है। गोमती विद्या के जप से गोलोक की प्राप्ति का वर्णन है। गोरोग नाशक तेल आदि का उल्लेख किया गया है। अन्तत कहा गया है कि दूधवाली गौएँ ब्राहमण को शाक्ति कर्म के लिये देनी चाहिये।[6]

इसके अतिरिक्त अग्निपुराण के 295 वे अध्याय मे मत्र प्रयोग द्वारा सर्पदश की चिकित्सा कही गयी है। इस अध्याय मे इस विषय से सम्बन्धित अनेक आवश्यक बातो का कथन किया गया है। 298 मे सर्पादि की चिकित्सा

का वर्णन है।

10—ज्योति शास्त्र—

अग्निपुराण के 121 वे अध्याय मे ज्योति शास्त्र का निरूपण करते हुये कहा गया है—

ज्योति शास्त्र प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेक।

चातुर्लक्षस्य सार यत्तज्ञात्वा सर्वविद् भवेत् ।।[1]

शुभ—अशुभ विभेदक ज्योति शास्त्र चाट लाख श्लोको मे निबद्ध है। इसका सार जान लेने के पश्चात समस्त वस्तुओ का ज्ञान हो जाता है।

स्त्री के विवाह के सम्बन्ध मे कहा गया है कि षडष्टक द्विर्द्वादश एव त्रिकोण नव पचम दोष मे विवाह नही करना चाहिये। शेष मे विवाह गुण होता है तथा दम्पति मे प्रेम बना रहता है। यदि वर और वधू के राशि स्वामियो मे परस्पर मित्रता हो या दोनो के राशिपति एक हो या तारा—मैत्री हो तो द्विर्द्वादश और त्रिकोण दोष मे भी विवाह समन्ध करने पर अच्छा प्रभाव होता है। बृहस्पति तथा शुक्र के अस्त होने पर विवाह सम्बन्ध करने से वर—वधू दोनो की मृत्यु हो जाती है। चैत्र तथा पौष के महीनो मे रिक्ता (चतुर्थी चतुर्दशी नवमी) तथा अमावस्या तिथियो मे मगल तथा सूर्यवारो मे विवाह करना अशुभ है। विवाह के लिये सध्या काल शुभ है।

विवाह कर्ण पुँसवन अन्नाप्रशन तथा प्रथम चूडा करण सस्कार मे वेघयुक्त नक्षत्र का त्याग करना चाहिये। रवि सोम बुद्ध तथा वृहस्पति और शुक्र इन पॉच वारो मे तथा माघ से प्रारम्भ करके छह मासो मे मेखला बन्धन सस्कारण करना शुभ होता है। उत्तरा श्रवण और श्रेष्ठा नक्षत्र मे राज्याभिषेक करना चाहिये। अश्विनी रोहणी मूल उत्तराषद उत्तर फाटगुनी उत्तर भाद्रपद मृगाशिरा स्वाती हस्त तथा अनुराधा मे नक्षत्र गृहारम्भ के लिये शुभ माने गये है। रविवार और मगलवार बावली खुदवाने तथा मकान बनवाने मे वर्जित है। घनिष्ठा उत्तरा तथा शतभिषा इन तीनो नक्षत्रो मे गृह—प्रवेश करना चाहिये। इसी प्रकार विभिन्न कार्यो के लिये अनेक प्रकार के शुभ—अशुभ लक्षणो का विस्तार से वर्णन किया गया है तथा अन्त मे यह भी कहा गया है कि अशुभो का शमन करना हो तो गायत्री मन्त्र पढकर पचधान्य तिल घी आदि से हवन करना चाहिये और ब्राह्मण को गो दान करना चाहिये।[2]

1—अग्निपुराण 121/1
2—अग्निपुराण — 121/2—77

11–सामुद्रिक शास्त्र–

अग्निपुराण के 243–244 वे अध्याय मे समुद्र नामक आचार्य द्वारा गर्ग से कहा गया स्त्री–पुरूष लक्षण शास्त्र का सार वर्णित है। यह सामुद्रिक विद्या कहलाता है। सामुद्रिक शास्त्र मे शरीर का कौन से अग किस प्रकार का होने पर किस (शुभ–अशुभ) भाव का सूचक होता है– इस विषय मे विस्तार से बताया गया है। यह विद्य अत्यन्त प्राचीन विद्या कही गयी है।

सर्वप्रथम पुरूष के शुभ लक्षणो का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जो एकाधिक द्विशुक्ल त्रिगम्भीर त्रित्रिक त्रिप्रलम्ब त्रिविनत त्रिवलीवान और त्रिकालज्ञ होता है वह पुरूष सुलक्षण हुआ करता है। इनमे एकाधिक द्विशुक्ल इत्यादि शब्दो का विवेचन करते हुये कहा गया है कि – धर्म अर्थकाम पुरूषार्थो का पालन करते हुये अपने कर्तव्य का पालन करना एकाधिक कहलाता है। जिसके दॉत और कनीनिकार्य शुक्ल हो उसे द्विशुक्ल कहते है। धैर्य कान और नाभि के गम्भीरता ही त्रिगम्भीरत्व' है। हाथो अण्डकोशो तथा शरीर के निचले भागो का लम्बा होना त्रिलम्ब है। जो व्यक्ति अपना तेज यश एव ऐश्वर्य से समस्त दिशाओ अपने देश व जाति को प्रभावित करता है उसे त्रिव्यापी कहते है। जिसके उदर मे तीन रेखाये पडी हुयी होती है उसे त्रिवलीमान कहते है। जो देवताओ ब्राहमणो एव गुरूजनो के प्रति विनम्र रहता है उसे त्रिविनत कहते है। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति का मुख ग्रीवा कान वक्षास्थल सिर उदर मस्तक हाथ और पैर विकार रहित और सुडौल हुआ करता है। वह सम्पूर्ण ससार मे सम्मानित होता है।[1]

इसके विपरीत लक्षणो से युक्त जिस व्यक्ति का मुख रूक्ष मॉसहीन दुर्गन्धयुक्त और उभरी हुयी नसो से युक्त होता है वह अभागा माना जाता है।

इसी प्रकार स्त्री के शुभ लक्षणो का वर्णन करते हुऐ कहा गया है कि जो स्त्री सर्वसुन्दरी हो जिसकी गति मत्तगजराज के समान हो दृष्टि मत्तकबूतर के समान हो जिसके केश अत्यन्त काले हो शरीर दुबला एव रोमरहित हो वह अच्छी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त जो अपने पति को प्राणो के समान मानने वाली तथा पति को प्रिय हो वह (अन्य शुभ) लक्षणो से हीन होते हुये भी सुलक्षणा होती है। इसके विपरीत लक्षणो से युक्त जिस स्त्री के (पैर की) छोटी उगुली भूमि का स्पर्श नही करती वह साक्षात मृत्यु रूप ही होती है।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अग्निपुराण मे शिक्षा एव साहित्य के श्रेष्ठ एव विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

1–अग्निपुराण –243/1–26
2–अग्निपुराण –244/1–6

उपसंहार

उपसहार

काव्य शास्त्रीय विवेचन अग्निपुराण का महत्वपूर्ण अश है। इस पुराण मे अध्याय 337 से 347 वे अध्याय तक काव्य शास्त्रीय सामग्री का सकलन किया गया है। अत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उपसहार के अन्तर्गत उसका सक्षेप मे विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1—काव्यशास्त्र—

काव्य शास्त्र का विषय काव्य सौन्दर्य के प्रतिमानो का विवेचन करना है। काव्य सौन्दर्य की परीक्षा के लिए गुण दोष रीति अलकार आदि जिन जिन तत्वो के ज्ञान की आवश्यकता होती है उन सभी का प्रतिपादन अग्निपुराण मे किया गया है। काव्य का स्वरूप प्रभुसम्मित वेद शास्त्रादि के वचनो से नितान्त भिन्न कान्ता सम्मित वचनो के समान प्रथमत तो आनन्दानुभूति है उपदेश उससे स्वत निस्सृत भले ही होता है।

2—काव्यलक्षण—

जगत के विभिन्न सुख—दुखो आघात—प्रत्याघातो सरस कटु अनुभवो से प्रेरणा पाकर गहन अनुभूतियो के क्षणो मे निष्पन्न भावुक हृदय की अनूठी गद्य पद्यमयी रचना काव्य कहलाती है। काव्य शास्त्र के शब्दो मे— तस्य कर्म स्मृत काव्यम् कवि की रचना को काव्य कहते है।[1] जो कवयन करे अर्थात वर्णन करे वह कवि है[2] और उसका कर्म काव्य है।

अग्निपुराण के 337वे अध्याय के प्रारम्भ मे तो सत्य ही कहा गया है—

नरत्व दुर्लभ लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा
कवित्व दुर्लभ तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा।।[3]

अर्थात् इस अनन्त जीवमय ससार मे नर देह दुर्लभ है और नरदेह प्राप्त होने पर भी विद्वान होना दुर्लभ है इसी प्रकार विद्वान् होने पर भी कवि होना दुर्लभ है और कवि हो जाने पर भी शक्ति (प्रतिभा) शाली होना तो परम दुर्लभ है। काव्य का लक्षण बताते हुए इस पुराण मे कहा गया है—

सक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।

1— कवि शब्दश्च कवृ वर्णे इत्स्य धातो काव्यकर्मणो रूपम् (काव्य मीमासा)
2— कवि मनीषी परिभू स्वयभू गुणवचन ब्राह्मादिभ्य कर्मणि चण्यञ — शुक्ल यजु सहिता म० 40 म० 8
3— अग्निपुराण 337/3

काव्य स्फुरदलकार गुणवद्दोषविवर्जितम्।

यो निर्वेदश्च लोकश्च सिद्धम अर्थादयोनिजम्।।[1]

अर्थात् अभीष्ट अर्थ को सक्षेप मे प्रकट कर देने वाली पदावली काव्य है। जिस वाक्य समूह मे अलकार स्पष्ट रूप से दिखाई दे तथा जो गुणो से युक्त दोषो से मुक्त हो उसे काव्य कहते है। काव्य का आधार वेद है अथवा लोक परन्तु अर्थ की दृष्टि से काव्य अयोनिज है अर्थात स्वत सिद्ध है।

अग्निपुराण का रचना काल यद्यपि निश्चित नही है तथापि इतना निश्चित है कि उपलब्ध काव्यलक्षणो मे सबसे प्रथम लक्षण यही है। लौकिक भाषा के द्वारा रामचरित का वर्णन करने वाले वाल्मीकि को आदिकवि की पदवी दी गयी। तदनन्तर महाभारत तथा पुराणो के रचयिता वेद व्यास कवि कहलाये हैं। इस तरह प्राय पुराण युग तक सभी (सुन्दर अथवा असुन्दर) वर्णन करने वाले विद्वानो के लिए कवि पद का प्रयोग होता रहा। अतएव राजनीति विषयो के प्रतिपादक शुक्राचार्य को भी कवि की सज्ञा दी गयी है।[2] किन्तु पुराण युग के बाद वर्णन कर्ता मात्र को कवि कहने की प्रथा समाप्त हो गयी। अब चमत्कार पूर्ण वर्णन करने वाले विद्वान को ही कवि कहा जाने लगा।

आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श नामक ग्रन्थ मे जों काव्यलक्षण किया है उसे अग्निपुराण के काव्यलक्षण से भिन्न नही कहा जा सकता क्योकि– इष्ट अर्थ से व्यवच्छिन्न पदावली काव्य का शरीर है ।[3] उनको इस लक्षण मे अग्निपुराणलक्षणगत सक्षेपात् और वाक्यम् इन दो पदो को हटा दिया गया है। आचार्य दण्डी अलकारवादी आचार्य है किन्तु यह बात महत्वपूर्ण है कि वे अलकार शब्द को सौन्दर्य अर्थ मे प्रयुक्त करते है–काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते[4] और उसे काव्य का अपरिहार्य तत्व स्वीकार करते है।

इसके बाद आचार्य रूद्रट ने काव्यलक्षण मे महान परिवर्तन करते हुए उसमे शब्द के साथ अर्थ को भी जोड दिया अर्थात उनके अनुसार शब्द तथा अर्थ दोनो को काव्य कहा।[5] आचार्य वामन ने इस विषय मे कुछ नवीनतम स्थापित करते हुए कहा कि काव्य गुण तथा अलकारो से सुसस्कृत शब्दार्थ युगल का वाचक है[6] आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश मे काव्य लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है–

1– अग्निपुराण 337/6–7

2–उशना भार्गव कवि (अमरकोश)

3–शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली–काव्यादर्श–दण्डी

4–काव्यादर्श 2/1

5– ननु शब्दार्थो काव्यम्

6–काव्यशब्दोऽय गुणालङ्कार सस्कतयो शब्दार्थयोर्वर्तते

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वापि[1] अर्थात दोषरहित और गुण सहित तथा स्पष्ट अलकार से रहित शब्दार्थ को काव्य कहते है।

3—काव्यभेद—

काव्य या नाटक मे सस्कृत भाषा का प्रयोग देवताओ के मुख से कराना चाहिये जबकि मनुष्यो के मुख से तीन प्रकार की प्राकृत (महाराष्ट्री शौरसेनी मागधी) का प्रयोग करना चाहिये। काव्य तीन प्रकार कहा गया है। गद्य पद्य और चम्पू।[2]

(1) गद्य—

पद (चरण) रहित पद समूह गद्य कहलाता है। इसके तीन रूप कहे गये हैं। चूर्णक उत्कलिका और वृत्तसन्धि। जो गद्य अल्पाल्प समास से युक्त हो और जिसमे कर्कश शब्दावलियो का प्रयोग हो उसे चूर्णक गद्य कहते हैं। जिस गद्य मे लम्बे—लम्बे समास हो उसे उत्कलिका गद्य कहते हैं। वृत्तसन्धि गद्य मे शब्दावली न तो अतिकर्कश होती है और न ही अति कोमल ही। उसमे समास भी प्रौढस्तर का नही होता तथा उसमे वृत्त की छाया अत्यन्त क्षीण हाती है।[3]

गद्य काव्य पाच प्रकार के होते है— आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा और कथानिका।

आख्यायिका—

जिस गद्यकाव्य मे ग्रन्थकर्ता के वश की प्रशस्ति विस्तार पूर्वक दी हुई हो कन्याहरण सग्राम विप्रलम्भजन्य विपत्तिया जहा हो रीति वृत्ति प्रवृत्ति अपने चमत्कृत रूप मे प्रस्तुत हो कथा भागो का नाम उच्छवास हो और चूर्णक नामक गद्य का प्रयोग तथा कथा नायक अथवा अन्य पात्रो के मुख से कही गयी हो उसे आख्यायिका नामक गद्यकाव्य कहते हैं।[4]

कथा—

जिसमे सक्षेप से श्लोको द्वारा कवि अपने वश की प्रशसा करता है और मुख्य कथा लाने के लिए अवान्तर कथा की सृष्टि करता है उसे कथा नामक गद्यकाव्य कहते हैं इसमे परिच्छेद नही होते।[5]

1—काव्यप्रकाश—प्रथम उल्लास—1
2—अग्निपुराण 337/8
3—अग्निपुराण 337/9—11
4—अग्निपुराण 337/12—14
5—अग्निपुराण 337/15(2)—16(1)

खण्डकथा–

यदि कवि कथा काव्य मे चतुष्पदी का प्रयोग करता है तो उसे खण्डकथा कहते हैं।[1]

परिकथा–

कथा और आख्यायिका के मिश्रित रूप को परिकथा कहते है।[2]

कथानिका–

जिसमे सुखपरक भयानक रस मध्य मे करूण रस और अन्त मे अद्भुत रस का परिपाक होता है उसे कथानिका नामक गद्य काव्य कहते है।[3]

(2) पद्य–

पद्य मे चार पद होते है। और इसके दो भेद हैं–वृत्त और जाति[4]

वृत्त–

जहा नियमानुसार अक्षरो की सख्या की जाती है उसे वृत्त कहते है।

जाति–

जहा मात्राओ की गणना की जाती है उसे जाति छन्द कहते है। छन्दशास्त्र के अनुसार सम अर्धसम और विषम छन्द के ये तीन भेद माने गये हैं। पद्य के सात भेद कहे गये है–महाकाव्य कलाप पर्याबन्ध विशेषक कुलक मुक्तक और कोश।[5]

महाकाव्य–

महाकाव्य का विभाजन सर्गों मे होता है और इसका प्रारम्भ सस्कृत से होता है। इसका इतिवृत्त ऐतिहासिक अथवा सभ्यो मे प्रचलित दो तथा विभिन्न प्रकार के छन्दो से समन्वित है। इसे नगर समुद्र पर्वत ऋतु चन्द्र सूर्य आश्रम पादप उद्यान जल क्रीडा मद्यपानादि उत्सवो तथा दूतीवचन आदि के वर्णन से युक्त होना चाहिये। इसका कथानक समस्त प्रकार की वृत्तियो तथा भावो से सकलित रीति रस तथा अलकारो से सम्पुष्ट होना चाहिये। इसमे विविध वाककौशलो की प्रधानता होते हुए भी इसकी आत्मा रस ही

1–अग्निपुराण 337/17
2–अग्निपुराण 337/19
3–अग्निपुराण 337/20
4–अग्निपुराण 337/21(1)
5–अग्निपुराण 337/23

कही जाती है।[1]

कलापक–

कैशिकी वृत्ति के प्रयोग से कोमल बनाया गया एक ही छन्द से युक्त हो उसे कलापक कहते है। इसमे प्रवास और पूर्वराग का समावेश होना चाहिये।[2]

सविशेषक–

जिसमे सस्कृत भाषा अथवा किसी अन्य भाषा मे काव्य सामग्री की प्राप्ति हो उसे सविशेषक कहते हैं।[3]

कुलक–

विभिन्न प्रकार के छ छन्दो से युक्त काव्य को कुलक कहते हैं।

मुक्तक–

जिसका प्रत्येक श्लोक सहृदयो को प्रभावित करने मे समर्थ हो उसे मुक्तक काव्य कहते हैं।

कोश–

शिरोमणि कवियो की प्रभावशाली सूक्तियो के सग्रह को कोश नामक काव्य कहते हैं। इसमे रस सतत प्रवहमान होता है। इसके दो भेद होते है– मिश्रित और प्रकीर्णक। मिश्रित काव्यश्रव्य तथा अभिनेय दोनो होता है।[4] प्रकीर्ण मे एक प्रकार की उक्तिया होती है।

विद्वानो ने काव्य के प्रथम दो भेद किये है– श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य अग्निपुराण मे दृश्य काव्य के सत्ताइस भेदो[5] का उल्लेख किया गया है जिसमे सर्वप्रथम नाटक का वर्णन है–

4–नाटक–

भारतीय परम्परा के अनुसार त्रेता युग मे ब्रह्मा के द्वारा नाटक की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तथा अथर्ववेद के आधार पर नाटयवेद की रचना की। इसे पचम वेद कहा गया जिसमे पाठय गीत अभिनय तथा रस चारो तत्वो को क्रमश ऋक साम यजुष् तथा अथर्ववेद से लिया गया है।

1–अग्निपुराण 337/24–33
2–अग्निपुराण 337/35 (1)
3–अग्निपुराण 337/35 (2)
4–अग्निपुराण 337/37–38
5–अग्निपुराण 338/1–3

ब्रह्मा की प्रेरणा से विश्वकर्मा ने नाटयगृह की रचना की और भरतमुनि ने अभिनय की व्यवस्था की। नाटयकला को पूर्ण बनाने के लिए शिव ने नाटय के साथ ताण्डव और पार्वती ने लास्य का समावेश कर दिया।[1]

काव्य के मूल भूत तत्वो का शास्त्रीय निरूपण सर्वप्रथम हमे भरतमुनि (200 ई0पू0) के नाटयशास्त्र मे उपलब्ध होता है। भरतमुनि ने प्रथम बार रस निष्पत्ति की प्रक्रिया का व्याख्यान करने वाला सूत्र– विभावानुभावव्यभिचारि–सयोगाद्रसनिष्पत्ति लिखा जो आगे चलकर काव्य शास्त्र मे रस सिद्धान्त की आधार पीठिका बना। नाटयशास्त्र मे कुल 4 अलकारो 10 गुणो तथा 10 दोषो का वर्णन किया गया है।

आचार्य धनजय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक मे नाटय का लक्षण बताते हुए हुए लिखा है–

अवस्थानुकृततिर्नाटय[2]

अर्थात अवस्था का अनुकरण नाटक कहलाता है। नट का भाव या कर्म नाटय कहलाता है वह कर्म है– *नायक की उदात्त अवस्थाओ का अनुकरण अथवा अभिनय कौशल के द्वारा अनुकार्य (राम आदि) के साथ तादात्म्य (नट मे यह राम है इस प्रकार की स्वरूपता) प्राप्त करना।*

अग्निपुराण मे नाटक त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) की प्राप्ति हेतुभूत साधन कहा गया है।[3] नाटक लक्षण की दो प्रकार की प्रवृत्तिया होती हैं–सामान्य और विशेष।

सामान्य प्रवृत्तिया सब नाटको मे होती हैं। पूर्ण रग के पश्चात देश और काल का सकलन रस भाव अनुभाव अभिनय तथा अक विभाजन कार्यावस्थाओ का प्रतिपादन ये सभी नाटक की सामान्य प्रवृत्तिया है। विशेष प्रवृत्तियो का प्रयोग कही–कही अवसर विशेष पर होना चाहिये।

पूर्व रग मे विधिपूर्वक नान्दी आदि बत्तीस अगो का निर्वाह करना चाहिये। नान्दी के पश्चात सूत्र धार का समावेश पाच बातो के निर्देश के लिए किया जाता है कवि की गुरूपरम्परा वशोल्लेख तथा पौरूष काव्य की पूर्वकथा का सबध और प्रयोजन है। नाटक मे आमुख अथवा प्रस्तावना का प्रयोग होता है जिसके तीन भेद है–प्रवृत्तक कथोद्घात और प्रयोगातिशय। नाटक के कथानक को शरीर कहा जाता है इसके दो भेद हैं–सिद्ध और उत्प्रक्षित। शास्त्रो से प्राप्त कथानक सिद्ध तथा कवि कल्पना प्रसूत कथानक उत्प्रेक्षित

1– दशरूपक (डॉ0 श्री निवास शास्त्री द्वारा सम्पादित–भूमिका पृष्ठ–1)

2–दशरूपक–प्रथम प्रकाश–7

3–अग्निपुराण 338/7

कहलाता है। नाटक मे पाच अर्थ प्रकृतिया (बीज बिन्दु पताका प्रकरी कार्य) पाच कार्यावस्थाये – प्रारम्भ प्रयत्न सद्भाव फलप्राप्ति फलयोग और पाच सधिया मुख प्रतिमुख गर्भ विमर्श और निर्वहण होती हैं। देश काल के बिना किसी भी कथानक की रचना नहीं होती इसलिए नियमपूर्वक उन दोनो का उपादान पद कहलाता है। इसके दृश्य सदा भारत के ही होने चाहिये और कालो मे सतयुग त्रेता तथा द्वापर इन तीन का ही उल्लेख होना चाहिये।[1]

5–रस–

इस पुराण मे श्रृगारादि निरूपण[2] के अन्तर्गत रस स्थायीभाव आलम्बन तथा उद्दीपन–विभाव के वर्णन के अनन्तर नायक–नायिका भेद की चर्चा पर प्रकाश डाला गया है। रीति निरूपण[3] मे रीति तथा वृत्ति के लक्षणो के अनन्तर इनके प्रकारो का भी वर्णन किया गया है। नृत्यादि मे अगकर्म निरूपण[4] के अन्तर्गत नायिकाओ की चेष्टाओ का विभाजन प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात नृत्यकला मे प्रयुक्त होने वाले अगो की चेष्टाओ तथा हाव–भावो का उल्लेख किया गया है। अभिनयादि निरूपण[5] मे चतुर्विध अभिनयो के निरूपण के उपरात श्रृगारादि रसो के लक्षण निर्दिष्ट किये गये हैं।

6–अलकार–

अग्निपुराण के 343 से 345 अध्याय तक अलकार के विषय मे विस्तार से वर्णन किया गया है जिसमे अलकार की परिभाषा उसके भेदो के परिगणन के साथ साथ शब्दालकार के नौ भेदो के लक्षणो का वर्णन किया गया है। शब्दालकार[6] के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक चित्र और बन्ध अलकारो का भेदोपभेद सहित विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

अर्थालकार[7] के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्वरूप आदि अलकारो का वर्णन है। तदनन्तर स्वरूप के अन्तर्गत उपमा रूपक सहोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास का परिगणन किया गया है। तत्पश्चात् उपमा के भेदोपभेद एव विरोध–मूल अलकारो के निरूपण के अनन्तर हेतु अलकार का भेदोपभेद सहित वर्णन किया गया है।

शब्दार्थालकार[8] के अन्तर्गत प्रशस्ति कान्त्यादि छ अलकारो का परिगणन है। तदनन्तर आक्षेप ध्वनि

1–अग्निपुराण 338/4–26
2–अग्निपुराण 339/6
3–अग्निपुराण 340
4–अग्निपुराण 341
5–अग्निपुराण 342
6–अग्निपुराण 343
7–अग्निपुराण–344
8–अग्निपुराण–345

के अन्तर्गत समासोक्ति पर्यायोक्ति और अपहनुति अलकारो का वर्णन किया गया है।

काव्यगुण विवेक[1] के अन्तर्गत गुण की परिभाषा उसके महत्व तथा उसके भेद एव उपभेदो की चर्चा की गयी है। साथ ही समस्त शब्द–गुण सात अर्थ–गुण छ तथा शब्दार्थ–गुण छ इस प्रकार समस्त गुणो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

काव्य दोष विवेचन[2] मे काव्य के दोषो की चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम वक्तृ–वाचक के भेद से दोष सात प्रकार के बताये गये हैं। तत्पश्चात् उनके भेदो एव उपभेदों का लक्षण बताकर इन दोषो के परिहार का भी वर्णन किया गया है। अन्तत कवि–समय–ख्याति के भेदोपभेदो का वर्णन है।

इस प्रकार इस पुराण मे काव्य नाटक रस रीति नाटक मे प्रयुक्त नृत्य तथा अभिनय प्रकार अलकार गुण तथा दोषो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन समस्त प्रकरणो मे विषय–निरूपण की प्रवृत्ति तो अल्प है पर सग्रह की प्रवृत्ति अधिक है।

उपसहार–

भारतीय वाडमय मे पुराणो की सर्वव्यापकता एव प्रभाव असदिग्ध है। वस्तुत ये हमारे पौराणिक धर्म और सस्कृति के मूर्तिमान गौरव के प्रतीक हैं। आपौरूषेय वेदो की भाति पुराणो को भी नित्य और प्रमाण रूप बताया गया है।[3] सभी पुराणो मे अग्निपुराण प्राचीनतम है इसे आग्नेय पुराण भी कहा गया है। अग्निपुराण पढने से मनुष्य का जीवन सार्थक होता है और वह मोक्ष की ओर अग्रसर होता हैं इस पुराण के अन्त मे इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए अग्नि देव स्वय कहते हैं कि– यह सप्रपन्च और निष्प्रपन्च (परा अपरा) दोनो विद्याओ से युक्त है। सप्रपन्च के अन्तर्गत वेद वेदान्त धर्मशास्त्र मीमासा न्याय आयुर्वेद पुराण धनुर्वेद गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र आदि आते हैं। निष्प्रपन्च के अन्तर्गत वेदान्त दर्शन तथा ब्रह्मसाक्षात कराने वाले ज्ञान आते है।

इस पुराण के अन्त मे व्यास ने स्वय इस पुराण के महत्व पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। यह पुराण परा और अपरा विद्या से युक्त है। इस पुराण तथा ब्रह्म का ध्यान करने से विष्णु की प्राप्ति होती है। विद्यार्थियो को विद्या राज्य की इच्छा करने वालो को राज्य पुत्रहीनो को पुत्र निराश्रयो को आश्रय

1–अग्निपुराण–346
2–अग्निपुराण 347
3–शतपथ ब्राहमण 4/113

सौभाग्येच्छुओ को सौभाग्य तथा मोक्षार्थियो को मोक्ष प्राप्त होता है। इस पुराण से बढकर शास्त्र श्रुति या श्रेष्ठ ज्ञान और स्मृति कोई अन्य नहीं है। इसके अन्तर्गत विष्णु के मत्स्यादि सम्पूर्ण अवतार गीता रामायण हरिवश और महाभारत का परिचय नौ प्रकार की सृष्टि वैष्णव आगम का गान पवित्रारोहण की विधि प्रतिमा तथा मदिर के लक्षण के साथ ही भोग और मोक्ष देने वाले मत्रो का उल्लेख किया गया है। साथ ही शैव आगम और उनके प्रयोजन शाक्त आगम सूर्य सबधी आगम मण्डल वास्तु और अन्य प्रकार के मन्त्रो का वर्णन मिलता है। ब्रह्माण्ड/ मडल भुवन--कोश द्वीप वर्ष नदियो तीर्थों की महिमा का गान किया गया है। वेदान्त ब्रह्मज्ञान अष्टाग योग का व्यापक निरूपण हुआ है। इसमे ब्रह्म के सप्रपच और निर्विशेष रूप का वर्णन मिलता है।

यह पुराण पन्द्रह हजार श्लोको वाला है। इस प्रकार अग्निदेव ने इस पुराण की सर्जना सर्वलोक हिताय किया। यहीं से प्रेरणा प्राप्त कर कवियो ने अपनी रचनाओ मे भिन्न--भिन्न विषयो का प्रतिपादन किया। ऐसा कोई विषय नही है जिसका वर्णन इस पुराण में न प्राप्त होता हो। इस प्रकार यह पुराण सर्वांगीण दृष्टि से उत्तम पुराण कहा जा सकता है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थो की सूची

क्रम सख्या	ग्रन्थ	लेखक व प्रकाशक
1–	अग्निपुराण	चौखम्भा बनारस 1965 ई
2–	अग्निपुराण	मोर सस्करण कलकत्ता
3–	अग्निपुराण	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
4–	कूर्म पुराण	इडोलाजिकल प्रकाशन काशी'
5–	गरूण पुराण	पडित पुस्तकालय काशी
6–	नारदीय पुराण	वेकटेश्वर प्रेस बम्बई
7–	पद्मपुराण	आनन्दाश्रम सस्करण पूना'
8–	ब्रह्मपुराण	मोर सस्करण कलकत्ता
9–	ब्रह्मपुराण	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
10–	भागवत पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर
11–	मत्स्य पुराण	जीवानन्द सस्करण कलकत्ता
12–	मार्कण्डेय पुराण	वेकटेश्वर प्रेस बम्बई
13–	मनुस्मृति	चौखम्भा बनारस 1952
14–	याज्ञवल्क्य स्मृति	चौखम्भा बनारस 1953
15–	लिङ्ग पुराण	वेकटेश्वर प्रेस बम्बई
16–	विष्णु पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर 1961
17–	वृहदारण्यक उपनिषद	गीता प्रेस गोरखपुर 1957
18–	स्कन्द पुराण	वेकटेश्वर प्रेस बम्बई
19–	शिव पुराण	वेकटेश्वर प्रेस बम्बई
20–	पणिनि कालीन भारतवर्ष	डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल–काशी
21–	प्राचीन भारतीय भूगोल	डॉ0 अवध बिहारी लाल अवस्थी–लखनऊ
22–	हिस्ट्री आफ पुराणान्	डॉ0 अवध बिहारी लाल अवस्थी–लखनऊ
23–	पुराण विमर्श	बलदव उपाध्याय द्वितीय सस्करण 1978 चौखम्भा प्रकाशन

वाराणसी

24— हिन्दू धर्म शास्त्र का इतिहास भाग 5 डॉ0 पी0वी0 काणे लखनऊ

25— हिस्ट्री सस्कृत पोलटिक्स डॉ0 पी0वी0 काणे दिल्ली

26— कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण डॉ0 डी0आर0 पाटिल मो0व0दा0 दिल्ली

27— हिन्दू सस्कार डॉ0 राजबली पाण्डेय काशी

28— विष्णु धमात्तर पुराण प्रियबाला शाह बडौदा

29— अग्निपुराण विषयानुक्रमणी रमाशकर भटटाचार्य वाराणसी 1963

30— पालिटी इन द अग्निपुराण डॉ0 बी0बी0 मिश्रा

31— पौराणिक धर्म एव समाज डॉ0 सिद्धेश्वरी नारायण राय इलाहाबाद

32— अमरकोश बम्बई 1944

33— सस्कृत इगलिश डिक्शनरी दिल्ली 1963

34— पुराणम् पत्रिका काशीराज ट्रस्ट काशी

35— कल्याण पुराणाङ्क गोरखपुर गीता प्रेस

36— पुराणिक इन साइक्लोपीडिया मो0 ब0दा0 दिल्ली

37— कल्याण धर्मशाश्त्राङ्क गीता प्रेस गोरखपुर

38— पुराणिक रिकार्डर्स आन हिन्दू राइटस एण्ड कस्टम्स मो0 ब0दा0 दिल्ली 1975

39— अग्निपुराण अ स्टडी डॉ0 एस0डी0 ज्ञानी काशी

40— रामायण गीता प्रेस गोरखपुर

41— कलाके एकादश सन्दर्भ अभिनव सत्यदेव फैजाबाद अयोध्या

42— भारतीय दर्शन डॉ0 सतीश चन्द्र चटटोपाध्याय एव धीरेन्द्र मोहन दत्त पटना

43— दशरूपक डॉ0 श्रीनिवास दास साहित्य भण्डार मेरठ

44— काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट डॉ0 नरेन्द्र वाराणसी

45— सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ0 कपिल देव द्विवेदी सस्कृत साहित्य सस्थान इलाहाबाद

46– संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला 1960 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

47– साहित्य दर्पण विश्वनाथ साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ

48– काव्यालंकार रूद्रट व्याख्याकार श्रीरामदेव शुक्ल 1966 चौखम्भा प्रकाशन

49– काव्यानुशासन हेमचन्द्र 1964 श्री महावीर जैनविद्यालय मुम्बई

50– काव्यादर्श दण्डी

51– काव्यालंकार सूत्रवृत्ति वामन–आचार्य विश्वेश्वर 1954 रामलालपुर आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गट दिल्ली–6

52– नाटयशास्त्र भरत–चौखम्भा प्रकाशन

53– हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर सुशील कुमार डे 1947 कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस

54– पुराण पर्यालोचनम् डॉ0 श्री कृष्ण त्रिपाठी–प्रथम संस्करण 1976 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

55– सांख्य तत्व कौमुदी प्रभा आद्या प्रसाद मिश्र 1994– अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद

56– कठापनिषद आद्या प्रसाद मिश्र–अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद

57– हिन्दी–संस्कृत शब्दकोश डॉ0 श्री प्रकाश पाण्डेय– संस्कृत भारती माता मन्दिर गली–नयी दिल्ली